प्रकाशक

बालगोविन्द कुबेरदास की कंपनी के लिए
व्रजलाल त्रिभोवनदास परीख

गांधी मार्ग, अ ह म दा बा द

प्रथम संस्करण १९५६.

मुद्रक

वैद्यराज स्वामी श्रीत्रिभुवनदासजी शास्त्री
श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस,
दरियापुर-वाडीगाम,
अ ह म दा बा द

સ્વાગત

સ્વામી શ્રી નિગમાનંદજીએ 'રવિશંકર મહારાજ'નો અક્ષરશ; અનુવાદ કર્યો છે એ હું જોઇ ગયો. મૂળ પુસ્તકના ભાવને તેઓ બરાબર પામી ગયા છે અને રોચક હિંદી શૈલીમાં એને શબ્દબધ્ધ કર્યો છે એ જોઇને અત્યંત આનંદ થયો.

પૂજ્ય મહારાજને હિંદી વાંચનારી જનતા સમક્ષ પહોંચાડવાનું શ્રેય સ્વામીજી ખાટી ગયા છે. મહારાજ માટે એમના દિલમાં જે પ્રેમ ઝરણું વહી રહ્યું છે તેનું આ પ્રતિબિંબ છે એવું કહ્યા વિના હું રહી શકતો નથી.

બાલગોવિંદ કુબેરદાસ કંપનીએ એવાજ ભક્તિભાવથી આ અનુવાદનું પ્રકાશન કર્યું છે. પ્રેમ–ભક્તિથી કરેલા સહકાર્યની સુવાસ ફેલાયા વિના કેમ રહે?

મુ૰પો૰થામણા.
જિ. ખેડા (ગુજરાત)

બબલભાઇ મહેતા
વિજયાદશમી સં૰ ૨૦૧૨

(हिन्दी) 'रविशंकरमहाराज' नामक गुजराती पुस्तक का स्वामीश्री निगमानन्दजीद्वारा किया अविकल अनुवाद मैं देख गया हूँ। इसमें मूल पुस्तक के भावों की बराबर रक्षा की गई है और अनुवाद की शैली रोचक है। यह देखकर मुझे बहुत आनंद हुआ।

कहना पड़ेगा कि पूज्य महाराजको हिन्दी पाठकों तक पहुँचाने के श्रेय में स्वामीजी बाजी मार गये। महाराज के प्रति इनके हृदय में जो प्रेम का झरना बह रहा है, उसी का यह प्रतिबिंब है।

बालगोविंद–कुबेरदास–कंपनी ने भी अत्यंत भक्ति-भाव से यह अनुवाद प्रकाशित किया है। प्रेम और भक्ति से किये हुए सत्कार्य की सुगंध फैले बिना नहीं रह सकती।

बबलभाई मेहता

राष्ट्रभाषा के महावैयाकरण, 'हिन्दी शब्दानुशासन' 'व्रजभाषा व्याकरण' 'अच्छी हिन्दी' आदि मौलिक ग्रन्थों के यशस्वी लेखक, आचार्य पण्डित श्रीकिशोरीदासजी वाजपेयी की

सम्मति

'रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन'

हिन्दी में संत रविशंकर महाराज का आना और स्वामी निगमानन्दजी के द्वारा उन्हें यहाँ लाना 'मणिकांचनयोग' कहा जाएगा। श्रीरविशंकर जैसे महान् मनीषी संत युगों के पुण्य-प्रभाव से किसी देश में अवतीर्ण होते हैं। इनके परिचय से हिन्दी-भाषियों में एक चेतना पैदा होगी, इसमें संदेह नहीं।

स्वामी श्री निगमानन्दजी को हमारे अनंत धन्यवाद, जिनकी कृपा से ऐसे महान् संत का परिचय हमें मिला। स्वामीजी संस्कृत के विद्वान् हैं और हिन्दी के मर्मज्ञ हैं। इनकी भाषा परिमार्जित एवं सुन्दर है। महाराज का प्रतिबिंब ऐसी निर्मल भाषा में ज्यों-का-त्यों झलक रहा है। हमें आशा है, इस महत्त्वपूर्ण कृति का आदर और प्रचार हिन्दी में होगा।

किशोरीदास वाजपेयी

कनखल (उत्तर प्रदेश)

१६-६-१९५६

अनुवाद कहिए या मल्लयुद्ध

मुझे इस बात का हर्ष हो रहा है कि मैं एक अनुकरणीय-चरित महापुरुष को गुजराती में से हिन्दी में ला रहा हूँ। यह मेरी दक्षता है या दुःसाहस? यह तो आप ही जानें। यह बात सत्य है कि मुझे गुजराती का बिलकुल ज्ञान नहीं एवं हिन्दी के व्यावहारिक शब्दों से भी मैं पूरा परिचित नहीं। क्योंकि मेरी मातृ-भाषा (पेप्सु) पटियाला राज्य की पंजाबी है। यह मैं पूर्णतया मानता हूँ कि भारत की कुछ भाषाओं को छोड़कर सभी प्रांतीय भाषाओं की आकृति भिन्न-भिन्न होने पर भी प्रकृति एक है। आकृति-भेद से प्रकृति-भेद कभी नहीं हो सकता। अपनी सभी भाषाएँ संस्कृत-भाषा के परिवार में से हैं। संस्कृत किसी की 'काकी' किसी की 'चाची' किसी की 'नानी' और किसी की 'दादी' होती है—अर्थात् संस्कृत के 'रामस्य' को हिन्दी 'रामका, रामकी' मराठी 'रामचा, रामची' गुजराती 'रामना, रामनी' और पंजाबी 'रामदा, रामदी' कहती है। इस लिए जैसे मैं भगवद्-विश्वास के बल पर सब प्रांतों में आत्मीयभाव से घूमता-फिरता हूँ, वैसे ही संस्कृत-भाषा के बल पर इन प्रांतीय भाषाओं में भी घूम-फिर सकता हूँ। इसमें यदि कोई बाधक है तो वह लिपि-भेद ही है। यदि सभी भारतीय भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाती हों तो हमारे विद्यार्थी सुगमता-पूर्वक कई-एक भाषाएँ सीख सकते हैं। यह बाह्य भेद भी हमें एक-दूसरे से बहुत-कुछ दूर रखता है-मिलने नहीं

२६६

देता। इस बाह्य भेद के कारण ही वर्षों तक हमारे निर्वासित सिन्धी भाई हम से पृथक्-से ही रहेंगे। यदि वे अपनी भाषा देव-नागरी लिपि में लिखने लग जाएँ तो देखते—देखते ही हम में घुल-मिल सकते हैं। भगवान् वह दिन जलदी दिखाएँ जिस दिन सभी प्रांतीय भाषाएँ किसी एक ही लिपि में लिखी जाती हों।

अस्तु-मैं दूर निकल आया हूँ। हाँ, गुजराती का मुझे नहीं के बराबर ज्ञान है। मैं कोश लेकर एक-एक शब्द का अर्थ पुस्तक पर लिख लेता था। फिर अनुवाद करते समय शब्दों और वाक्यों के साथ मल्ल-युद्ध में उतर पड़ता था। जैसे, इस अनूद्यमान पुस्तक का नाम 'रविशंकर महाराज' है। गुजरात में आबाल-वृद्ध इस नाम से परिचित हैं, पर हिन्दी-पाठक परिचित नहीं। इसलिए इसे बदल डालने की आवश्यकता खड़ी हो गई। पहले इसका नाम मैंने "दीन-दुखियों के दयालु दादा" रखा। इसमें से वह अर्थ नहीं निकला जो मैं निकालना चाहता था। फिर इसे उलटा दिया और 'चोर-उचक्कों के आचार्य' बना दिया। इसमें से भी मेरा अभीष्ट अर्थ नहीं निकला। फिर खम ठोक कर लपका और 'उचक्कों' को पछाड़ कर 'डाकुओं' दे मारा। इधर टांगें तोड़-मरोड़ कर ठीक कीं तो उधर हाथ फैले हुए दिखाई दिये। 'आचार्य' शब्द से अनिष्ट अर्थ की प्रतीति होने लगी, जैसे 'चोरों के सरदार' में से होती है [चोरी सिखाने में पटु]। फिर पसीना पोंछ कर मूंड रगड़ा 'सच्चे' विशेषण जोड़ दिया। तब कहीं जाकर दम में दम आया। भले देर ही लग गई हो (नाम लंबा हो गया हो) पर अंत में पछाड़ तो

दिया ही न ! 'रविशंकर महाराज' का 'चोर-डाकुओं के सच्चे आचार्य' बना डाला। यह तो हुई आरंभ की बात।

अब लीजिए समाप्ति की बात। इस पुस्तक के अंतिम प्रकरण का शीर्षक 'लेखकनुं अंतिम वक्तव्य' [लेखक का अंतिम वक्तव्य] है। मैंने इससे भी हाथ मिलाया। पहले ही दाव में 'लेखकनुं' की खबर ली—इसे उड़ा दिया। क्योंकि यही प्रकरण लेखक का नहीं, सारी-की सारी पुस्तक लेखक की है। फिर मैं झपटा 'अंतिम' पर। क्योंकि इसमें से अमंगल अर्थ की ध्वनि निकलती है। अभी तो हम अपने माननीय लेखक पर बहुत-बहुत आशाएँ लगाये बैठे हैं। यह 'अंतिम' शब्द यहां कैसे आ घुसा? इसे भी धौल जमाकर अखाड़े में से बाहर खदेड़ दिया। 'ग्रन्थ-सम्पूर्ति-वक्तव्य' बना डाला। किन्तु तीन पदों का लम्बा समास खटकने लगा। बस, फिर एक हाथ और मारकर पटक दिया; 'उपसंहृति-वक्तव्य' बन गया यह हुआ 'मल्लयुद्ध।' यदि आप इसमें मेरी विजय देखते हैं तो मेरी पीठ ठोक कर मुझे पारितोषिक दीजिए। अन्यथा अपनेरामका व्यायाम तो हो ही गया।

पुस्तक तथा महाराज के विषय में साहित्य-महारथी काका कालेलकरजी जैसे अधिकारी विद्वान् की प्रस्तावना के बाद मेरा कुछ लिखना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता। फिर भी इतना तो मैं कह ही देता हूँ कि यदि यह पुस्तक पच्चीस वर्ष से पहले पहले कहीं मेरे हाथ लग जाती तो मेरा मार्ग मेरे वर्तमान मार्ग

से भिन्न होता। मार्गभेद होने पर भी लक्ष्य दोनों का एक ही रहता।

यह सीधी-सादी भाषा में लिखा हुआ एक सच्चा जीवन-चरित है। इसमें अत्युक्ति का नाम तक नहीं। यद्यपि यह 'काव्य' नहीं, 'नाटक' नहीं, 'आख्यायिका' नहीं एवं 'उपन्यास' भी नहीं; तो भी उनमें जो कुछ हो सकता है वह सब कुछ इसमें है—अर्थात् इसमें के एक-एक प्रकरण में से काव्य, नाटक; आख्यायिका तथा उपन्यास सफलता-पूर्वक लिखे जा सकते हैं।

क्या करूँ, मेरी लेखनी नहीं मानती, महाराज के विषय में इतना तो लिखना ही चाहती है।

स्तेनपो न धनाकांक्षी, ग्रन्थि-हारी न लुण्ठकः।
परिव्राट् न च संन्यासी, जलदो नैव वारिदः ।१।
अतिग्मांशू रविः ख्यातो, निर्विषः शंकरो मतः।
अच्छत्रः सन् महाराजः, कोप्ययं मानवोत्तमः ।२।
तस्यैषा कथा साध्वी, प्रेमोत्साह-विवर्धनी।
भूयात् भूयात् सदा देव ! यूनां मनस्सु चारिणी ।३।

अर्थात् चोरों को पालते हैं; पर धन के लोभी नहीं, गांठें काटते हैं, पर ठग-लुटेरे नहीं; घर-बार छोड़कर घूमते हैं, पर संन्यासी नहीं, जल देते हैं, पर बादल नहीं (स्तेनप=चोरों को

बचानेवाले, ग्रन्थिहारी=लोगों की उलझनें सुलझानेवाले, जलद=कूए खुदवाकर निर्जल प्रदेश में जल का प्रबन्ध करनेवाले) ।

ये उत्तम पुरुष—उष्ण किरणों-रहित रवि हैं, विष-रहित शङ्कर हैं और छत्र-रहित महाराज हैं—अर्थात्—इनका नाम 'रविशंकर महाराज' है ।

हे प्रभो ! इनकी यह प्रेम और उत्साह-वर्धक स्पृहणीय जीवन-कथा नव-युवकों के मन-मन्दिर में सदा विराजित रहे—यही मैं आपसे बार-बार आशीर्वाद मांगता हूँ ।

—निगमानन्द परमहंस

(हरिद्वार)

६–३–१९५६

गांधीयुग के प्रेरक प्रतिनिधि

जब मैं पहले-पहले श्रीरविशंकर व्यास से मिला तो मैंने इनका पहनावा, इनकी कँवली और इनके बैठने की ढब देखी 'यह कोई ग्रामीण देहाती अपठित कार्यकर्ता है' ऐसी पहली छाप मुझ पर पड़ी; किसी ने इनका परिचय नहीं कराया था। एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ। दूसरे ही क्षण देखा कि इस ग्रामीण का तन पुष्ट और मन तुष्ट है। इनमें असाधारण नम्रता थी, पर इस नम्रता के मूल में स्वयं के विषय में कुछ अविश्वास नहीं दिखाई देता था।

इनके साथ बात-चीत आरम्भ हुई। मैंने देखा कि शुद्ध जिज्ञासा से ये जो प्रश्न करते थे, उनकी जड़ में अच्छी संस्कारिता और सामान्य लोगों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त एवं विपुल परिचिति रखते थे। आर्यसमाज के संस्कार तो तुरन्त दीख जाते थे। कई-एक आर्यसमाजियों में जो सनातन कट्टर समाजीपन होता है, उससे ये मुक्त थे। मैंने इनसे कहा कि सनातनी वृत्ति न छोड़कर जब लोग आर्यसमाजी बनते हैं तो वे वेदों का अर्थ करते समय सायणाचार्य के स्थान पर ऋषि दयानन्द को प्रमाण मानते हैं—बस इतना ही अन्तर है। पर अन्ध–अनुयायिता और कट्टरपन में दोनों समान ही होते हैं। एक 'धर्मसिंधु' या रूढ़ि-स्मृति को मानता है तो दूसरा 'सत्यार्थ-प्रकाश' को मानता है, पर अन्धे अनुसरण में दोनों बराबर ही सनातनी होते हैं।

आपमें मैं यह सनातनीपन नहीं देख रहा हूँ, आप तो बिलकुल नूतन (ताजे) लग रहे हैं ।

इस प्रकार रविशंकर महाराज की मेरे लिए यथेष्ट शोध मैंने स्वयं ही की । इस बात को आज पौनी सदी से अधिक समय हो गया होगा ! इतने वर्षों में अनेक बार, अनेक प्रसङ्गों पर रविशंकर महाराज के परिचय में आया हूँ और मैं देखता हूँ इनकी बुद्धि. हृदय और जीवन-दृष्टि की स्वस्थता (नूतनता) वैसी-की-वैसी बनी हुई है । इतना ही नहीं, पर कुछ बढ़ी ही है । निःस्पृहता रखते हुए भी सबके प्रति आत्मीयता और मिठास दिखाने की कला में तो गांधीजी के बाद इन्हीं का स्थान है । इनके साथ घण्टों बातें करते रहें और वर्षों तक इनके काम का निरीक्षण करते रहें; पर इनके मन में किसीके विषय में कटुता या शत्रुता नहीं दिखाई देगी ।

जब-जब मैं इसका कारण ढूँढता हूँ तब-तब मुझे तो इन सफलताओं के मूल में इनकी निर्लोभता, अपरिग्रह और अनासक्ति ही दिखाई देती है । लोगों को आश्चर्य होगा, पर मुझे तो लगता है कि इनकी मधुरता के मूल में इनका निष्कपट (सादा) कष्टसहिष्णु, परिश्रमी जीवन ही है ! जिन लोगों की परिश्रमिता बलात् अपनाई होती है और बराबर पची नहीं होती; वे तो प्रतिष्ठा कराने के लिए भी दूसरे शिथिल लोगों के प्रति उत्तेजित हो जाते हैं । परन्तु जिन्होंने शीतल त्याग साधा है, जो टहल करते हुए आनन्दित हो उठते

हैं और जिन्हें परिश्रमी जीवन कष्ट जैसा नहीं लगता; वही चारित्र्य-सिद्धि के कारण, केवल ऊपर से नहीं, हृदय की गहराई से सब के प्रति मधुरता (मिठास) रख सकते हैं—दिखा सकते हैं।

कई-एक आध्यात्मिक साधना करने वाले लोग बहुत ही कोमल स्वर में बोलते हैं और प्रत्येक विषय में उदार दृष्टि से देखने का आग्रह रखते हैं, पर ठोस परिस्थिति को छूते तक नहीं; झगड़ें में पड़कर दलितों का प्रत्यक्ष पक्ष लेना तो दूर रहा। रवि-शंकर महाराज इस कोटि के नहीं; इनका पुण्य-प्रकोप जागृत हो सकता है। दीन-दुखियों के लिए ये पिघल सकते हैं। झगड़े सिर पर ले सकते हैं। पर इनकी उच्च भूमिका दृढ़ होने के कारण ये अपनी अनासक्ति द्वारा ही सब से आदर प्राप्त करते हैं। पृथक् रह करके अपने-आपको बचा लेना—यह वास्तविक (सच्ची) अनासक्ति नहीं। अपना स्वार्थ स्वाहा करके दुर्जनों के प्रति भी आत्मीयता अपनाना ही सच्ची अनासक्ति है—वह ये जानते हैं। दीन-दुखियों के लिए न्याय और सहायता प्राप्त करने के लिए केवल निरी न्याय-निष्ठा से प्रेरित होने के बदले प्रेम, बन्धुता और मानवता की निष्ठा से ही ये समाज-सेवा में प्रवृत्त हुए हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि माता में अपने—बच्चों के प्रति जो अमर्याद (असीम) वात्सल्य होता है; वही इन्हें अपराधी गिनी जानेवाली, त्रासरूप सिद्ध हुई दुर्भाग्य जातियों की सेवा करने के लिए प्रेरित करता है।

सेवा करने की यही वृत्ति साथ लेकर ही ये पैदा हुए प्रतीत होते हैं। पर यह सेवा करने की सूझ या कुशलता इनमें अनुभव से ही आई है। इस विषय में इनका आत्म-परीक्षण इतना तीक्ष्ण है कि सेवाभाव में 'उपकार'-बुद्धि का मिश्रण होने से भी सेवाभाव दूषित हो सकता है—यह भी ये देख सके हैं।

इनकी तत्त्वनिष्ठा और निस्स्वार्थ सेवाभाव देखकर सत्ता के प्रतिनिधि सरकारी अधिकारी इनकी मान-प्रतिष्ठा करने लगे। इनकी सूचना को मान देकर दीनों को न्याय, पैसों एवं अन्य सुविधाओं की सहायता देने लगे। महाराज इसमें वह भी गये; पर इनकी अन्तर्मुख जागरूकता को इसमें आनेवाले दोषों को परखने में देर नहीं लगी। सहायता-कार्य इस चारित्र्यसंगठन के लिए ढूला साधन है, यह इन्होंने परख लिया और प्रगट भी कर दिया। सहायता-कार्य छोड़ देने जितना आध्यात्मिक अंधापन इनमें नहीं। सहायता का मूल्य सहायता जितना ही है, इससे अधिक नहीं—इतना इन्होंने देख लिया है। दीनों का दुःख निवारण करने के लिए ये स्वराज्य सरकार की सहायता लेने को उद्यत हो जाते हैं, पर मन में इतना तो ठस ही गया कि सत्य और सत्ता का मेल नहीं बैठ सकता। परिश्रमी जीवन के कारण सुरक्षित जागरूकता इनकी मुख्य पूँजी है। इसी लिए ही ये उच्च कोटि के सेवक एवं साधक बने हैं।

चाहे इन्हें संस्कृत या अंग्रेजी न आती हो, यदि इन्हें कोई अपठित मान बैठे तो वह भूल होगी। जो मनुष्य के मन और जीवन के पृथक्करण की कला अधिगत कर चुका हो और जो सेवा के निमित्त उस कला को सफलता-पूर्वक प्रयुक्त कर सकता हो; उसे अपठित नहीं कहा जा सकता।

रविशंकर महाराज जो गामड़ी भाषा बोलते हैं वह इनकी अपनी है—आत्मसात् की हुई है। इनके वाक्य-वाक्य में इनका शब्द-भंडार प्रगट होता है, इतना ही नहीं—पर इन्हें शब्द—शक्ति का भान है—यह भी व्यक्त हो जाता हैं। जहां सत्यनिष्ठा और जीवन-निष्ठा होती है; वहाँ विचार-शुद्धि एवं भाषा—शुद्धि अपने-आप विकसित हो जाती है। जिसे मनुष्य-स्वभाव और सामाजिक परिस्थिति का इतना गहरा ज्ञान है; उसकी भाषा और शैली में मृदुता एवं तेजस्विता दोनों आये बिना नहीं रह सकतीं।

आदर्श-पालन के लिए जो संयम अपनाना पड़ता है और व्यवहार की दृष्टि से तिरस्कृत होना पड़ता है, जिसे इसका अनुभव है, यदि उसके मन में अभिमान प्रविष्ट न हुआ हो तो सामान्य मनुष्य की शिथिलता के प्रति उसे अनुकम्पा ही उत्पन्न होगी।

रविशंकर महाराज के विषय में अबतक चार पुस्तक लिखी गई हैं। 'महाराज थयां पहलां' यह बबलभाई की लिखी महाराज के पूर्वचरित्र की कथा है। वह और 'रविशंकर महाराज' तथा 'महाराजनी साथे' ये पुरातन बुच की लिखी पुस्तकें महाराज के संस्मरण नोट करने का मुख्यतः काम करती हैं। महाराज के

विषय में और इनके कार्यों के विषय में यथार्थ कल्पना करा देने वाली मुख्य पुस्तक स्व० श्री झवेरचन्द मेघाणी की समर्थ लेखनी से लिखी हुई "माणसाईना दीवा" है। 'यह पुस्तक विश्वसाहित्य में स्थान पाएगी'—ऐसा जो मैंने इसकी प्रस्तावना में लिखा है उसमें किञ्चित् भी अतिशयोक्ति नहीं। इसके तीन कारण हैं—(पहला कारण)—आदिवासियों की भांति पाटणवाडिया जैसी अपराधी गिनी जानेवाली जाति के प्रति मानववर्ग का आत्मीयता-भरा ध्यान गया है। दूसरा कारण—अपने विषय का बराबर महत्त्व परखकर उसे योग्य शब्दों में प्रस्तुत करनेवाली झवेरचन्द मेघाणी की परिपक्व शैली है। तीसरा मुख्य कारण तो गांधीजी के पाससे प्रेरणा लेकर और घाडगे जैसे सज्जन पुलिस-अधिकारी के पास से अपराधी जाति का हृदय प्राप्त करने की शक्ति पाकर रविशंकर महाराज ने जो उज्ज्वल मानव-सेवा की है, इसका जोड़ सहज में नहीं मिल सकता और इसी मार्ग से संसार को अपराधी जातियों का प्रश्न हल करना होगा—यह है। रविशंकर महाराज ने केवल भारतवर्ष के आगे ही नहीं; पर आज के संसार के आगे एक उदात्त आदर्श रखा है। जिसे अपनाने के लिए आज का संसार भले धीरे-धीरे (ही क्यों न हो) तैयार होता जा रहा है।

जाति-जाति में बन्धुता स्थापित करनी हो और चिरन्तन-काल से बद्धमूल सामाजिक दोष तथा भूलभरे आदर्श दूर करने हों तो कठोर न्याय-निष्ठा की अपेक्षा प्रेममय बन्धुभाव और मातृ-सहज

क्षमावृत्ति ही अपनानी चाहिए । यदि ऐसा करें तभी मानव-मानव में, वर्ग-वर्गमें, जाति-जाति में तथा राष्ट्र-राष्ट्र में भाईचारा या कौटुम्बिकभाव स्थापित हो सकेगा। सत्य और अहिंसा के मार्ग से जिस मानवधर्म की स्थापना के लिए गांधीजी आजन्म एवं आमरण (आजीवन) सोचते रहे, उसी मानव-धर्म के पालन करने का सच्चा मार्ग रविशंकर महाराज ने परीक्षित करके देख लिया है ।

रोम के इतिहास के आरम्भ में उल्लेख है कि स्वदेशी सरकार की भूलों के सामने दलित जनता को रक्षा के रूप में TRIBUNC (ट्रायव्यून्स) नामक लोग नियुक्त किये जाते थे । अपने यहां भी स्वराज्य के दिनों में ऐसे ट्रायव्यून्स की आवश्यकता उत्पन्न होगी । अन्तर इतना ही है कि रविशंकर महाराज की लोक-हित-रक्षक के रूप में नियुक्ति करने की आवश्यकता नहीं । इनकी आजन्म निःस्वार्थ सेवा ने ही इनकी नियुक्ति कर दी है । सिंह को जंगल का राजा होने के लिए अभिषेक की आवश्यकता नहीं पड़ती (स्वयमेव-मृगेन्द्रता) इस संस्कृत कहावत की तुलना में एक नई कहावत चालू करनी पड़ेगी कि "रविशंकर महाराज के लिए न कोई पदवी देनी पड़ती है और न किसी पद पर इनकी नियुक्ति करनी पड़ती है"। संक्षेप में कहें तो "रविशंकर जैसे स्वयमेव महाराज होते हैं" । आज गुजरात में 'महाराज अर्थात् रविशंकर' ऐसा पर्याय हो गया है ।

'माणसाईना दीवा' में पाटणवाडिया जाति की परिस्थिति

और इनकी मनोरचना की भूमि पर रविशंकर महाराज का व्यक्तित्व कैसे खिल उठता है—यह मध्यकालीन सौराष्ट्र के डाकूयुग के आधुनिक चारण श्रीझवेरचन्द मेघाणी ने पूर्णतया दिखा दिया है। पर महाराज का जीवन-कार्य समझने के लिए उतना पर्याप्त नहीं था। गांधीयुग में कांग्रेस ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जो-जो आन्दोलन उठाये और सारे देश ने गांधीजी की प्रेरणा से जो सांस्कृतिक जागृति का कार्य किया, उस भूमिका पर गुजरात के सार्वजनिक जीवन में रविशंकर महाराज कहां बैठते हैं यह बतानेवाला महाराज का क्रमबद्ध जीवन-चरित्र लिखने की आवश्यकता थी। यह कार्य रविशंकर महाराज जैसे ही, पिछड़ी एवं अशिक्षित जाति की सेवा के लिए धृतव्रत श्रीबबलभाई के हाथों हुआ है—यह बहुत सन्तोष की बात है। गांधीजी के सौराष्ट्र में से ही जुगतरामभाई या बबलभाई जैसे भूमि-जन-सेवक हमें मिले हैं। इनके हाथों श्रीरविशंकर जैसे गांधीयुग के आर्य-प्रतिनिधि का चरित्र लिखा जाय और यह सौराष्ट्र के साहित्य-स्वामी के लेख से घटिया न हो, इससे किसे आनन्द न होगा ? एक युवक सेवावीर दूसरे वृद्ध सेवावीर का जब आदर करता है तो वह भाषा का संयम अवश्य रखेगा ही। यह संयम इस चरित्र में वाक्य-वाक्य पर दिखाई देता है। इसलिए यह सारा वर्णन सचोट (सतर्क) एवं समर्थ बन पड़ा है।

इतना तो कहना ही चाहिए कि सम्भाषण-चतुर रविशंकर महाराज के पास से ही वास्तविकता प्राप्त करके यह चारों पुस्तकें

लिखी गई हैं। इसलिए चरित्र-लेखकों को जो हम श्रेय देते हैं उसमें से अमुक भाग तो चरित्र नायक के खाते में जमा हो जाता है।

गांधी-युग के साहित्य में एक मूल्यवान् वृद्धि करने के निमित्त श्रीबबलभाई का हम अभिनन्दन करते हैं।

पाटणवाडिया जाति के नवयुवक वल्लभविद्यालय जैसी संस्था में से जब नये संस्कार प्राप्त करेंगे और अपनी जाति पर की मध्ययुगीन केंचुली उतार देंगे तब अपनी जाति के उद्धारक श्री-रविशंकर महाराज के प्रति असाधारण कृतज्ञता के भावों का अनुभव करेंगे। उस समय इस जीवनचरित्र की वे रामायण, महाभारत या बाइबल की-सी प्रतिष्ठा करेंगे। पर संसार के लोग तो आज से ही इस पुस्तक का एक प्रेरक ग्रन्थ के रूप में स्वागत करेंगे।

—काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

त्रुटित पाठ

पृष्ठ ८९, पं. २० 'कर डाला कि आज' के बाद—
"दुपहरे खाने के बाद पानी पीकर कल" होना चाहिए ।

पृष्ठ १०३, पं. ६ में, 'बैठ गये' के बाद—
"और दो लड्डू खा गये" बढ़ाना चाहिए ।

पृष्ठ १२१, पं. १२वीं के बाद का
"२१—चौकीदार भी पिघला" यह शीर्षक छूट गया है ।

पृष्ठ १४७, पं. १४ में 'हमें भी तो' के आगे
"परिश्रम पड़ता है" उमेरिए ।

पृष्ठ २५०, पं. १९ 'प्रतीत होता है' के आगे
"कि तुम्हारा 'पुनर्जन्म हुआ" बढ़ाइए ।

पृष्ठ २९०, टिप्पणी में—
"ऊँट वैद्य=निर्दय उपचार करनेवाला अननुभवी वैद्य" समझिए





रविशंकर महाराज

१. महाराज

गुजरात में लोक-सेवक के नामसे परम प्रसिद्ध रविशंकर महाराज को आज कौन नहीं पहचानता ? वर्षों की अखंड सेवाने आज इन्हें गुजरातभर में विख्यात कर दिया है।

कोई इन्हें पाटण-वाडियों का पुरोहित कहते हैं; कोई इन्हें चोर-डाकुओं का जीवन-परिवर्तन करनेवाला सच्चा आचार्य कहते हैं, कोई इन्हें कट्टर कांग्रेसवादी कहते हैं, कोई इन्हें अनन्य गांधीवादी कहते हैं, कोई इन्हें मुमुक्षु ब्राह्मण कहते हैं तो कोई इन्हें वर्तमान काल का तपस्वी कहते हैं। कुछ भी कहिए; पर इनमें कुछ ऐसा वशीकरण है जिससे अनेक इनके मित्र बन जाते हैं, अनेक इनके भक्त हो जाते हैं और अनेकों दूसरे इन्हें चाहने लगते हैं। जहाँ जहाँ ये जाते हैं, वहीं वहीं इनकी अनोखी ही छाप पड़ती है। इनका जीवन सादा है। अपरिग्रह और अस्तेय व्रत के ताने-बानेसे बुना हुआ है। इतना ही नहीं, किसी नियमशील परिव्राजक के आदर्श को प्रस्तुत करनेवाला है। आज ये जीते जागते एवं चलते-फिरते विद्यापीठ के समान गुजरातभर के जीवन-शिक्षक बन गये हैं।

दूसरे शब्दों में कहें तो ये गुजरात के चौकीदार हैं। गुजरात पर आई हुई या आनेवाली किसी भी विपत्ति को रोकने के लिए

या दूर करने के लिए सदा-सर्वदा कमर कसकर डटे रहते हैं। इनकी प्रवृत्ति एक प्रकार की नहीं; अनेक प्रकार की है । सस्ते अन्न की दूकान चलाने के समय इनके हाथमें तराजू की डंडी होती है, बाढ़-संकट के समय ये नदी-नाले लांघकर लोगों के झोंपड़े-झोंपड़े जाकर सुख-आराम पहुँचाते हैं। उपद्रव खड़ा हो जाय तो ये छाती तानकर भ्रांति दूर करते-करते निर्भयता का पाठ पढ़ाते हैं। प्लेग या हैजे के समय ये बीमारों का टट्टी-पेशाब उठाते हैं। सत्याग्रह की लड़ाई छिड़ जाय तो ये एक सैनिकीय ढबसे कानून का भंग करके प्रसन्न-मुखसे आनेवाले परिणामों को झेलते हैं। जेल में जाते हैं तो एक अनुकरणीय कैदी का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। विद्यार्थी इनका उत्साह देखकर प्रेरणा प्राप्त करते हैं, विद्वान् इनके अनुभव-सिद्ध ज्ञानकी बातें सुन सुन कर दातों तले अंगुली दबाते हैं। सद्गृहस्थ युवक-युवतियों के वैवाहिक प्रसंगों पर इनके मुखसे दांपत्य-धर्म का रहस्य समझते हैं। पर इनका असली आनंद तो तब प्रगट होता है जब ये किसी गरीब यजमान की हाजरी निकलवाकर २५—३० मील की पैदल यात्रा करके आते हैं और उसकी नीचे छज्जेवाली छपरी में ढीली-ढाली खाट पर या फटी-पुरानी गोदड़ी में हाथ-पाँव सिकोड़ कर आरामसे नींद लेते हैं।

कभी धनी लोग गरीबों के दुःख की कहानी सुनने के लिए इन्हें आमंत्रित करते हैं। कभी विद्यालय और महाविद्यालय के अध्यापक विद्यार्थियों को इनके अनुभवज्ञान का पाठ पढ़ाने के लिए इन्हें बुलाते हैं। सरदार साहब (वल्लभभाई पटेल) या पूज्य बापूजी

(गांधीजी) जब कभी गुजरात आते तो पहले इनकी खोज निकालते कि 'रविशंकर महाराज कहां हैं?' इस प्रकार एक नहीं अनेक रूपों में रविशंकर महाराज के हमें दर्शन होते हैं। काठियावाड़ के नौ-जवान कार्यकर्ता इन्हें 'दादा' कहकर बुलाते हैं। सूरत के ग्रामीण लोग इन्हें रविशंकरभाई के नामसे संबोधित करते हैं। पर इनका बहुत प्रसिद्ध और रूढ़ हो चुका संक्षिप्त नाम है 'महाराज'।

लंबा, पतला और कसा हुआ शरीर, किसी के भी साथ बातें करते समय आँखमें से उमड़ती अमृत-दृष्टि, गरीब जनताकी दरिद्रता से दग्ध सेवक को शोभा दे ऐसी इनकी ऊंची खोंसवी धोती, नंगे पैर, स्वयं हाथसे कते सूतकी मोटी स्वच्छ एवं सादी चौतनी सफेद बंडी और सफेद टोपी—यह हुआ इनका ऊपरी वेश।

बैठने के समय स्थान कम रोकना पड़े तो अच्छा। खानेके समय गरीबों के उपजाये अन्न का एक भी दाना अनुचित रूपसे उपयुक्त न हो ऐसी सावधानता। चाहे जिस क्षण दूसरों के सहायक होने के लिए दो-चार फेरे खा आने की तैयारी। संक्षेप में कहें तो जनता-जनार्दन के चरणों में सारा जीवन समर्पित होने पर भी न मिलेगा इनके मनमें अणुमात्र भी अभिमान। चारो ओर 'वाह वाह' होने पर भी प्रशंसारूपी विषमें से बच निकलने की प्रतिक्षण की जागरूकता। प्राप्त विपत्ति में भलों-भलों का भी मार्गदर्शन कर सके ऐसी सूझ-शक्ति होने पर भी जब समझ में न आवे तो छोटे बालकके पास भी "यह मैं नहीं समझा" यों कहकर सीखने बैठने जितनी शुद्धता। विद्यालय

या महाविद्यालय का द्वार देखे बिना पंडितों को भी मात कर सके ऐसी सरल, अचूक और मोहक वाग्धारा। इनकी बात-बात में संजीव अनुभव का खजाना खुले पड़ता है। इनके प्रत्येक कार्य में दरिद्र-दामोदर के प्रति का प्रेम उमड़े पड़ता है एवं "आत्मवत् सर्वभूतेषु" बनने की इनकी आंतरिक गंभीर आतुरता—ये सब हैं इनकी वृत्तियां।

पैंतीस-वर्ष की उमर में ये प्रगट प्रवृत्ति में पड़े। तब से लेकर तीस-वर्ष के अपने जाहिर जीवन में इन्होंने ऐसा कर्मयोग स्वीकारा कि अपने यहाँ इनकी सेवाके ढेर-के-ढेर लगे पड़े हैं। इनके व्यक्तिगत जीवनने इन्हें गुजरात के समाज जीवन में आत्मसात् कर दिया है। इनका समग्र जीवन कर्मरत हो चुका है। मानव-सेवा ही इनके जीवन का ध्येय बन गया है। ये घर में हों या बाहर हों, यात्रा में हों या स्थिर हों, गाँव में हों या नगर में हों, इनके जीवनकी एक-एक प्रवृत्ति के मूलमें मानवप्रेम एवं जनकल्याण की भावना काम कर रही है। पन्द्रह मील चल कर आ रहे हों, इनके हाथ में दस-पाँच सेरका बोझ हो, ठीक मुखद्वार पर सामने जाकर यदि कोई इनका झोला पकड़ने के लिए कहे तो ये अपना बोझ दूसरे को उठाने के लिए नहीं देते। प्यास लगी हो, आस-पास बहुत-से नौ-जवान बैठे हों, तो भी पानी पीने के लिए ये स्वयमेव उठकर घड़े के पास जायँगे; दूसरे से लोटाभर भी पानी नहीं मँगाते—किसी से अणुमात्र भी सेवा नहीं लेते। पर दूसरोंकी सेवा करने के लिए एक भी अवसर हाथसे नहीं जाने देते—यह है इनकी विशेषता।

बातचीत में एक समय इनके छोटे भाई श्री अंबालालभाईके मुँहमेंसे ये शब्द निकल पड़े थे। जो बिलकुल यथार्थ हैं कि "इनके जीवन के गुप्त प्रसंग तो क्या कहूँ, पर बचपनसे लेकर अब-तक की इनकी निरंतर सेवकवृत्ति ऐसी है जो सब को आकृष्ट कर लेती है। जब ये पाठशालामें पढ़ा करते थे। तब यदि मास्टर-जीके घर कोई काम होता तो दूसरे लड़के छिप जाते। पर रविशंकरभाई आगे आते। कठिन-से-कठिन काम स्वयं लेते। यदि मुहल्ले में किसी बुढ़ियाने सूंघनी मँगानी हो या कोई पत्र-पत्र लिखाना हो तो यह काम रविशंकरभाई ही करते। मास्टर के यहाँसे पत्र ले आना; लिख देना और फिर डाकमें डाल आना— ये सब काम ये ही किया करते। दूसरे गाँव जाते तो साथवाले की सब प्रकारकी सुविधा का ध्यान रखते। अपने लिए जैसे भी हो चला लेते। इन बातों परसे मैं तो कहता हूँ कि कवियों और योद्धाओं की भाँति स्वयंसेवक भी जन्मते हैं, शिक्षावर्गों में तैयार नहीं होते" इनके इस कथन में कितना अधिक तथ्य है।

गुजरातकी बहुत-सी राष्ट्रीय संस्थाओं के महाराज नियमानु-सार सामान्य सभ्य भी नहीं होते। पर इन संस्थाओं के संचा-लन में इनका बहुत-सा हाथ रहता है। ये संस्थाएँ अपने निश्चित ध्येयानुसार आगे बढ़ें—इस विषय में मार्गदर्शन करने में, कार्य-कर्ताओं में शिथिलता आ गई हो तो चेतावनी देकर उसे दूर करने में, कोई उलझन पैदा हो जाय तो उसका सुलझाव ढूंढने में, या नये-नये कार्यकर्ताओं को प्रेरणा देने में इनका माता का-सा स्थान है। इनके पास एक ऐसी स्नेहशक्ति है जो कितनी

संस्थाओं और कुटुंबों में मगहनका-सा काम करती है। जब सामूहिक कार्य करना पड़ता है तो कई-बार एक दूसरे के प्रति भ्रम या विवाद खड़ा हो जाता है। ऐसे समय महाराज बीचमें पड़कर कुछ ऐसा स्नेहसिंचन करते हैं कि सभी भ्रम और सभी विवाद एकदम अदृश्य हो जाते हैं। सब लोग सुमेल एवं एकतासे काम करने लग पड़ते हैं।

इनका मुख्य काम—चाहे पिछड़ी हुई जातियोंका गिना जाय—एक स्थानसे दूसरे स्थान पर आनों-जाना है। मार्गमें की ऐसी अनेक संस्थाएँ और व्यक्ति—जो इन्हें अपना श्रद्धेय मानते हैं—इनके पाससे जीवनका पाथेय प्राप्त करते हैं; उनसे मिलना, उनका कुशल-समाचार पूछना, उनके छोटे-मोटे काम करते जाना तथा उनकी गुत्थियां सुलझाते रहना भी एक बहुत महत्त्व का काम है। ये केवल परिचितों का ही काम करते हों सो बात नहीं, जिनसे कुछ भी जान-पहचान नहीं ऐसों का भी ये काम करने लगते हैं। इसलिए इनकी परिचिति तथा इनके कामोंकी व्यापकता प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

ऐसे प्रवृत्ति-परायण जीवन की न इनके पास कोई नोंध है और न इस विषयमें क्रमबद्ध लिखने या बातें करनेकी इन्हें टेव है। इसलिए इनके समग्र जीवन की क्रमबद्ध रेखा खींचनी बहुत ही कठिन है। इनके विषय में कुछ लिखने जाना बहुत अधूरा-अधूरा और कठिनाईभरा प्रतीत होता है। एक बात लिखने बैठते हैं तो दूसरी दस बातें छूट गई जान पड़ती हैं। जब कभी इनकी अमृतमयी वाणी सुननेका सुयोग मिलता है तो उसी क्षण

इनके अनुभवका खजाना खुल पड़ता है। इनके संपर्कमें आए हुओं के इतिहास सुनने को मिलते हैं। चाहे कितना भी सुनते जाइए; इनकी गाँवड़ी भाषा में चलते पद होने पर भी संस्कारी भाषा-प्रयोग सुनते ही बनते हैं—ऐसी है इनकी वाणी की मधुरता तथा इनके अनुभवोंका आकर्षण।

कभी कभी मेरा मन इन्हें मधुमक्खीकी उपमा देने को ललचाता है। पर इसमें भी एक दोष रह ही जाता है। मधुमक्खी फूल-फूल पर बैठती है और मधुर-मधुर तत्त्वोंको इकट्ठा करती है। बादमें उन मधुर तत्त्वों को छत्तेमें संगृहीत करती है। यदि कोई दूसरा ये तत्त्व लेने आता है तो उसे काटती है। परंतु महाराज जहाँ जाते हैं वहाँ से मधुर तत्त्व इकट्ठे करते हैं और उनमें अपना अनुभव मिलाकर मधु तैयार करते हैं। बाद में इसे बार-बार मुक्त हाथों बाँटते रहते हैं। मधु-मक्खी का मधुसंग्रह तो इसका छत्ता देखते ही नजर में आता है। अपने ख्यातनामा दूसरे कार्यकर्ताओं की अपेक्षा महाराजका मधुसंग्रह बहुत अधिक है जो इन्होंने स्थान-स्थान पर बिखेर रखा है। इसलिए वह किसी एक स्थान पर देखनेमें नहीं आता। इस बिखरे हुए मधु को इकट्ठा करना कठिन और अनावश्यक है। इनके पाससे इसका हिसाब माँगना तो इससे भी कहीं अधिक कठिन है। हिसाब निकालना हो तो इतने वर्षों में ये जहाँ-जहाँ फिरे हैं वहाँ-वहाँ जा-आना चाहिए। जिन जिनके संपर्क में ये आए हैं, हो सके तो उन सबसे मिल आना चाहिए। इनके बिखरे हुए बँटवारों में से जो दो-चार अपने को मिल जायँ या अपने किसी मित्र को मिले हों; यदि उन पर से ही इनके मधुसंग्रह को कूतने बैठें तो हो सकता है कदाचित् हम इनके साथ

अन्याय कर बैठें। इस प्रयत्नमें मुझे कुछ ऐसा ही लग रहा है। ऐसा होने पर भी ऐसे अपने लोकप्रिय लोकसेवक की सेवाओं के ढेरमें से बहुत-थोड़ा अपनी प्रजाके सामने पहुँचा है। इन सेवाओं का पूरा पूरा मर्म और पूरी-पूरी जानकारी तो हमें तभी मिल सकती है जब महाराज स्वयं ही लिखें। पर इसकी बहुत ही कम आशा है। जबतक दूसरा कोई बहुत गहरा उतर कर--बहुत अभ्यास करके–या पूरी-पूरी कार्य-परंपरा प्राप्त करके अपने सामने नहीं आता; तबतक बाट देखते-देखते हमें खाली न बैठना पड़े–इसी भावना से जो कुछ थोड़ा मेरे पास आया है वही यहाँ परोस रहा हूँ।

यह तैयार हुआ ही था कि इतने में श्री झवेरचंद मेघाणी का 'माणसाईना दीवा' (मानवता के दीवे) प्रकाशमें आया। इन्होंने हमें महाराज के एक विशेष दृष्टि से दर्शन कराये और महाराज के विषय में अधिक जानने का कुतूहल पैदा किया–यह अच्छा ही हुआ।

इससे पहले "महाराज थया पहेलां" प्रकाशित हो चुका है। इसमें मैंने इनके पूर्व जीवन का निर्माण किस प्रकार हुआ–यह बताने की चेष्टा की है। 'बच्चे के लक्षण पलने में ही दिखाई देने लगते हैं' के अनुसार इनके बचपनसे ही कूता जा सकता है कि ये आगे बड़े हो कर क्या करेंगे? इस पुस्तक में इनके छोटे घरमें से समाजरूपी विशाल घरमें प्रविष्ट होनेके बादका पुरुषार्थ दिखाया गया है।

ऐसे उज्ज्वल जीवन का निर्माण इन्होंने किस प्रकार किया और समाज-सेवा के असंख्य काम इन्होंने किस भावना एवं किस

बलसे प्रेरित हो कर किये; यह जानने को प्रत्येकका सहज ही मन हो जाता है। धन-सम्पत्ति या आजकलका शिक्षण प्राप्त किये बिना ही एक सामान्य कुटुंब का बालक अपने प्रयत्नसे और कुछ कर डालने की उच्च भावनासे क्या–क्या कर सकता है—यह जाना जा सकेगा। इनके यज्ञमय जीवन की फैली हुई सुगंध अधिक व्यापक बनकर दरिद्र-नारायण की सेवा के लिए दूसरों को इनका अनुसरण करने में प्रवृत्त करे, इस आशा से इनके साथ बातें कर-कर और इनके विषय में बातें सुन-सुन कर जो जो तथ्य प्राप्त किये हैं। उन्हें कालक्रम से व्यवस्थित रूपमें प्रस्तुत करने का यह एक प्रयास है। मैं विश्वास रखता हूँ कि यह अपने गुजराती समाज के लिए प्रेरक, बोधक एवं रोचक सिद्ध होगा।

२. महाराज होनेसे पहले

इनका जन्म सं. १९४० महावदि चतुर्दशी (ता. २५—२—१८८४) को खेड़ा जिलान्तर्गत मातर-तालुकाके 'रढु' गाँव (इनका मौसाल) में हुआ है। इनका मूल गाँव 'सरसवणी' है जो महेमदावाद तालुके में आता है। ये जातिसे टोलकिया औदीच्य ब्राह्मण हैं।

इनके पिता श्री शिवरामजी व्यास *धूलीशाला के एक सुयोग्य, तेजस्वी, अध्यवसायी शिक्षक थे। माता के प्रेम और पिता के संस्कारों में पुष्ट होते हुए ये गाँवड़े के एक सामान्य विद्यार्थी की भाँति गाँव की गलियों में, गाँव के खेतों में एवं गाँव के समीपवर्ती नदी-नालों में खेल-खेल कर बड़े होते हैं।

बचपनमें ही अपने गाँवके श्री छोटालाल कवि की प्रेरणासे —केवल गुजरातीकी छठी श्रेणी का विद्यार्थी रविशंकर आर्यसमाज की ओर खिँच जाता है और श्रीमत् शंकराचार्य का क्रोध अपने सिर ले लेता है। इसका पाठशालीय अभ्यास छूट जाता है। परंतु बाहरके दूसरे अध्ययन की रुचि बढ़ जाती है।

सन् १९११ में इन्हें श्री मोहनलाल कामेश्वर पंड्या का संसर्ग होता है। इनकी साहसिक वृत्ति, अन्याय का सामना करने

* पट्टी पर धूली डालकर जहां अक्षर सिखाये जाते हैं।

की तेजस्विता और दूसरों के लिए घस मरने की (निछावर होनेकी) उत्कट भावना को देखकर पंड्याजी इनके प्रेममें पड़ते हैं और देशके लिए सर्वस्व बलिदान करनेकी पंड्याजी की भावना, गरीब जनता तथा होनहार युवकोंके लिए इनकी प्रेमालु मानसिक वृत्ति का अनुभव करके ये भी पंड्याजी की ओर आकृष्ट होते हैं।

सन् १९१६ में इन्हें गांधीजीके पहली बार दर्शन होते हैं। उसके बाद इनके जीवन में एक नया परिवर्तन आता है। गांधीजी के विचार इनके आर्यसमाजसे प्राप्त संस्कारों में एक नया बल पैदा करते हैं। ये स्वयं कहते हैं कि–" आर्यसमाज के कारण मेरी ग्राम्यता कम हुई। देश और धर्म के विषयमें ज्ञान बढ़ा। पर मुझे जीवन का संतोष तो गांधीजीने ही दिया। जब मैं बहुत छोटा था; तब माता-पिता की ओर से मुझे शुभ संस्कार मिले थे। उनमें आर्यसमाजने तर्क की वृद्धि की और गांधीजीने जीवन जीनेकी दृष्टि दी। पहले-पहले मुझे आर्यसमाजकी पुस्तकोंने खूब आकृष्ट किया था। पर स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के लेखोंने मुझे गंभीरतासे विचार करना सिखाया और गांधीजीने मुझे जीवन का स्पष्ट दर्शन कराया। मेरे जीवनमें मुझे अधिकसे अधिक आनंद देनेवाले व्यक्ति गांधीजी हैं। यदि ये महापुरुष न होते तो न जाने आज मैं कहाँ होता। इनके साथ बैठकर मैंने बहुत-सी बातें भी नहीं कीं, चर्चाएँ भी नहीं कीं और बहुत से प्रश्न भी नहीं किये। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी सभी उलझनें इस महापुरुषने ही सुलझाई हैं। इनके समयमें मेरा जन्म हुआ है। एतदर्थ मैं अपने-आपको सदा धन्य मानता हूँ।

आरंभ में जब मैं आर्यसमाज पर मुग्ध हो गया था; तब मेरा महादेव की पूजा करना और उनपर बेलपत्र चढ़ाना छूट चुका था। उस समय वह मुझे अच्छा भी लगा था। पर आज जब मैं विचार करता हूँ तो मुझे पता चलता है कि उस समय के अंधे आवेश में मैं अपना भक्त-हृदय खो बैठा था। बीच बीच में मुझे इसका संदेह भी होता था। पर इस प्रकार खोये हुए मेरे भक्तिभाव की गांधीजीने फिरसे प्राप्ति करा दी।"

धीरे धीरे गांधीजीके विचारों की इन पर रंगत चढ़ती जाती है। स्वदेशी और खादी के लिए इनका प्रेम बढ़ता जाता है। परतंत्रतामें फँसे भारत को स्वतंत्र करानेकी इन्हें छटपटी लगती है। स्वामी नित्यानंदजी की ओरसे इन सब में सिंचन होता रहता है। इसलिए इनका कार्यवेग भी बढ़ता जाता है।

सन् १९१९ में ये स्वराज्यके सच्चे स्वयंसेवक बनते हैं। गांधीजीकी सौंपी हुई तथा जप्त हुई 'हिंद स्वराज' पुस्तककी प्रतियां नडियाद पहुँचाने में एवं निर्भयतापूर्वक घर-घर जाकर लोगों में बेचने में ये अपने आपको कृतार्थ हुआ मानते हैं। इन्हें खबर भी नहीं पड़ती इस प्रकार इनके जीवनमें परिवर्तन होता जाता है।

इसके बाद ये स्व० कस्तूरबाके साथ बहियल के खादी केंद्रमें थोड़ा समय रह आते हैं। गाँव में जाकर बसनेका कस्तूरबा को दिया हुआ गांधीजीका संदेश इनके मनमें घर कर लेता है। सन् १९२० के असहकार के बाद 'सुणाव' में ये राष्ट्रीय शाला स्थापित करते। अपनी विशिष्ट शैलीसे शिक्षाका कार्य करते हैं। जब शालाका

तंत्र सुव्यवस्थित हो जाता है तो वापस महेमदाबाद ताल्लुके में पहुँच जाते हैं।

वहाँ महेमदावाद के व्यापारियों पर सरकारी अधिकारियों की ओरसे वर्षोंसे लदी हुई वेगार के सामने धर्मयुद्ध छेड़कर उन्हें मुक्त कराते हैं।

इस प्रकार ये आज तक कुटुंबमें रहते-रहते अपना विकास करते थे और जो कुछ आगे-पीछे होकर सेवा हो सकती थी; करते थे। इसमेंसे ये सदा के लिए और चौबीस घंटोंके सेवक किस प्रकार वन जाते हैं। यह हम इसके आगेके प्रकरणों में देखेंगे।

३. डाकुओं से भेंट

कुछ भी भय किये बिना दिन-रात–जहाँ चाहें वहीं–महाराजको फिरते देखकर कितनों को अचंभा होता और कितने चिंता भी व्यक्त करते। पर ये तो काम आया कि क्षणभरका विलंब किये बिना वहाँ पहुँचे ही होते।

सन् १९२२ की बात है। ये छिपियाल गाँवमें साझा लेने गये थे। वहाँ से लौटते समय अँधेरा हो गया था। पर ये तो कंधे पर झोला रखकर लंबे डग अपना मार्ग काटते जाते थे। भरकुडा गाँवके पास आये। वहाँ इन्होंने लोगोंको उतावले-उतावले अपने ढोर हाँककर लाते हुए देखा। इनमें से एकने कुछ दबी आवाजसे महाराजसे पूछा "अब कहाँ जा रहे हैं?" 'सरसवणी' इतना संक्षिप्त उत्तर देकर महाराज तो आगे बढ़े। जब ये बीचमें की गोचरभूमि पार करके एक नदी-गड्ढे पर पहुँचे तो वहाँ एक मनुष्यने आगे बढ़कर इनकी छाती पर हाथ रखकर कहा कि "वापस चले जाइए"। इस हाथ रखनेवाले व्यक्तिको पहचानते हुए महाराजने कहा "कौन, पूंजा?" इसने उत्तर दिया "हाँ, वापस चलिए, निकम्मे लोग खड़े हैं" महाराजने पूछा "कौन?" उत्तर मिला "डाकू"।

एक ही क्षणमें इनके मनमें अनेक विचार आ गये। 'बार-डोली' की लड़ाई में भरती होनेका मैं ही विचार कर रहा हूँ। मैं सिर दे डालने की तैयारी भी दिखाता हूँ। डाकुओंके आने पर न भागनेकी सलाह देनेवाला भी मैं ही हूँ। वापस होनेको इनका मन नहीं किया। इनके मनने निश्चय कर लिया। ये आगे बढ़ने लगे। पूंजाने फिर इन्हें रोककर कहा "आगे मत जाइए, इज्जत चली जायगी, मैं आपकी कुछ सहायता नहीं कर सकूंगा"।

"इज्जत इतनी सस्ती नहीं जो मुफ्त में चली जाय" इतना कहकर महाराज आगे चलने लगे और चलते चलते कहा "बता तो सही वे कहाँ हैं? मुझे इन्हींके पास जाना है" पूंजाने घब-राते-घबराते अंगुलीसे स्थान बताया। महाराज कुछ आगे जाकर सूखे नालेमेंसे होकर एक चढ़ाववाले खेत की बाड़में के टेढ़े मार्गसे ऊपर चढ़े। चढ़कर देखा तो इनके सामने ही एक बंदूकवाला आकर खड़ा हो गया था। इसे देखकर महाराज हँस पड़े और इन्होंने पूछा "दूसरे कहाँ हैं?" यह सब ऐसी स्वाभाविकता से हुआ कि महाराज कहते हैं "मुझे खबर नहीं पड़ी कि मैं क्यों हँसा, मैंने क्या पूछा, अथवा उस बंदूकधारी के पास जाने की हिम्मत मुझमें कहां से आई। जब स्वाभाविक विपत्ति आती है तो मुझमें नया उत्साह और अतर्कित शक्ति आ जाती है। घब-राहटका तो नाम तक भी नहीं रहता।" महाराजका प्रश्न सुनकर वह बंदूकधारी कुछ पीछे हटा। इतने में दो आदमी बंदूकें लेकर बाहर आये। इनसे भी मैंने वही प्रश्न किया। ये सन्न रह गये कि ये कहाँसे? इनमेंसे कुछ लोग मुझे पहचानते होंगे। पर मैंने

किसीको नहीं पहचाना । यह टोली नामदारिया की होनी चाहिए; ऐसा मैंने अनुमान किया था । इनका अगुआ मंगन था । पर वह दूर खड़ा था । दूसरा एक व्यक्ति घोड़ेपर चढ़कर देख-रेख करता-फिरता था । इसने कड़ककर कहा 'कौन है?' मैंने कहा 'मैं हू डाकू' मेरा उत्तर सुनकर सब मेरे पास आने लगे। जब ये थोड़े अंतर पर रह गये तो मैंने कहा "बैठ जाओ, मुझे एक वात कहनी है" पाँच-सात जन मेरे पास आये और बैठ गये । मैं भी इनके पास बैठ गया । वह अग्रेसर और घोड़ेवाला दोनो भरी बंदूकें लेकर खड़े-खड़े पहरा देते रहे ।

बैठे हुओंमेंसे एकने कहा कि 'अरे, यह कैसा डाकू?' मैंने कहा 'हमारी भी एक डकैती है'। पर हमारा डाका इस अंग्रेजी सरकार के सामने है । यह हमारे गरीब भाइयों को लूट -लूट कर खा गई है । इसने हमारा देश गुलाम बना दिया है । यह हमारे परिश्रम की कमाई विदेश पहुँचा देती है । अपने ही देश में अपने भाई भूखे मरते हैं और गोरोंको यह बड़े बड़े वेतन देती है । ऐसी सरकार को निकाल फेंकना चाहिए। हमारा सरदार गांधी महात्मा है । सच्चा डाका तो यही है । मैं तुमसे पूछने आया हूँ कि तुम इसमें सहायता करोगे या नहीं? तुम भी डकैती करते हो। पर इससे तो अपने हीं भाई लूटे जाते हैं । एकने उत्तर दिया 'हम गरीबोंको तंग करनेवालों को ही लूटते हैं'। महाराजने कहा 'पर मैं चाहे जहाँ जाऊं, मुझसे तो कोई गरीव नहीं डरता। ये तो मुझसे भेंटते हैं । तुमसे तो गरीब थरथराते हैं'।

दूसरेने पूछा, 'पर गांधीजीने गरीबोंका कौनसा भला किया?' महाराजने अमदाबादमें अभी ताजी हुई मजदूरों की लड़ाई की बात कही कि मिलोंवाले गरीब मजदूरोंका वेतन नहीं बढ़ाते थे। महात्मा जीने बढ़वा दिया। सामनेसे उत्तर मिला, "इससे हुआ क्या?' मजदूरोंका वेतन बढ़वा दिया; पर कपड़ा तो मँहगा करा दिया। वही बढ़ोतरी कपड़े पर मढ़ दी होगी न!" महाराज बोले, 'तुम्हारी बात सच्ची है; इसीलिए तो गांधीजी मिलोंका कपड़ा पहनने को ना पाड़ते हैं और सबसे कहते हैं—खादी पहनो। दूसरे ने जवाब दिया, "पर लोग ऐसे खादी पहननेवाले नहीं। वे तो जब इस दुमुँही को देखेंगे तभी खादी पहनेंगे। महाराजने कहा—जो हम सबने खादी पहनी है तो क्या इस दुमुँही को देखकर पहनी है? उत्तर मिला, 'ना, ना आप तो बहुत समझते हैं'। महाराजने कहा—'इसीलिए तो गांधीजी भी सबको समझाने के लिए कहते हैं। समझकर जो पकड़ लेता है; वही अंत तक टिकता है'। एकने प्रश्न किया—"पर गांधी महात्मा इस सरकारको बिना शस्त्र के कैसे निकाल सकेगा?" महाराजने कहा—"यही तो इनकी विशेषता है, इसने अहिंसा का एक नया शस्त्र ढूँढ़ निकाला है। जिसके आगे बड़ी-बड़ी बंदूकें और तलवारें पानी भरती हैं।' दूसरेने कहा, "यह शस्त्र कैसा है? दिखाइए तो जरा" महाराज बोले—"यह तो तुम्हें महात्माजी ही दिखावेंगे। यदि तुम उनसे मिलना चाहो तो दर्शन करा दूँगा। तुम सबको विश्वास न होता हो तो तुममेंसे एक जन मेरे साथ आवे।" अपनी बात में इन्हें रस पड़ते देखकर महाराजने बात आगे चलाई। "देखो, जो तुम डकैती करने निकले हो इनमें कुछ तो निर्धनताके कारण

भरती हुए हैं. कुछ भगौड़े हैं, इसलिए तुममें आ मिले हैं और कुछ मौजके लिए 'चलो भाई चलो' करके आ जुटे हैं। पर ऐसी लूटें मारनेसे कभी किसीकी भूख दूर हुई नहीं देखी। भूख तो अपना राज्य अपने हाथमें आवे तभी दूर होगी। मैं तुमसे पूछता हूँ कि आजतक कितने डाकू धनाढ्य बने ? किसके बच्चे खिलौनोंसे खेलने लगे ? कौन सुखी हुआ ? चाहे हम छोटी-छोटी लूटें कितनी ही मारें; पर जबतक बड़ा लुटेरा हमें दिन-रात लूटता रहेगा तबतक अपने हाथमें कुछ नहीं आवेगा। गांधीजीने अपने देशकी समस्त जनता को इकट्ठी करके इस बड़े लुटेरेको निकाल डालने का निर्णय किया है। यदि तुम छोटे-छोटे स्वार्थ छोड़कर इसमें भरती हो जाओ तो तुम्हारा और हम सबका कल्याण हो। बादमें तो लूटने या डाका मारने का कारण ही नहीं रहेगा। यदि अपना राज्य हो, सबको पर्याप्त भूमि मिले और सबके साथ न्याय हो; तो फिर डाका किसके सामने मारेंगे ?"

इन सारी बातों परसे डाकुओंका भी मन गांधीजीके दर्शनके लिए उत्सुक हुआ। महाराजने कहा कि मैं अपने इस प्रदेशमें गांधीजीको घुमानेके लिए लानेवाला हूँ। उस समय तुम सब मिलने आना। इस प्रकार लगभग आध घंटे तक बातें करके महाराज चल पड़े।

इस समय डाकुओंमेंसे एकने पूछा, "आप अकेले चले जायँगे ? कहें तो हममेंसे कोई थोड़ी दूर तक पहुँचा आवे।" महाराजने कहा—"यदि तुम्हारे पहुँचानेकी जरूरत पड़ती तो मैं तुम्हारे पास अकेला आता ही कैसे ?"

इस प्रकार चोर-डाकुओं में भी एक उच्च भावना का बीज बोकर महाराजने सरसवणी का रास्ता पकड़ा।

४. विशाल घरमें प्रवेश

सन् १९१४–१८ के महायुद्धमें हिन्दुस्तानने माना कि अब ब्रिटेन विपत्तिमें है। इसकी सहायता करनी चाहिए। गांधीजी जैसे अहिंसा के पुजारी, सरकार के पूर्व सभी अन्यायों को भूलकर इसकी सहायता करनेके लिए तैयार हो गये। इनका विचार था कि जिस राज्य का हमने आश्रय लिया है, जिससे हम लाभ उठाते हैं, यदि उस पर विपत्ति आवे तो हमसे देखते नहीं रहा जायगा। इन्हें विश्वास था कि युद्धकी आगमें से निकल कर ब्रिटेन हिन्दुस्तानकी प्रजाको सच्ची सत्ता सौंप देगा। स्वयं इंग्लैंडके बड़े प्रधान और वाइसरायने भी वचन दिया था। ढिंढोरा पिटवाकर घोषणा की थी कि यदि विपत्ति के समय हिन्दुस्तान सहायता करेगा तो इसका शुभ फल हिन्दुस्तान को मिलेगा ही।

परंतु युद्ध समाप्त हो गया और बात बदल दी गई। दर्द मिटा वैद्य वैरी बन गया। युद्धके समय सहायता करनेमें हिन्दुस्तानने कुछ कमी नहीं रखी। फिर भी हिन्दुस्तानके भाग्यमें शुभ फल स्वरूप रोलेट-ऐक्ट आया। इस नियमके अनुसार सरकार संदेहमात्रसे किसी को भी पकड़ सकती है। बिना केस

चलाये जितने समय तक चाहे जेल में रख सकती है। इसके सामने न चले वकील की और न सुनाई हो अपील की। इसके अन्तर्हित सरकारी उद्देश्य तो बहुत ही घातक था। भारतमें स्वतंत्रता-आंदोलन उठनेसे पहले ही दब जाय, इसके लिए सरकार तेजस्वी नौजवानों को जेलके शिकंजों ढकेल देना चाहती थी। पर इसका उलटा ही प्रभाव पड़ा।

इस विधानसे सारे देशमें असंतोष और उग्रता बढ़ने लगी। गांधीजी जो सरकार पर विश्वास रखते थे, इस विधान के बाद विश्वास उठने लगा। सरकार और वाइसराय के वचन तथा ढिंढोरा हवामें उड़ते दिखाई दिये। गांधीजीने निर्णय किया कि इसका सामना करना ही चाहिए। सरकारी दमनचक्र द्रुत—गति से चल चुके थे। 'मुसलमानों की धार्मिक सत्ता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा'—युद्धकालमें दिये हुए इस वचनका भी सरकारने भंग कर दिया। इससे मुसलमानों में भी असंतोष फैल गया। इसके विरोधस्वरूप इन्होंने धार्मिक आंदोलन आरंभ किया।

गांधीजी लेख लिख-लिखकर सरकारी अन्यायके विरुद्ध प्रजा को तैयार करने लगे। सरकारी अधिकारियों के दमनने इसमें साथ दिया। भारतमें पहली ही बार गांधीजीने रोलेट-ऐक्ट के विरुद्ध देशव्यापी कार्यक्रम गढ़ डाला। इस विरोध में बालक से लेकर बूढ़े तक और गरीबसे लेकर धनाढ्य तक, प्रत्येक अपना—अपना भाग दे सके—ऐसा कार्यक्रम था। ३० वीं मार्च रोलेट-ऐक्ट का विरोध—दिन निश्चित किया गया। उस दिन २४ घंटेका

उपवास, सर्वत्र हड़ताल और सभाएँ तथा जुलूस निकालना निश्चित हुआ। यह कार्यक्रम गाँव-गाँवपहुँचा भी दिया गया। परंतु बाद में यह विचारा गया कि यदि यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुँचाना हो तो अवधि लंबानी चाहिए और तिथि बदलनी चाहिए। इस लिए २० वीं मार्चके स्थान पर छठी अप्रैल का दिन निश्चित किया गया।

पंजाब के नेताओंने गांधीजी को पंजाब आने के लिए आमंत्रण दिया था। गांधीजी वहाँ जानेवाले थे। बंबई में उन्होंने छठी अप्रैल का दिन बहुत धूमधामसे मनाया। देशभर में यह दिन बहुत ही उत्साहसे मनाया गया। दिल्ली तथा कुछ दूसरे स्थानों में पूर्वसंदेश के अनुसार ३० वीं मार्च ही विरोध-दिन मनाया गया। गांधीजी छठी अप्रैल मनाकर पंजाब को चल पड़े। पर सरकारने इन्हें गाड़ी में ही पकड़ लिया। इस समाचारके बंबई पहुँचते ही हुल्लड़ मच गया। सरकारने इन्हें छोड़कर बंबई पहुँचा दिया। इन्हें देखकर बंबई के लोग शांत हो गये। पर इस पकड़ का प्रभाव तो स्थान-स्थान पर हुआ था। इसलिए अहमदाबाद और वीरमगाममें हुल्लड़ मच उठा। बंबईसे सेना बुलाई गई। अहमदाबाद जाती हुई इस सैनिक-गाड़ी को रोकने के लिए नड़ियाद के पास लाइन उखाड़ दी गई। लाहौर और अमृतसर में तो बहुत ही अत्याचार हुए। पर वहाँ के समाचार आगे न फैलने पावें, सरकारने इसकी पक्की व्यवस्था कर रखी थी।

वहाँ ऐसा हुआ कि पंजाब के नेता डा० किचलू और डा० सत्यपाल को बंदी बनाने से लोग आवेश में आ गये थे। लोगोंने

इन्हें छुड़ाने के लिए अधिकारियों से प्रार्थना की। पर कुछ न्याय नहीं मिला। इससे लोग बहुत आवेश में आ गये और झगड़ा मचाने लगे। सरकारने गोली चला दी तथा लोगोंने हाथा-पाई आरंभ कर दी। अमृतसर की रक्षा का भार सेना को सौंपा। इसने लोगों को दबाकर शांत कर दिया।

१३ वीं अप्रैल को हिन्दुओं का नया वर्ष था। उस दिन अमृतसर के जलियांवाले बाग में लोगोंने इस अत्याचार के विरोध में खुली सभा की। सैनिक अधिकारी जनरल डायर मशीनगन एवं सैनिक टुकड़ी समेत वहाँ जा पहुँचा। जिस चौगान में लोग इकट्ठे हुए थे; उसमें आने-जाने का एक ही दरवाजा था। वहीं मशीनगन जमाकर इसने लोगों को विखर जाने का पर्याप्त समय दिये विना ही मशीनगन चला दी। जबतक इसमें की गोलियाँ समाप्त नहीं हुई तबतक यह चालू ही रही। सैंकड़ों निर्दोष मनुष्य मारे गये। लहू की राएँ वह निकलीं।

इस हत्याकांड का समाचार जहाँ जहाँ फैलता गया, वहाँ वहाँ हा-हाकार मच-गया। पंजाब के दूसरे भागों में भी इस सप्ताह में हल्ले-गुल्ले हुए थे। अधिकारियों को यही चाहिए था। इन्होंने आया हुआ दाव खोया नहीं। अत्याचार कर के प्रजा को दबाने में इन्होंने कोई कसर नहीं उठा रखी। कालेज के नौजवान विद्यार्थियों को पकड़-पकड़ कर कड़कती हुई धूप में नंगे पावों १६—१६ सोलह-सोलह मीलतक चलाया। छोटे-छोटे बच्चों को वृक्षों से बाँधकर काट डाला। अमृतसर की एक गली में किसी अंग्रेज की स्त्री पर आवेश में आये हुए लोगोंने आक्रमण कर दिया। इसका

वैर निकालने के लिए उस गली में से आने-जाने वालेलोगों को पेट के बल रिंगाया गया। बहनों की लाज-मर्यादा जंगली गोरों के हाथ लगी। इस समाचार से सारे देशमें अत्यंत भयंकरता छा गई।

गांधीजीने पंजाब-अत्याचार की जाँच करने के लिए कांग्रेस की ओर से एक समिति नियुक्त की। जिसमें निम्नलिखित सभ्य थे :–१. गांधीजी, २. श्रीजयकर, ३. अब्बास साहब, ४. श्री मोतीलाल नेहरू और ५. देशबंधुदास।

सन् १९१९ की महासभाका अमृतसर में भरना निश्चित हुआ था। इसके–अनुसार महासभा (कांग्रेस) तो वहां भरी गई। पर पंजाब के अत्याचारों से जनता में बहुत ही असंतोष व्यापा हुआ था। तिलक महाराज की अध्यक्षता में गरम-पक्ष कोई-न-कोई सक्रिय कदम उठाना चाहता था। मान्टेग्यु-चैम्स-फर्ड सुधारा स्वीकार लिया जाय–यह गांधीजी का मत था। गरम-पक्ष को इसमें विपत्ति थी। परंतु थोड़ी बहुमति से गांधीजी का प्रस्ताव कांग्रेस में पास हो गया–और स्वीकार लिया गया।

पंजाब-अत्याचार की जाँच के लिए जैसे कांग्रेसने समिति नियुक्त की थी; वैसे ही सरकारने भी एक हंटर-कमिटी नियुक्त की थी। दोनों समितियों के निर्णय भिन्न-भिन्न ही आये। सरकारी अधिकारी सरकार को बुरा कैसे बनने दें? विरोधरूप अन्याय तो था ही। अतएव पंजाब के अत्याचारों के संबंध में कुछ सहायता नहीं मिली। यह अन्याय इसीलिए ही निर्णय में मिलाया गया था। इन दोनों के प्रतिकार-रूप में गांधीजीने देश को असहकार चालू करने की सम्मति दी। गांधीजी भी सरकार पर के

विश्वास को पूर्णतया खो बैठे। इन्हें लगा कि अब मरहम-पट्टी से काम नहीं सधने का। अब तो नश्तर लगाना ही पड़ेगा–शल्यक्रिया करनी ही पड़ेगी।

सन् १९२० की ३१ जुलाई को लोकमान्य तिलकजी का बंबई में अवसान (स्वर्गवास) हो गया। गांधीजी उस समय बंबई में ही थे। बंबई में तिलक महाराज की विशाल श्मशानयात्रा निकली। उनका अग्निसंस्कार करने के बाद गांधीजीने पहली अगस्त को सवेरे-सवेरे तिलक महाराज की श्रद्धांजलि के रूप में एक लेख लिखा और साथ-साथ असहकार की घोषणा भी की। ये दोनों लेख 'यंग इँडिया' के एक ही अंक में प्रकाशित हुए थे।

असहकार के कार्यक्रम पर विचार करने के लिए कलकत्ते में कांग्रेस की विशेष बैठक बुलाई गई। इसमें असहकार का प्रस्ताव पास किया गया। विद्यार्थी सरकारी-विद्यालय और कालेजों का बहिष्कार करें, वकील अपनी वकालत छोड़ें, सरकारी नौकर अपनी-अपनी नौकरियों पर न जायँ और पुरस्कृत व्यक्ति अपने अपने पुरस्कार लौटा दें ऐसा विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। इससे लोगों में एक नया ही आंदोलन चल पड़ा। राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित करने की हलचल उठ खड़ी हुई। परदेशी माल के बहिष्कार के परिणाम-स्वरूप स्वदेशी का आंदोलन पनपा। प्रजा में एक नई चेतनता आ गई।

इसी वर्ष दिसंबर में नागपुर में महासभा का अधिवेशन हुआ। इसमें भी कलकत्ते की विशेष बैठकवाला असहकार का प्रस्ताव

भारी वहुमतिसे पास हुआ। इसी सभा में धर्मपर अन्याय करने के विरोधमें मुस्लिमभाइयों को साथ देने का निर्णय प्रगट किया गया।

स्व० पंडयाजी के साथ महाराज भी इस महासभा में गये थे। कांग्रेस का विधान तथा चतुर्विध कार्यक्रम इसी सभा में बनाया गया था। यह कार्यक्रम समझाते हुए गांधीजीने कहा था कि यदि यह कार्यक्रम—इसकी भावना समझकर—ठीक ठीक पालित किया गया तो एक ही वर्ष में अंग्रेजों को भारत का किनारा छोड़ते हुए देख रहा हूँ। जब ये जायँगे तो मैं उन्हें विदा देने के लिए बंबई के तटपर जाऊँगा। जब मैं विदाई दे कर मुँह मोड़कर पीछे की ओर देखूँगा तो भारत का तंत्र पूर्ण रूपेण सुव्यवस्थित दिखाई देगा। पर यह सब इस कार्यक्रम के सच्चे पालन पर अवलंबित है। महाराज सुनाते हैं कि "गांधीजी के इन शब्दोंने मुझमें नई श्रद्धा पैदा कर दी"। उसके बाद महाराज के रचनात्मक कार्यों में नया ही तेज प्रगट होने लगा।

१९२१ की फरवरी में बेझवाड़े में हुई कांग्रेस की महासमितिने नीचे लिखा हुआ रचनात्मक कार्यक्रम गढ़ा और सारे देश में इसके द्वारा जागृति लाने का निश्चय किया :—

(१) तीन महीनों में एक करोड़ रुपये का तिलक-स्वराज्य-फंड उगाहना।

(२) एक करोड़ महासभा के सभ्य बनाने।

(३) बीस लाख चर्खे चालू करने।

जनता सरकार को सीधा ललकारना चाहती थी। पर गांधीजीने इसके सामने यह कसौटी रखी और कहा कि यदि हम

इस कार्यक्रममें पूर्णतया उत्तीर्ण हो गये तो हमारी योग्यता सिद्ध हुई मानी जायगी।

कार्यकर्ता दिन और रात देखे विना ही तीन महीनों में इस कार्यक्रम में उत्तीर्ण होने के लिए गाँ-गाँव घूमने लगे। इस समय के उत्साह और उत्तेजना की तो बात ही छोड़ दें। सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार और चर्खे के प्रचारसे गाँव-गाँव महासभा का संदेश पहुँच गया। लड़ाई छिड़ेगी तो गुजरात को सबसे पहले आगे आना होगा — ऐसा गांधीजीने पहलेसे ही जना दिया था। अब गुजरात में लड़ाई कहाँसे छिड़े? सूरतसे या खेड़े से? इसकी खींचातानी चल रही थी। जो अधिक तैयारी करेगा; उसे ही चुना जायगा। इसलिए काम करने में प्रतियोगिता चल रही थी।

गुजरात के कार्यकर्ताओंने भड़ौच में हुई गुजरात-राजकीय-परिषद् में वेझवाड़ा के कार्यक्रम को हर्षपूर्वक अपना लिया। प्रति-जिला काम का विभाजन कर दिया गया। इस परिषद में स्व० दयालजीभाई, श्रीकल्याणजीभाई एवं डा० चंदुभाईने अपनी समस्त संपत्ति कांग्रेस के चरणों में रख दी। इस समय के देश पर बलि हो जाने के इनके उत्साह को देखकर भलोंभलों को भी उफान (जोश) आ जाता था।

तिलक-स्वराज्य-फंड में खेड़े जिले से एक—लाख रुपया चंदा आया। इस समय खेड़े जिले की समिति के प्रमुख श्री अब्बास साहब तैयबजी थे। इन्होंने भी यह रकम प्रति-तालुका बाँट डाली। इसमें रविशंकर महाराज को महेमदावाद तालुके में से दस-हजार रुपये चंदा के रूप में मिले।

इन्होंने सोचा कि दूसरोंके यहां उगाही करनेके पहले स्वयं तो अपना भाग देकर मुक्त हो जाना चाहिए। पर इनके पास कुछ पूंजी तो थी नहीं? ध्यान में आया कि जब विदुर के यहां कृष्णजी आये थे तो उसके पास क्या था। घर और जमीन वेचकर भी मुझे कुछ-न-कुछ देना ही चाहिए। इन्होंने यह अपना विचार अपनी पत्नी को सुनाया, पर यह विचार उनके गले नहीं उतरा। इनकी पत्नी को लगा कि यह तो बच्चों को बावाजी बनाने की बात है। महाराज उनके मन का भाव ताड़ गये। बाद में बिलकुल आग्रह नहीं किया। पर इनके मनमें संकल्प हुआ कि "यदि मैं इस संपत्तिमेंसे देश की सहायता नहीं कर सकता तो अपने-आपको तो देश के लिए समर्पित कर सकता हूँ।" यह कोरा संकल्प ही नहीं रहा, दृढ़ निश्चय बन गया। उस दिन से इन्होंने घर की चिंता छोड़ दी। पत्नी और बच्चों का भरण-पोषण उस थोड़ी जमीन की आय पर ही निर्भर रहा।

महाराज सुनाते हैं कि मेरे मन के इस निर्णय के बाद मैं फूल-सा हलका हो गया। मुझे लगा कि अब मैं देश के लिए जो कुछ करना चाहूँ कर सकता हूँ। मेरे मनके कल्पित बंधन छूट गये। बहुत समय से मैं छट-पटा रहा था। बिना अंतराय के समाज के लिए काम आने की स्थिति मुझे प्राप्त हुई। अब गांधीजी कहें कि जा गाँवमें बैठ; तो मैं तैयार, गांधीजी कहें कि चल चर्खा चला; तो मैं तैयार, गांधीजी कहें कि सिर दे; तो मैं तैयार। आजतक मैं व्यर्थ बोझा ढोता फिरता था। मैंने देखा कि मेरे बिना भी मेरे कुटुंब का संसार चल रहा है। यह वचन

मुझे बिलकुल सत्य जँचा कि "**मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयोः** "।"

इस निर्णय के बाद महाराज दुगुने उत्साह से गाँव-गाँव फिरने लगे। अब्बास साहब की अध्यक्षता में खेड़े जिले के कार्यकर्ताओंने निश्चित किये गये एक लाख से अधिक पैसे सबने मिलकर एक महीने में ही इकट्ठे कर लिए।

महाराज सुनाते हैं कि जब मैंने इस निर्णय की बात स्वामी नित्यानंदजी से कही तो उन्होंने आशीर्वाद दिया और साथ-साथ चेतावनी भी दी–"तुम ध्यान में रखना कि अब तुम छोटे घर में से विशाल घरमें प्रविष्ट हो रहे हो, अनावश्यक खर्च न करना। हम साधु-संन्यासियों को भी मर्यादा में खाना होता है। हम समाज के पास अपनी जितनी संपत्ति धरोहर के रूप में छोड़कर आते हैं; उतना ही हमें उपयोग करने का अधिकार है। इस बात पर ध्यान रखे बिना जो ऊल-जलूल खर्च करते हैं; वे चोर हैं। घर छोड़ कर तुम भी समाजकी सेवा के लिए निकले हो। तुम पर भी ये नियम लागू होते हैं"। स्वामीजी के इन शब्दों को ये बार-बार याद करते हैं और कहते हैं कि "प्रत्येक सेवक के लिए स्वामीजी के ये शब्द लालबत्तीरूप हैं। मैं तो प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ कि मुझे विशाल घर मिला है। मैं जिन्हें–पहचानता भी नहीं ऐसे भाई और बहनें मेरा ध्यान रखने लगी हैं। आज मैं जहाँ जाता हूँ वहीं घर से भी बढ़कर प्रेम मेरे अनुभव में आता है।"

इस प्रकार महाराजने छोटा घर छोड़कर विशाल घर बनाया। इसलिए स्थान-स्थान पर इनके घर बन गये हैं। स्थान-स्थान पर इनके स्नेही और स्वजन पैदा हो गये हैं।

सन् १९२१ की महासभा अहमदाबाद में होनेवाली थी। आज जहाँ वाडीलाल-साराभाई अस्पताल है; वहाँ महासभा का मंडप बना था और जहाँ प्रीतमनगर है वहाँ पूरा खादीनगर रचा गया था। जनता लड़ाई के लिए छटपटा रही थी और सरकार भी इसकी तैयारी में ही थी। जन-जन में खबर उड़ रही थी कि 'महासभा को तो तोपों से उड़ा देनेवाले हैं। पर गांधीजीने अपने लेखों और व्याख्यानोंसे तथा रचनात्मक कार्यक्रम के चमत्कारी प्रभावसे देश में नया ही चेतन भर दिया। अहमदाबाद की महासभा में सत्याग्रह करने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया और इसका शासन-सूत्र गांधीजी को सौंपा गया। जैसे गांधीजीने पहले कहा था; वैसे ही इनकी दृष्टि गुजरात पर पड़ी। सूरत का बारडोली प्रदेश (ताल्लुका) और खेड़े का आणंद प्रदेश दोनों सत्याग्रह-यज्ञ आरंभ करने को तैयार थे। पर गांधीजीने बारडोली को ही चुना।

सन् १९२२ की चार फरवरी को बारडोली में सत्याग्रह करने की सूचना (एक महीने की अवधि—सहित) इन्होंने वाइसराय के नाम भेज दी। लोग प्रतीक्षा में थे कि अब कोई उथल—पुथल मचेगी। पर दैववशात् इसी समय युक्तप्रांत के चौरीचौरा गाँव में हल्ला-गुल्ला होने का समाचार मिला। लोगोंने उत्तेजित होकर अधिकारी एवं पुलिस को जला डाला। यह समाचार पाकर

गांधीजीने घोषित किया कि अभी जनता मेरी अहिंसा को पचा नहीं सकी है। इसलिए मैं सत्याग्रह स्थगित करता हूँ।

इस घटनासे कार्यकर्ता हतोत्साह हो गये। सूचना दे देने पर भी गांधीजीने सत्याग्रह नहीं किया—इसमें कई-एक को अपमान दिखाई दिया। कितने निराश हो गये। पर गांधीजीको जो सत्य लगता था उसे कभी नहीं छोड़ते थे।

इस सत्याग्रह के आरंभ होने से पहले ही उन्होंने 'यंग इँडिया' में 'छूटा दोर' 'पतंग नृत्य' 'हुंकार' नामक तीन लेख लिखे थे। सरकार को ये बहुत खटके थे। इसलिए जब गांधीजी अजमेर जाकर वापस अहमदाबाद आये तो उसी रात साबरमती—आश्रम में से इन्हें पकड़ लिया गया।

५. अब तू इस जाति की सेवा करना

गांधीजी का बताया कार्यक्रम पूरी गति से चल रहा था। गाँव-गाँव चर्खों की गुंजार होने लगी। सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार हो रहा था। नई-नई राष्ट्रीय शालाएँ स्थापित होती चली जा रही थीं। 'तिलक-स्वराज्य-फंड' जिस जिस प्रांत में से उगाहा गया; उसी उसी प्रांत में रचनात्मक कार्यों पर व्यय करने की छूट दे दी गई।

गांधीजी खेड़े जिले में आनेवाले थे। १९२२ की २५ मार्च को इन्हें पकड़ लिया गया। सारा देश परम आतुरतासे बाट जोहने लगा कि देखें अब क्या होता है।

गांधीजी का अभियोग (केस-मुकदमा) अहमदाबाद में चलनेवाला था। इस समय पंडित जवाहरलालजी भी यहीं आये हुए थे। महाराज भी गांधीजी से मिलने के लिए गये। पर पारणपत्र (पास) के बिना किसी को अंदर जाने नहीं दिया जाता था। महाराजजी सुनाते हैं कि "दस-मिनिट तक मैं जेल के दरवाजे के आगे चक्कर काटता रहा। इतने में मैंने देखा कि श्री अब्बास साहब गांधीजी से मिलने के लिए यहीं आ रहे हैं। इनके साथ मुझे भी अंदर जाने की अनुमति मिल गई। मुझे बहुत हर्ष हुआ।

ग्यारह बजे तक अब्बास साहब महात्माजी के साथ बातें करते रहें। मैं इनके पास बैठा-बैठा सब बातें सुनता रहा। गांधीजी बाहर हों या अंदर हों—एक से ही रहते हैं। इनमें वही उत्साह वही प्रसन्नता और वही वातावरण पर का स्वामित्व विद्यमान था।

उसी दिन न्यायालय में इनका अभियोग चला। वहाँ भी पारण-पत्र (पास) के बिना जाने का निषेध था। मैं तीन-घंटे तक कचहरी के बाहर बैठा रहा। अभियोग चल चुका और बाहर खबर आई कि महात्माजी को छः वर्ष का दंड कर दिया गया। यह सुनकर लोगों में उदासीनता छा गई। पर जब महात्माजी न्यायालय से बाहर आये तो खिड़-खिड़कर हँस रहे थे। गंभीर बने हुए वातावरण में इनके हास्यने एक नई ही छाप पाड़ी। पर ये तो ऐसे बाहर खड़े थे—मानो कुछ हुआ ही नहीं। सबके साथ मिलते थे। ये एक-एक दो-दो शब्दों में वहाँ खड़े स्नेही-स्वजनों को आश्वासन के साथ-ही-साथ उत्साहित भी कर रहे थे।

महाराजजी सुनाते हैं:—"जब मैं इनसे मिला तो मेरा प्रयत्न हँसते रहने का था। पर मेरी आँखों में आंसू टपक पड़े। इन्होंने मेरे कंधे को थप-थपाकर मुझसे कहा, "तूने उन डाकुओं को मिलाने के लिए कहा था; यह तो अब रह गया। अच्छा, अब तू यदि इस जाति की सेवा करेगा तो मुझे बहुत रुचेगा।" इनके इतने शब्द मेरे लिए बस (पर्याप्त) थे। इनके इन शब्दों के मूल में जो प्रेम था, उसे देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मेरे सिर पर राजमुकुट रख दिया गया।

इसके बदले में मैं जो कुछ करूँ; वह थोड़ा ही है। इनके साथ पंडित मालवीयजी भी थे। इन्होंने भी हमें आश्वासन दिया कि—" चिंता न करना, महात्माजी छह वर्ष तक कारागार में नहीं रहेंगे "। श्री शंकरलाल बैंकर को भी एक वर्ष का दंड दिया गया। थोड़ी देर में ही सरकारी अधिकारी हमारे बीचमें से इन दोनों को छीनकर ले गये।

गांधीजी के " अब तू इस जाति की सेवा करना; यह मुझे बहुत रुचेगा " वचनने महाराज के कार्य में एक नया ही वेग डाल दिया। इनके मनमें अब कुछ-न-कुछ कर डालने की उमंग थी। पर यह किस प्रकार हो सके; इसकी कुछ सूझ नहीं पड़ती थी।

महेमदावाद में आकर इन्होंने देखा कि सरकारी विद्यालयों के बहिष्कार के बाद गाँव में उत्साहपूर्वक स्थापित राष्ट्रीय शालाएँ पैसे के अभाव से बंद होने की दिशा में हैं। महाराज को यह असह्य हो उठा। इन्होंने सोचा कि यदि शाला चलानेवाला कोई न मिलेगा तो मुझे ही इन्हें चलाना चाहिए, पर राष्ट्रीय शालाओं को बंद नहीं होने देना चाहिए। वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। वहाँ की शाला के संचालन का काम महाराज के हाथ में ही आया। इसका वर्णन करते हुए महाराजजी सुनाते हैं कि " भाई माणिकलाल मोदी और गोपालदास मेरी सहायता के लिए आये। मैंने शाला अपने हाथ में ली। गाँव की धर्मशाला में मैंने रहने का प्रबंध किया। वहाँ के बावाजी का आटा पीसूँ और धर्मशाला का चौगान बुहारूँ। तब कहीं

जाकर बाबाजी मुझे आधसेर खिचड़ी दें। यह थी मेरे पोषण की व्यवस्था। दिन में मैं शाला चलाता और रात को बातें सुनाता। मेरा 'सुणाव' का शालीय अनुभव यहाँ उपयोग में आया। शाला में अंग्रेजी की चौथी श्रेणी तक शिक्षण दिया जाता था। मैं इतिहास, भूगोल और सुलेख लेता था। इस समय मुझे सिखाने की स्वयं सूझ फुर आई। एक दिन एक अध्यापकने किसी विद्यार्थी को पीटा और उस विद्यार्थी की मां गालियाँ निकालती हुई शाला में आई। मैंने उसे समझाया। जिससे वह लज्जित होकर चली गई। इन दिनों हम विद्यार्थियों से काम भी लिया करते थे। एक विद्यार्थी का बाप इसका विरोध करने आया। मैंने उसे समझाया और वह खुश होकर वापस चला गया। इस प्रकार हमारी शाला चल रही थी। शाला में सात शिक्षक थे। इनके खाने के लिए अन्न गाँव के लोग ही दे जाते थे। एक दिन ऐसा भी आया कि इन्हें रांधने के लिए अन्न ही नहीं मिला। "किसी के पास माँगने नहीं जाना" यह हमारा संकल्प था।

पर उसी दिन दुपहरे से पहले एक भाईने आकर पूछा कि 'आपके खाने की क्या व्यवस्था है?'। मैंने कहा—गाँव के लोग सीधा दे जाते है। इस भाईने बीस दिन का सीधा भेज दिया। बाद में श्री प्रभुदास ठक्कर नियमित रूप से अन्न भेजा करते थे। पर ऐसी दशामें शिक्षकों का उत्साह घटता जाता था; यह मैं समझ गया था। इतने में मुझे नागपुर सत्याग्रह में जाना पड़ा। इसलिए शाला चलाने का काम अधिक कठिन बन गया।"

६. नागपुरमें झंडा–सत्याग्रह

चौरीचौरा गाँव के वनावके कारण सरकार के साथ लड़ने के लिए छटपटाते हुए कार्यकर्ताओं की उमंग मन-ही-मन रह गई थी। गांधीजीके आदेशानुसार रचनात्मक कार्यों में रस लेनेवाले अलग-अलग पड़ाव डालकर बैठ गये थे। श्री नरहरि भाई, श्री जुगत-राम भाई और श्री छगनलाल जोशी 'सरभौण' में डेरा डालकर सूरत जिले में काम करने लगे। वे महाराज को सूरत में बुला रहे थे। पर मेहमदावाद की शाला इनके विना चल नहीं सकती थी। 'तू अव इस जाति की सेवा करना' यह विचार भी मनमें सुलग रहा था। इतने में अतर्कित नागपुर का सत्याग्रह आया। नड़ियाद से समाचार आया कि सरदार साहव (वल्लभभाई) बुलाते हैं। इसलिए महाराज चल पड़े। इन्हें खवर तो मिल ही गई थी कि नागपुर में सत्याग्रह होनेवाला है। वहाँ पहुँचते ही स्वयं ही प्रश्न किया "मुझे नागपुर जाना होगा या नहीं?" सरदार साहवने पूछा कि "तुम्हारी क्या इच्छा है?" महाराज बोले कि "मेरी इच्छा तो है ही।" सरदारने कहा–"तो तुम्हें कौन रोकनेवाला है?" महाराज तो तैयार ही थे।

सन् १९२२ की वात है। नागपुर-सिविल-लाइन्स के पाससे एक सार्वजनिक रास्ता जाता था। वहाँ से होकर तिरंगी झंड़ा लेकर एक जनयात्रा (जलूस) निकली थी। वहाँ के गोरे अधिकारी की आँखमें यह ख़टका। उसने दंडाधिकारी (मजिस्ट्रैट) के पाससे यह आज्ञा निकलवाई कि "तिरंगे झंडे के साथ सिविल-लाइन्स में से जलूस निकलने से वहां के गोरे निवासियों को विक्षेप पहुँचता है। इसलिए तिरंगा झंडा लेकर कोई वहाँ से न निकले"। ऐसी आज्ञा कोई भी स्वाभिमानी प्रजा कैसे सह सकती है?

श्री जमनालाल बजाज वहाँ के प्रमुख नागरिक थे। इन्होंने इस अन्यायी आज्ञा के विरोधमें सत्याग्रह आरंभ किया। सत्याग्रह करनेवालों के लिए एक शिविर (छावनी) खोली गई थी। उस पर सरकारने छापा मारा। जमनालालजी, विनोबाजी तथा दूसरे जो साथ में थे-सब पकड़ लिये गये। इस बनावसे नागपुर-झंडा-सत्याग्रहने अखिल भारतीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। महासभा की कार्यकारिणी समितिने सरदार वल्लभभाई को यह सत्याग्रह चलाने का काम सौंपा और १८ जुलाई को देशभरमें राष्ट्रध्वज-दिन मनाने का आदेश निकाला। सरदारने देशभर में से, विशेषतः गुजरातमें से सत्याग्रह के लिए टुकड़ियां बुलाईं। कार्यकर्ता इस प्रकार अतर्कित होने पर भी मनमानी लड़ाई आने से उत्साह में आ गये। श्री विठ्ठल-भाई पटेल भी लड़ाई में सहायता देने के लिए बंबई से नागपुर आ पहुँचे। लड़ाई का विषय बहुत ही साधारण था। सरकार कहती थी कि सिविल-लाइन्स में से झंडा लेकर जानेकी आज्ञा पहले से लेनी चाहिए और कांग्रेस का कहना था कि सार्वजनिक रास्ते पर किसी

की भी आज्ञा लिये विना झंडा लेकर जाना जनता का प्राथमिक अधिकार है।

नड़ियाद से श्री गोकलदास बापू के नेतृत्व में सत्याग्रह करने के लिए खेड़े जिले की पहली टुकड़ी विशेष (स्पेशल) गाड़ी में निकली। इसमें महाराज भी थे। लोगोंने इस टुकड़ीको निरतिशय मान दिया। महाराज सुनाते हैं कि "स्टेशन स्टेशन पर लोग हमारी टुकड़ी के लिए दूध, पूरियां, फल आदि ले लेकर आते थे और मालाएँ पहना-पहना कर अपना भाव प्रदर्शित करते थे। नंदुरबार स्टेशन पर सारी टुकड़ी को जिमानेकी व्यवस्था की गई थी। भूसावल में सार्वजनिक सभा आयोजित की गई थी। इस समय हममें से कितनोंने राष्ट्रभाषा हिन्दी में झंडेके विषयमें व्याख्यान दिये थे। 'ना' पाड़ने पर भी हमारे पास इतना कलेवा इकट्ठा हो गया था कि जलगाम स्टेशन पर तीस टोकरियाँ तो हमने गरीबों को बाँट दीं। जब हमारी गाड़ी नागपुरके स्टेशन पर पहुँची तो हमारा स्वागत करने के लिए हजारों की संख्यामें जनता उलट पड़ी।

दूसरे ही दिन सत्याग्रह आरंभ होना था। ऐसा निश्चित किया गया कि प्रतिदिन तीन-तीन की पांच टुकड़ियां एकके-बाद-एक तिरंगा झंडा लेकर सिविल-लाइन्सवाले मार्ग पर जायँ और सरकारी आज्ञा का भंग करें। महाराज सुनाते हैं कि "हमारी टुकड़ी में पालजवाला धर्मदास, प्रभुदास ठक्कर और मैं—ये तीन थे। हमारी टुकड़ी के सत्याग्रह के लिए चलने से पहले भक्तिबाने हमारे मस्तकों पर केशर से तिलक किया। इस विधि से मुझमें एक चमत्कारिक शक्ति आ गई—ऐसा प्रतीत हुआ। नागरिक लोग भी इस टुकड़ीको विदाई देनेके लिए

हजारों की संख्यामें उस मार्गपर एकत्रित हुए थे जो सिविल-लाइन्सके पास नागपुर के पश्चिम में पड़ता है। पुलिस तथा दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) पहलेसे ही वहां सुसज्जित थे। उन्होंने टुकड़ी के नायक को इस मार्गसे न जानेकी लिखित सूचना दी। पर सत्याग्रह करने के लिए आई हुई टुकड़ी के मनमें इस सूचना का क्या मूल्य था? यह तो आगे ही बढ़ती चली। पुलिसने इस टुकड़ी को अटक में ले लिया। इसके साथ ही 'वंदे मातरम्' 'महात्मा गांधी की जय' के निनाद से सारा वातावरण गूंज उठा। इसी प्रकार उस दिन की पाँचों टुकड़ियों को बंदी किया गया। दूसरे दिन वहीं अभियोग चलाया गया। सात-सात मास का कारावास हुआ। वहांसे दंडित बंदियों को नागपुर की बड़े जेलमें भेज दिया गया।"

महाराज सुनाते हैं कि "पूज्य गांधीजी जेलमें थे। इस समय हम भी सत्याग्रह करके जेलमें आये हैं—इससे मेरे उत्साह का पार नहीं रहा। मेरे जीवन में कारावास का यह पहला अनुभव था। अब हम पर क्या क्या बीतेगी, इस के लिए मैं मनसे तैयार था।

"हम जेल के दरवाजे में प्रविष्ट हुए कि तुरत हमारा सब सामान—पहनने के कपड़ों तक—जेल के अधिकारियोंने ले लिया। उनकी ओरसे हमें बिना नाले का एक-एक जांघिया, एक-एक चोगा, एक-एक अँगोछा और एक-एक टोपी मिली। हम सब के कपड़े एक ही माप के और एक ही प्रकार के थे। शरीर पतला हो या मोटा; प्रत्येक शरीर पर यह चोगा विशेष शोभा देता

था। यहां के पहरावे की बाहें भी विचित्र, न पूरी और न आधी। इन दोनों के बीच का पौना माप सरकारने पसंद किया था। अँगोछा भी छोटा था; कमर पर पूरा नहीं आता था। हमें लँगोटी तक नहीं दी गई। नहाने-धोने की या कपड़े बदलने की हम क्या व्यवस्था करते होंगे; इसकी तो कल्पना ही कर लेनी चाहिए।

एक हाथसे बिना नालेका जांघिया पकड़ कर और दूसरे हाथ में सोने के लिए बिछौना एवं कुल्हड़ लेकर जब हम इस नये वेश में आगे बढ़े तो मेरे मन की स्थिति और ही थी। न था उसमें किंचिद्मात्र दुःख और न था अणुमात्र शोक। मैं एक नई दुनियामें विचर रहा था। मेरे सामने ईश्वर के न्यायालयका चित्र खड़ा हो गया था। पृथ्वी पर मनुष्य चाहे कितना भी संपन्न हो, कितना भी विद्वान् हो और कितना भी बलवान् हो; पर ईश्वरकी न्याय-सभामें जब पाप-पुण्य का लेखा देना पड़ता होगा उस समय कुछ ऐसा ही होता होगा न? वहाँ न काम आवे जान-पहचान, न सहायता करे भेदभाव और न दिखाई दे ऊँच-नीचपन, सभी समान। इसी प्रकार हम सबको भी यहां एक ही उस्तरे से मूंडा गया। हम में बी० ए० थे, निरक्षर भट्टाचार्य थे, सम्पन्न व्यापारी थे, गरीब किसान थे, क्षत्रिय थे, ब्राह्मण थे; पर बाहर के सभी भेदभाव यहाँ मिटा दिये गये। यहाँ तो हम सबको भटकते निठल्ले समझकर लाया गया था। हम सब सरकार के अपराधी थे। जेल के कैदी थे। मैं ज्यों-ज्यों अधिक विचार करता जाता था त्यों-त्यों मुझे अधिकाधिक आनन्द आता जाता था।

साँझ पड़ गई। पर हमारे लिए खाने को कुछ नहीं आया। हमें जहां रखा गया था; वहां किसी कैदीने अपनी सवेरे की दाल ढँक रखी थी। उसकी सुगंधसे मेरी भूख भड़क उठी। पर हमारे लिए उस दिन भोजन आना ही नहीं था। बिछौने में हमें बकरी की ऊनका एक कंबल और नारियल की चटाई दी गई। इसी नये बिछौने पर हमने रात निकाली। दूसरे दिन सवेरे हमें राब मिलनी चाहिए थी। पर वह भी न आई। दुपहरे प्याजका साग और ज्वारके टिक्कड़ आये। भूख तो कड़ककर लगी थी। पर प्याज का साग पहले कभी नहीं खाया था और इसके प्रति एक प्रकारकी घृणाके भाव जमे हुए थे। इस लिए खानेके समय कंपकपी आ गई। परन्तु मैंने आया हुआ भोजन मनको दृढ करके आरोग लिया। इस समय मेरे सामने कुमार सिद्धार्थक का चित्र खिंचा। सारा जीवन सुख-आनन्द और प्रभुता में बिताने के बाद भिक्षान्न खाते समय इनके मनकी स्थिति कैसी हुई होगी?"।

नागपुर जेल में पूरे स्थिर होनेसे पहले ही महाराज और इनके साथियों को यहां से उठाकर अकोला जेलमें दे मारा।

नई जेलमें बदली करने मूलमें सरकारका यही उद्देश्य होगा कि नागपुर की जेल भरने न पावे। दूसरा यह कि सत्याग्रहियों को त्रास दे-देकर सत्याग्रह भुला देना भी होगा। इसलिए नई जेलमें खूब प्रबन्ध और कठोरता बरती गई। जब कैदी लंबी बैरक में सो रहे हों तो भी (बैरक के अंदर भी) उन पर पीली पगड़ीवाले जमादार का पहरा लगाया गया था। शौच जाने से लेकर पानी पीने तक की छोटी-छोटी बातों में भी वहां अपमानजनक अंकुश थे।

महाराज सुनाते हैं कि "इस जेल की पद्धति ही ऐसी थी जिससे छोटी-छोटी बात भी मनुष्य को अखरे। जिन्होंने पहलेसे ही मानसिक तैयारी न की हो ऐसों को तो बहुत कठिनता लगे। हममें कई छोटे और कई निर्बल थे। वे इन सब बातों से व्याकुल हो उठते थे। आरम्भ में हमें दो दिन रस्सी बटने के लिए दी गई। फिर हम-में से दो को पसंद करके चक्की पीसने में ले जाया गया और बाकियों को पत्थर तोड़ने के लिए ले जाने लगे। सौभाग्यसे मुझे भी चक्की पीसने के लिए पसंद किया गया। हमें (प्रत्येक को) अलग अलग एक-एक कोठड़ी में ले गये। वहां चक्की मेरी बाट देखती हुई बैठी थी। जमा-दारने मेरे कपड़े उतरवाये, कमर पर अंगोछा बंधवाया और २५ सेर ज्वार मुझे पीसने के लिए देकर कोठड़ी को बाहरसे ताला मार दिया। इस प्रकार मेरा पीसने का काम चालू हुआ। पहले दिन मैंने साढ़े बारह सेर पीसा। दुपहरे खाने के लिए मुझे बाहर निकाला गया। थकावट खूब लगी। सायंकाल मैंने काम नहीं किया। पर पहला दिन होने के कारण कोई कुछ बोला नहीं। रात में सोने से पहले मेरा जीव जलने लगा कि गांधीजीने तो जरा भी जी चुराये बिना जेल में काम करने को कहा है। पर मैंने १२॥ साढ़े बारह सेर ही पीसा है। इसी समय मन में निश्चय किया कि कल से ऐसी भूल नहीं करूँगा। दूसरे दिन नहाकर संध्या की [पीसने के लिए जाने-वाले को सवेरे कलेवे में एक टिक्कड़ मिलता था] मैं टिक्कड़ ले आया। वह खाकर मैं काम पर बैठा। पीसने की कोठड़ी में जाकर मैंने सच्चे हृदयसे प्रार्थना की। "बाह्वोर्मे बलमस्तु" आदि वेदमंत्र

बोले। प्रभु से याचना की कि यह पीसना पीसा जाय इतना मुझे बल दीजिए। १५ मिनिट की प्रार्थना के बाद मैंने चक्की का हत्था पकड़ा। मन के साथ निश्चय हो चुका था कि सारा काम पूरा किये विना उठना नहीं। हाथ थके या टूटे; पर काम बंद नहीं करना। जमीन पर पैर जमाकर मैंने पीसना चालू किया। इस समय न जाने मुझ में यह नया बल कहाँसे आया। इसकी समझ तो मुझे आज भी नहीं पड़ती। सवेरे छह बजे से मैंने काम आरंभ किया और नौसे पहले २५ सेर पीस डाला। पसीना तो शरीरमें से इतना निकला कि इसकी धार कोठड़ी की देहली तक पहुँच गई। आटा उड़ने से शरीर अवधूतका-सा हो गया। जब काम पूरा हो गया तो मैं अपने शरीर की ओर देखकर खिड़खिड़ा कर हँस पड़ा। थोड़ी देर बाद कोठड़ी के किवाड़ खुले। देखने के लिए आया जमादार तो अवाक् रह गया। जिस-जिसने सुना वह अचरज में डूब गया।

दूसरे दिन भी इसी प्रकार मेरा काम पूरा हो गया। नियम पूरा हो जाने के बाद कोई मेरा नाम भी नहीं लेता था। हाथ तो पके जैसे बन गये थे। मेरे हाथ दबाये जाँय तो थकावट उतर जाय—इसीलिए मैं हाथ दबाकर पत्थर पर औंधा लेट जाता था, जिससे मुझे ठीक आराम मिलता था।"

महाराज स्वयं इतने कठिन काम करते थे। पर साथ आये हुए छोटे—छोटे नव-युवकों की इन्हें अत्यन्त चिंता होती थी। चार तो इनके साथ सरसवणीसे ही आये हुए थे।

७. जेलमें झगड़ा और उसका समाधान

गुजरात की टुकड़ी के नेता श्री गोकलदास बापू थे। ये जाति से बनिये और धंधे से वकील होने पर भी वीर लड़ाकू थे। इन्हें पत्थर तोड़ने का काम सौंपा गया। जेल के छोटे-मोटे अपमानोंसे ये अकुला जाते थे। इन्हें यह काम भी भारी लगा। अतः इन्होंने पत्थर तोड़ने की 'नहीं' कर दी। जिससे इन्हें अँधेर-कोठड़ी में ले जाया गया।

बात ऐसे बनी कि काम पर के जमादारने इनसे कहा--"आपको काम न करना हो तो न करें। पर साहब के आने पर हथौड़ी चलाते रहा करें। जिससे वे जान जायँ कि कैदी काम कर रहे हैं"। परन्तु बापूने इसका कहना नहीं माना। जब काम पर जायँ तो वहाँ भी पुस्तक बाँचते रहा करें। एक दिन मुख्य निरीक्षक (सुपरिनटेंडेन्ट) मिस्टर फाउलर चौकी पर आये। बापू बैठे-बैठे पुस्तक पढ़ रहे थे। साहब के समीप में आ जाने पर भी पुस्तक नहीं छोड़ी। साहबने पूछा--पत्थर क्यों नहीं तोड़ते? उत्तर मिला--पत्थर हैं कहाँ जो तोड़ूँ। साहबने कहा--सामने के ढेरमें से ले आओ। बापूने वकीली भाषा में कहा कि मेरे नाम पत्थर तोड़ने का काम लिखा है; पत्थर

लाने का नहीं। साहबने तुरंत इन्हें अँधेर-कोठरी में ले जाने की और इनसे वीस सेर पिसाने की आज्ञा दे दी। बापूने यह काम भी करनेसे 'नकार' कर दिया और साथमें खाना भी छोड़ दिया।

जब यह समाचार दूसरे साथियों को मिला तो वे विचारमें पड़ गये कि अब हमें इस विषय में क्या करना चाहिए। जिस बात पर यह झगड़ा उठाया गया था; इसमें महाराज सम्मत नहीं थे। परन्तु नायक उपवास करे और साथी बैठे रहें — यह भी इन्हें ठीक नहीं जँचा। अंत में महराजने तथा इनके चौदह साथियोंने खाना छोड़ने का निर्णय किया। जेलर मिस्टर मराठे को यह समाचार मिला। वह इन्हें समझाने को गया कि 'तुम क्यों नहीं खाते?' महाराजने जवाब दिया—"जबतक हमारे बापू नहीं खाते तबतक हम भी नहीं खा सकते।' जेलरने कहा कि 'इन्होंने तो अपराध किया है, उसका इन्हें दण्ड मिला है।' पर इनमें से कोई एक का दो नहीं हुआ। इस लिए जेलर इन सबको बंद कर देने का आदेश देकर चला गया। सबके सब भूखे-पेट बैरक में सोये रहे। जेलरने रात को आकर फिर सब को समझाने का प्रयत्न किया। पर उसे एक ही उत्तर मिला 'जब तक हमारे बापू नहीं खाते तबतक हमसे नहीं खाया जायगा'।

दूसरे दिन सवेरे कड़कता हुआ जेलर फिर आया और आदेश दे गया कि निकालो इन सबको बाहर। महाराजने साथियों को सूचना दी कि 'डरना नहीं, पक्के रहना।' सब पक्के ही थे। जेलरने गोल-घर के पास ले जाकर मार डालनेकी धमकी दी। महाराजने सब को सावधान किया कि "पीछे फिरना हो तो अभी समय है।

पहले से बता देना, मैं तो गला कटाऊंगा ही।" सब मार डालने की धमकी मिलने पर भी पक्के रहे।

थोड़ी देरके बाद एक ऊँचा, काला और डरावने मुँहवाला किस्तीखान नामक जमादार हमारे पास आकर समझाने लगा कि "तुम लड़ोगे तो कुछ हाथ नहीं आवेगा। इससे तो अच्छा है कि तुम नियमपूर्वक जेल के दिन निकाल डालो।" महाराजने उसे जवाब दिया, "हमें तुम्हारे उपदेश की आवश्यकता नहीं।" वह अधिक कुछ नहीं बोला। पर जेलर (जेल का व्यवस्थापक) ने आदेश दिया "इन सब को पत्थर तोड़ने के लिए ले जाओ।" महाराजने साथियों को समझाया कि "अपनी लड़त ही पत्थरों के विषय में है। यदि हम पत्थर तोड़ने के लिए चले जायँ तो खा ही क्यों न लें"। इस बात में भी सब पक्के हो गये। इससे इन सब को उपद्रवी घोषित किया गया। सब पर अभियोग चलेगा और अधिक दण्ड होगा—ऐसा सब मानने लगे।

थोड़ी देर बाद फिर जेलर (जेल-व्यवस्थापक) आकर समझाने लगा कि "क्यों तुम व्यर्थ भूखे मर रहे हो, गोकलदासने तो खा लिया।" महाराज बोले "आपके कहनेसे क्या? हमारी इनके साथ बात करा दीजिए तभी हमें विश्वास होगा।" जेलर सम्मत हो गया और महाराज को बापू पास ले गया। महाराजने (जेलर को थोड़ी दूर भेज कर के) बापूसे कई बातें कीं। इसलिए बापू खाने को तैयार हो गये। बादमें महाराजने जेलर को पास बुलाकर कहा कि "देखिए आपको व्यव-

स्थापक मानकर नहीं, भाई मानकर कहता हूँ। हम समाधान करने को तैयार हैं। पर आप मुझे छोड़कर हम में से किसी दूसरे को कठिन काम न देनेका वचन दें। हमारे बापू को आप नियमानुसार चौदह दिन अँधेर-कोठड़ीमें भले रखिये। पर इन्हें पीसने के लिए न दीजिएगा। जेलरने कहा कि 'मैं तो कठिन काम किसी को भी देना नहीं चाहता'। इस प्रकार महाराजने समाधान किया और सबने खाया।

९. कठपुतली की भाँति

महाराज का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि इनके प्रेम और वर्तावसे अच्छे-अच्छे इनके वशवर्ती हो जाते हैं। इस जेल का अधिकारी भी इन पर प्रसन्न हो गया।

एक दिन महाराज चक्की पीस रहे थे। इतने में जेलका व्यवस्थापक निरीक्षण के लिए आया। महाराज को पसीने से लथपथ देखकर बोला कि "कुछ कहना है?" महाराजने कहा—'दुपहरे मैं खाली रहता हूँ। इस समय मुझे चटाई बनाने का अतिरिक्त काम दिया जाय तो मैं खुशीसे करूँगा।" पर इस समय महाराज को अतिरिक्त काम के लिए 'न'कार करके वह आगे बढ़ गया। पर दूसरे दिनसे इनके हाथ में से चक्की खोस ली गई और इन्हें सब के साथ पत्थर तोड़ने के लिए भेज दिया गया। पत्थर तोड़ने का ऐसा विधि-विधान था कि प्रत्येक कैदी को प्रतिदिन आठ घनफुट पत्थर तोड़कर दो फर्लांग (४४० गज) पर ढेरी कर आने चाहिए। पत्थर तोड़ते समय पत्थर की किरचें ऐसी उछलती थीं कि इनसे प्रतिदिन दो-चार घायल हो ही जाते थे। आँख फूट न जाय, इस लिए प्रत्येक कैदी को आँखों पर चढ़ाने के लिए पतरे की एक-एक डिबिया दी जाती थी।

इस टुकड़ी के जमादारके रूपमें उसी किस्तीखान को ही भेजा गया था। वह सारी जेल में उग्र गिना जाता था। पहले ही दिन महाराजने सात घनफुट पत्थर तोड़े। जमादारने कहा कि 'नियमानुसार आठ घनफुट पत्थर तोड़ने चाहिए। पर आप का एक घनफुट कम है'। महाराजने कहा—'सात क्यों छह ही लिख न !'। नियम ऐसा था कि नये आनेवाले को तीन दिन तक में पूरे काम तक पहुँच जाना चाहिए। महाराजने तो दूसरे ही दिन आठ घनफुट का ढेर कर मारा। वहाँ तेल पेरने का काम भी कैदियोंसे ही कराया जाता था। एक-आध महीने के वाद महाराजने जेल-व्यवस्थापक से तेल पेरने की माँग की। पर व्यवस्थापकने ऐसा कठिन काम देने की 'नहीं' कर दी। कुछ समय के वाद इन्हें बुनाई के काम पर भेज दिया गया। वापूको दर्जी के काम पर भेजा गया। उन्हें यह काम पसंद था।

महाराज बुनाई का १३ गज का नियम प्रतिदिन पूरा कर देते थे। एक दिन हवा के कारण कपड़ा कुछ घट गया। काम लिखनेवालेने पूछा, 'क्यों कुछ ढीले तो नहीं? महाराजने कहा, 'नहीं'। नोट करनेवालेने दुखी मनसे अधूरा काम नोट किया। क्योंकि जिसका अधूरा काम रहता है; उसे उत्तर देने के लिए व्यवस्थापक के पास उपस्थित होना पड़ता है। उसी दिन सायंको, महाराज को जिस वैरकमें वन्द किया गया था वहीं निरीक्षण करता-करता व्यवस्थापक आ निकला। उसने पूछा, 'क्या हाल हैं ?। महाराजने कहा—'वहुत अच्छा।' पर कल तो मुझे आपके सामने अपराधी के रूपमें उपस्थित होना होगा न? उसने कहा—'क्यों?'

महाराज बोले कि आज हवा के कारण बुनाई का मेरा काम पूरा नहीं हो पाया। व्यवस्थापकने हँसते-हँसते कहा कि 'इस जेल में तो अब आपके लिए कोई पेशी-वेशी नहीं रही।'

महाराज सुनाते हैं—'जेल में मैं खूब काम करता था। भूख भी उतने ही जोरसे लगती थी। सारे दिन में मैं १३ तेरह टिक्कड़ खा जाता था। यदि उन १३ टिक्कड़ोंके आटेका तौल किया जाय तो गुजराती सवासेर से अधिक न होगा (बंगाली १० छटांक)। जब मैं चक्की पीसने जाता तो उससे पहले एक टिक्कड़ कलेवे के लिए मिलता था। रसोई बाँटनेवाले जमादार का मेरे प्रति ऐसा भाव हो गया था कि वह प्रतिदिन दो टिक्कड़ फेंक जाता था। मेरा खाया हुआ कब पच जाता उसकी तो मुझे खबर ही नहीं पड़ती थी।"

जेलमें ऐसा नियम होता है कि सौंपी हुई कोई भी वस्तु खो जाय तो उस के लिए दंड भोगना पड़ता है। महाराज को सौंपी हुई थाली एक समय गुम हो गई। अब क्या किया जाय? ये जिस खड्डी (करघा) पर काम करते थे; उसके नीचे पुरानी काट की खाई (जंगचढ़ी) एक थाली पड़ी रहती थी। यह किसकी है उसका पता महाराज को नहीं था। महाराजने साग ले आने के लिए उसे माँज-मूँज कर साफ़ कर लिया। इतनेमें वही किस्तीखान आया और लगा हल्ला मचाने। 'उस करघे के नीचे से मेरी थाली किसने उठाई है? यदि कोई हाथ

में आ गया तो मार डालूंगा।' महाराजने कहा—'यह तो मैंने ली है।' उसने कहा—'आपने ली है तो कोई बात नहीं। यदि किसी दूसरेने ली होती तो पसली तोड़ देता।' महाराजने उस की थाली वापस कर दी। दूसरे दिन महाराज का कुल्हड़ भी गुम हो गया इन्होंने थाली और कुल्हड़के बिना ही काम चलाना आरंभ किया। इसका वर्णन करते हुए महाराज सुनाते हैं :—"मैं रोटी हाथ पर रखकर ही खा लेता था और पानी नल पर जाकर पी लेता था। साग तो मैंने खाना ही बंद कर दिया था। क्यों कि 'सागमें कीड़े आते हैं' ऐसा दोषावेदन (परीवाद—शिकायत) सुन—सुन कर मुझे इससे घृणा हो गई थी।" इस प्रकार तीन—महीने तक महाराज टिक्कड़ों पर ही रहे।

महाराज सुनाते हैं :—"अकोला जेलमें जब मैं खाली होता तब तिलकका 'गीता—रहस्य' और सातवलेकर का 'शतपथ' बाँचता। वहाँ मैंने दूसरे ब्राह्मणग्रंथ भी बाँचे। इस समय मेरे मनमें एक ऐसी इच्छा थी कि यदि स्टेशनों पर लिखे नाम बाँचने योग्य अंग्रेजी सीख ली जाय तो अच्छा रहे। श्री गोकल-दास बापूके पाससे अंग्रेजीके चार अक्षर सीखे भी। पर इनके रटनेसे मेरे गीतास्वाध्याय में विक्षेप पड़ने लगा। सारी रात वे अक्षर मेरी आँखोंके सामने आ—आकर नाचते रहते। दूसरे दिन मैंने निश्चय किया कि अंग्रेजी नहीं सीखनी।"

एक दिन सवेरे व्यवस्थापकने वार्डमें जाकर समाचार दिया कि "कल सरकार सभी राजकीय कैदियोंको छोड़ देगी।" यह समाचार सुनते ही कितने—एक हर्षमें आ गये। सरकारके साथ

समाधान हो गया और तिरंगे झंडेकी विजय हो गई। यह सुनकर महाराज आनंदित हुए। इसके पहले एक बनाव बना; उसका वर्णन महाराजजीकी भाषामें ही सुनिए :—

"हममेंसे एक भाई छूटनेसे कुछ दिन पहले मनसे बहुत निर्वल हो गया था। इसके पाँव पर फोड़ा हो गया था। उसकी चीर-फाड़ की गई। इस भाईके मनमें कुछ ऐसी भीति घुस गई कि 'अब मैं घरवालोंका मुँह नहीं देख सकूँगा'। इसके मनकी यह निर्वलता क्षमा माँग कर छूटनेकी सीमा तक पहुँच चुकी थी। मुझे जब इस बातकी खबर पड़ी तो मैं इससे मिला और मैंने समझाया कि तूने जेलके इतने महीने तो काट दिये। यदि मरना ही लिखा है तो चाहे कहीं भी जायँ वहीं मर जायँगे। मारना और जिलाना यह एक ईश्वर के ही हाथ में है। तू सब चिंता छोड़। यदि क्षमा माँगेगा तो तेरा सारा शरीर तो बाहर चला जायगा। पर नाक और कान इस काउलर साहबकी डिबियामें रह जायँगे। खबर है न! जीवनभर नीची आँख रहना पड़ेगा और तेरे बच्चे भी तेरी याद आते ही लज्जामें गड़ जायँगे। मेरी बात इसके गले उतरी। इसने माफी माँगनेका विचार बदल डाला। हुआ भी ऐसा ही कि इसके इस निर्णय के दो-तीन दिन बाद ही हम सबका छुटकारा होगया। इस भाईके आनंदका पार न रहा। यह आनंदमें आकर कहने लगा "आपने ही बचा लिया, नहीं तो न जाने मेरा क्या होता?"

महाराज सुनाते हैं :—"जेलमेंसे छूटते समय फिर मेरे मगजमें विचार आने लगे कि भगवान् श्रीकृष्णने सुदामा को

तालावमें की एक ही डुबकी में अगम लीला दीखा दी थी। उस और इस जेलमें क्या अन्तर है? कल सवेरे ही तो हम जेलमें आये हैं। जेलकी दुनियासे अनेक पाठ सीखे हैं। आज फिर अपनी उसी पुरानी दुनियांमें लौट रहे हैं। कारावासका समय कब और कहाँ चला गया; इसकी खबर ही न पड़ी। ज्यों ज्यों मैं विचार करता गया त्यों त्यों मेरे हृदयमें आनंदकी उमंगें उठने लगीं।"

"बार बार मेरी आँखोंके सामने विनोबाजी और उनके कुछ साथी आ रहे हैं। जेलमें ये सब बहुत काम करते थे। जब इन्हें मैं देखता था तो मेरे मनमें छिपी-छिपी आनंदकी भावनाएँ जागतीं। विनोबाजीका अगाध ज्ञान और छोटे-मोटे प्रत्येक प्रसंग पर सुयोग्य वर्तन देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि ये तो कठपुतलीकी भाँति अनासक्त जीवन जी रहे हैं। जब ये काम करते तो ऐसा लगता था कि ये हर्ष और शोकसे ऊँचे उठकर ही करते हैं।

छोटे-से-छोटे जमादार इन्हें खड़े रहने को कहें तो ये खड़े रहें और चलने को कहें तो चल पडें। इन्होंने मनके 'अहं' को बिलकुल गला डाला था। फिर भी आत्मचिंतन तो प्रतिक्षण चलता ही रहता था। मैंने विचारा कि इस मनुष्य को जेलभोगना भार नहीं लगा। मैं भी अनुभव करता था कि जहाँ दूसरे दुःखित होते थे, वहीं मैं आनंद मानता था। इस लिए सुख और दुःख मनुष्यकी अपनी खड़ी की गई कल्पनामें से पैदा होते हैं। विनोबाजीके जीवनमें से वहाँ मुझे बहुत-कुछ जाननेको मिला।"

जेलमें से आधा दंड भोगकर छूटे हुए इन १८०० भाइयोंको जिस मार्ग परसे झंडा लेकर चलनेके कारण बंदी किया गया था। उसी मार्ग पर झंडे के साथ एक विशाल जनयात्रा (जलूस) निकाली गई। नगर के लोगोंने भी इसमें बहुत उत्साह-पूर्ण भाग लिया। पर एक दूसरेने एक दूसरे का नाम नहीं लिया। नागपुरमें तिरंगे झंडे का जयजयकार हुआ।

९. चुनाव-कालिक उपरामता

जब महाराज नागपुरसे छूटकर आये तब देशका वातावरण बिलकुल परिवर्तित हो चुका था। जब गांधीजी पकड़े गये थे तब जनता में जो उत्साह था; वह ढीला पड़ गया था। स्वदेशी हलचल के कारण आरंभमें विदेशी कपड़े बेचना बिलकुल बंद हो गया था। आज उसका व्यापार धड़ल्लेसे चल रहा था। मानो देश में कुछ हुआ ही नहीं। इस प्रकार लोग दैनिक सामान्य जीवन जी रहे थे। रचनात्मक-कार्य की उमंग जो आरंभ में उठी थी, चर्खे और राष्ट्रीय शिक्षणमें लोगोंने जो उत्साह दिखाया था, वह अब मंद पड़ता जा रहा था। कई-एक श्रद्धालु कार्य-कर्ता ऐसे मंद वातावरण में भी अपनी श्रद्धा को दृढ़ रखकर स्वयं उठाये हुए रचनात्मक कार्य में जुट रहे थे।

महाराजने आते ही पहला काम महेमदाबाद की अनाथ बनी हुई राष्ट्रीय शाला को बंद करने का किया।

सन् १९२३ में कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। महाराज भी वहां गये थे। वहां का बदला हुआ रंग-ढंग देखकर इनका वहांसे भाग निकलने को मन किया। मौलानामहम्मद अली अभी जेलमें से छूटे थे। 'धारासभा में प्रवेश करना चाहिए, यह संदेश लेकर ये कांग्रेस में आये थे। जब से भारतीय राज्य-

तंत्र में गांधीजीने प्रवेश किया; तबसे धारासभा के कार्यक्रममें रस लेनेवाले भाई शांत बैठे थे। असहकार के प्रवाहने धारासभा का नाम भुला दिया था। पर मौलाना महम्मद अली के संदेशने धारासभा के मुखियों को फिर से आगे ला दिया। धारासभा में प्रवेश का प्रस्ताव पारित (पास) हो गया।, पर इस समय का वहां का वातावरण बहुत तुच्छ बन गया था। एक-दूसरे की निंदा, चुगली और विरोध का बोलबाला था, इसी महासभा में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी ऐसे दो भाग पड़ गये। धारासभा के प्रवेश को स्वीकारने वाले परिवर्तनवादी और धारासभा के प्रवेश का विरोध करनेवाले अपरिवर्तनवादी कहलाये। परिवर्तनवादी पक्षमें श्री मोतीलाल नेहरू, देशबंधुदास, मौलाना महम्मद अली आदि मुख्य थे। इन अपरिवर्तनवादियों में श्रीराजगोपालाचार्य, श्रीवल्लभभाई आदि अग्रगण्य थे।

दिल्ली महासभा के बाद चुनावों की चहल-पहल मची। गुजरात में भी परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दो पक्ष पड़े थे। इस समय के चुनावों में अंधाधुंध व्यय हो रहा था। एक-दूसरे पर कीचड़ उछाला जा रहा था; झूठ फैलाया जा रहा था। प्रजामानस रचनात्मक कार्योंमें से विमुख हो रहा था। इसलिए महाराज को इसमें बिलकुल रस नहीं पड़ा। इन्होंने चुनाव कार्यों में किसीकी भी सहायता करने की साफ-साफ 'ना' सुना दी। इनका किसी गाँव में शांतिपूर्वक बैठकर कोई-न-कोई रचनात्मक काम करने को मन चाहा।

महेमदाबाद प्रदेशके श्री प्रभुदास ठक्कर महाराज के साथ नागपुर-सत्याग्रह में तो थे ही। इनकी माताजी, बहन आदि सारा

कुटुंब धार्मिक भावनावाला और महात्माजी पर श्रद्धारखनेवाला था। इनके घरमें चर्खा चलता था और हरिजनों के प्रति समभाव रखा जाता था। प्रभुदास ठक्कर तो हरिजनोंको गाँव के कूए परसे पानी भर देते थे। इससे आकृष्ट होकर महाराजने इनके यहाँ 'छापरा' गाँवमें रहने का निश्चय किया। वहाँ ये समूह में गीता बाँचते, तुलसी-रामायण समझाते और चर्खा कातते।

इनकी रामायण सुनकर छापरा के एक बारैया जाति के नौजवान का मन पढ़ने को किया। महाराजने इसे पढ़ाना आरंभ किया। पर इनके पढ़ाने की पद्धति नई ही थी। लड़के के पास सलेट-बत्ती तो थी ही नहीं। महाराज इस प्रकार सिखाने लगे :—

महाराज—यदि तू मुझे फिर कभी मिले तो पछाने खरा?

लड़का—होवे (हाँजी)

महाराज—बहुत मनुष्य इकट्ठे हुए हों तो उसमें से भी पछान निकाले?

लड़का—हाँ।

महाराज—किस लिए?

लड़का—आपको देखा है इस लिए।

महाराज—तो जो तू देखता है; वह याद रखता है न? जो मैं बताऊँ याद रखेगा?

लड़का—हाँ।

यह कहकर महाराजने जमीनपर 'क' लिख दिया और कहा कि इसका नाम 'क' है। इस प्रकार महाराजने इसे पहली संथा दी। दूसरे दिन लड़केने जहाँ-तहाँ 'क' ही 'क' खींच डाला। अपने साथी दूसरे ५७ सत्तावन पालियों (चरवाहों) को भी इसने यह सिखा दिया।

दीवेसे दीवा जगता है। ऐसी यह प्रौढ-शिक्षगकी पद्धति थी। घर-घर सिखाने नहीं जाना पड़ता था। एक सीखा हुआ दूसरे अनेकोंको सिखाता जाय।

थोड़े दिनोंमें तो वह लड़का नाम बाँचने लगा और अंतमें रामायग भी पढ़ने लगा। इस लड़केका प्रभाव इसके छोटे भाई पर भी पड़ा इसकी रंगत सारे कुटुंबपर चढ़ी। समस्त परिवारने मांस खाना छोड़ दिया।

इस प्रकार महाराज छापर गाँवमें बैठे-बैठे कातते थे और बाँचते थे। पर इनके जीवनकी छाप तो आसपासवालों पर पड़ती ही रहती थी। ये अपने स्वभावानुसार खाली तो बैठ नहीं सकते थे। इसलिए छोटा-मोटा कोई-न-कोई स्थानिक काम भी करते ही रहते थे।

१० वालवोड़की भाटड़ी

एकबार महाराजका वालबोड़ जाना हुआ। वहाँके मुखी (नंबरदार) और दूसरे एक संमाननीय वृद्धके साथ रातको पड़े-पड़े बातें चल रही थीं। बात-बातमें उस वृद्धने कहा कि "हमारे यहाँ आवाड़माताकी रोक है। इसलिए पक्के मकान तो हमसे बनवाये ही नहीं जा सकते।" यह बात सुनकर महाराजको अचरज हुआ। साथ-साथ इस गाँवमें इतने समृद्ध लोग होने पर भी पक्के मकान क्यों नहीं बनवाते ?, इस प्रकारके इनके मानसिक प्रश्नका समाधान भी मिल गया। अब तो यहाँ ईंटोंके पक्के मकान बनने लग पड़े हैं। अभी भी दीवार परकी ऊपरी स्तर (तह) मिट्टीकी बनवानेकी प्रथा कुछ लोग पाल रहे हैं। उस वृद्धने यह भी कहा था कि हमारे यहाँ एक चारण-स्त्री (भाटड़ी) खेलती है। [खेलना=भूत-प्रेत आदिका आवेश होने पर सिर धुनना] इसमें माता आती है और एक वर्षमें एकबार छोटा भैंसा मारकर यह उसका सारा लहू पी जाती है।" महाराजने कहा—'ऐसा नहीं हो सकता,। वृद्ध बोला—'जब ऐसा होगा तो उस समय मैं आपको देखनेके लिए बुलाऊँगा,। महाराजको यह सुनकर अचंभा हुआ।

इस बातके दो-महीनोंके बाद वहाँके चौकीदारने अर। मुखीकी चिट्ठी महाराजको दी। इसमें लिखा था—'जहाँ बैठे हों;

वहाँसे सीधे उठकर आइए, । दूसरे दिन बोरसदमें काका कालेलकरजीकी अध्यक्षतामें 'गुजरात-राजकीय-परिषद' भरनेवाली थी। इसके साथ-साथ 'हरिजन-परिषद' और 'बारैया-परिषद' भी आयोजित की गई थी। हरिजन-परिषदके प्रमुखके रूपमें मामा साहेब फड़के जानेवाले थे और बारैया-परिषदके प्रमुखके रूपमें महाराजजी। पर चिट्ठी आई देखकर महाराजने वालवोड़ होते हुए 'बोरसद' जानेका निश्चय किया। वहाँ पहुँचने पर महाराजने जाना कि यहाँ तो बाधा उतरनेवाली है और भैंसेका वध होगा। वह भाटड़ी कितना लहू पी जाती है—यही दिखानेके लिए महाराजको बुलवाया था।

यह जानकर महाराज को दुःख हुआ। पर आना हो गया है तो इस भैंसेका वध रोकना चाहिए—ऐसा इन्होंने मनसे विचार किया। वहाँकी प्रथा ऐसी थी कि जब वह चारण-स्त्री (भाटड़ी) खेलने लगती तब भैंसेको सिंगार कर इसके सामने लाया जाता और कोई पाटणवाडिया तलवारसे भैंसेका सिर काट डालता। महाराज पाटणवाड़ियोंसे मिले और उन्हें समझाया कि माता कभी किसी निर्दोष प्राणीके प्राण लेकर प्रसन्न नहीं होती। ऐसे पापकर्ममें इसका साथ नहीं देना चाहिए। पाटणवाडिया जातिकी महाराज पर बहुत श्रद्धा है। इसलिए इसके पंचने तो प्रस्ताव पास कर दिया कि 'जो भैंसेका सिर काटेगा, उसे जातिसे बाहर निकाल दिया जायगा और ५०) पचास-रुपयेका दंड होगा।' एक ब्राह्मणको भी जो वहाँ पुरोहित के रूपमें काम करता था महाराजने समझाया। इसलिए उसने

भी इस काममें भाग न लेना स्वीकार लिया। महाराजके कहनेसे मुखीने ढोल बजानेवालेको आज्ञा नहीं भेजी।

समय हुआ। वह चारणी आई। वह पतली और गौर वर्णकी बूढ़ी होने पर भी तेजस्वी आंखोंवाली थी। उसने मुखी की ओर मुड़कर देखा और कहा—क्यों मुखी मेरे पास ढोल क्यों नहीं भेजा? ' मुखी बोला, ' माताजी अभी भेजता हूँ। महाराजने देखा कि मुखी डर गया है। इसलिए महाराज जैनियोंके मुख्य मुख्य व्यक्तियोंसे मिले। ये सब मिलकर 'यह भैंसे का वध किस प्रकार रोका जाय' इसीकी चर्चा कर रहे थे।

ये चर्चाएँ चल रही थीं कि इतनेमें तो इनके पास ढोल बजाता हुआ जलूस आया। इसमें किलकारियां मारते हुए लड़के, सिंगारा हुआ भैंसा, नंगी तलवारोंवाले ज़वान, नये पहरावेमें चारण और बिलकुल पीछे मधुर स्वरसे गीत गाती हुई चारण-स्त्रियां थीं। इस समयका रंग-ढंग और वातावरण ही ऐसा था जो किसीको भी उत्तेजित एवं भयभीत कर सके। थोड़ी देरमें तो यह बहुत ही समीप आ गया। वह पुरोहित ब्राह्मण भैंसेको देखकर अपना सिर पीटने लगा और अनेक प्रकारकी दुहाइयां देने लगा। पर टोला तो आगेही बढ़ता चला जा रहा था। बनिये घबरा उठे। वहाँसे भागकर चौतरे पर जा चढ़े। 'मैं तो यह सब देखकर किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। मेरे मनमें आशंका उठ रही थी कि ये सब मेरा कहना मान लेंगे? यह टोला मेरे पाससे होकर आगे बढ़ा। मैंने भी मनमें निर्णय कर लिया और मैं भी लंबे-लंबे डग भरता हुआ इस टोले के पीछे

पीछे चलने लगा।" कई-एक पाटणवाडियोंको लगा कि कुछ-न कुछ अवश्य होगा। ये महाराजके पीछे-पीछे चलने लगे।

गांवसे थोड़ी दूर नदीके किनारे माताका स्थानक था। वहां जाकर सारा टोला बिछी हुई दरियों पर बैठ गया। बहनों में से कई-एक खेलने लगीं, सिर धुनने लगीं। दूसरी गा रही थीं। भैंसेको सबके बीचमें खड़ा कर रखा था। महाराज एकाएक इन सबमेंसे रास्ता बनाकर भैंसे के पास पहुँच गये। कई-एक चारण महाराज को पहचानते थे। एकने इनका सत्कार किया। महाराज इससे ही कहने लगे-'इस निर्दोष भैंसे को न मारो तो? इसने कहा-यह बात हमारे बशकी नहीं। माता की इच्छा हो तो हम तो इसमें भी खुश हैं।

महाराज वहाँसे आगे बढ़कर उन धुनती हुई बहनोंके टोलेमें घुसे और उस अगुआ बूढ़ी माईके सामने जाकर कहने लगे:-

"माताजी! आप इस निर्दोष भैंसेको किस लिए मारती हैं?" उसने लाल आँखें फाड़कर महाराजकी ओर देखा और कहा तू क्यों यहाँ आया है? जा यहाँसे चला जा; नहीं तो फाड़ खावेंगी।' महाराज बोले-माताजी! मुझे फाड़ खाना हो तो खा लीजिए; इसकी कुछ चिंता नहीं। मैं तो विचार-पूर्वक आपके पास आया हूं। पर यह बेचारा भैंसा तो इसकी इच्छाके बिना ही लाया गया है।

महाराज ऐसा बोल ही रहे थे कि इतनेमें उस बूढ़ी माईने संकेत किया। जिससे पास बैठी हुई कई-एक बहनें महाराजको चारो ओरसे घेरकर नोचने-खसोटने लगीं और दांत मारने लगीं।

महाराजके कपड़े फाड़ डाले। महाराज सुनाते हैं—'मुझे स्वयंको क्या हो रहा है; इसका कुछ भान नहीं रहा। मेरे शरीरमेंसे लहू निकलता देखकर चार-पांच चारण आये और मेरे हाथ-पैर पकड़ मुझे उठाकर भाग निकले। एक-आध खेत दूर जाकर मुझे नीचे रख दिया। थोड़ी देर बाद ही में खड़ा होकर फिर उसी टोलेकी ओर चला। इतने में ही एक जनने मेरे आगे आकर कहा कि 'भैंसे को काट दिया गया है। कोई क्षत्रिय नहीं उठा। इसलिए चारणने ही काट दिया।

इस बनावसे पाटणवाड़ियोंकी भावना उत्तेजित हो उठी। वे हल्ला करनेको सन्नद्ध हो गये। पर महाराजने उन्हें समझाकर रोक दिया। उस दिनसे पाटणवाड़ियोंकी जातिने प्रस्ताव पास किया कि 'विवाहके समय चारणोंका भाग नहीं निकालना चाहिए।' यह प्रस्ताव गाँव-गाँव पहुँचा दिया गया। बनियों, पाटीदारों तथा दूसरी जातियोंने भी चारणोंका बहिष्कार किया।

महाराजका मन बहुत क्षुब्ध हो उठा। इसलिए ये वहाँ अधिक देर न रुककर सीधे बोरसदको चल पड़े।

अगले दिन बोरसदमें तीनों परिषदोंके प्रमुखोंका जलूस निकालना था। उस समय महाराजकी बहुत ढूँढा-ढूँढी हुई। पर महाराज तो वालवोड़में थे। दूसरे दिन परिषदके आरंभ होनेसे पहले महाराज आ पहुँचे। इससे सबको बहुत आनंद हुआ। पर महाराजको चिथड़ोंमें देखकर और वालवोड़का समाचार जानकर सरदार साहबको भी दुःख हुआ।

११ हैडिये वेरेकी लड़त

'अंग्रेज सरकारके राज्यमें सूरज नहीं डूबता था।'—ऐसा कहा जाता है। पर सात-सात वर्षसे बोरसद प्रदेशमें बाबरदेवाकी टोली लूट-मार कर रही थी। हजारों लोग इसके त्रासके भोग बन चुके थे। सरकारी पुलिस इस टोलीको पकड़नेके लिए कौन जाने कैसा प्रयत्न करती थी कि इस टोलीका एक भी आदमी इसके हाथ नहीं आता था। अंतमें पुलिसकी अपकीर्ति ढँकनेके लिए सरकारने 'टाइम्स' के समाचार दाताको बोरसद भेजा। उसने विवरण दिया कि बाबरदेवा और इसकी टोलीकी लूट-मारमें स्थानीय जनताका हाथ है। यह इन्हें छिपा लेती है। जिससे ये पकड़े नहीं जाते। सरकारको तो बहानाभर चाहिए था। थोड़ ही समयमें ४०० चारसौ सैनिकोंका एक दल बोरसदमें भेजा गया। उसके खर्चेके बहाने बोरसद प्रदेशके ९० गाँवो पर तथा आणंद प्रदेशके रेलवे लाइन परके १४ गांवों पर सरकारने २४०००० दो लाख चालीस हजार रुपयेका 'प्युनिटिव टैक्स' लगाया। गांवके पुलिस पटेल तथा मेहतर को छोड़कर अठारह वर्षसे ऊपरकी उमरके प्रत्येक जनके सिर [सरकारी शिक्षक और साधु बावाके सिर भी] सामान्यतः

ढाई रुपये का कर मढ़ दिया गया। इसी लिए लोग इसे 'हैडिया वेरा, कहते थे। [हैडिया–मूंड, वेरो–कर]।

वादमें जाँच करने पर पता चला कि बाबरदेवा को शरण देनेवाले अधिक–से–अधिक तो ४०–५० घर होंगे और वे भी भय या लालच के वश सहायता करनेवाले। ऐसे चालीस–पचास जनों के अपराध के बदले सारी जनता पर दंड थोपा गया। बादमें यह भी सिद्ध हो गया कि इसमें सरकारी पुलिस का हाथ और सहकार भी था। ऐसा था ब्रिटिश सरकार का न्याय! बोरसद प्रदेश के कार्यकर्ताओं द्वारा इस अन्याय की बात सरदार वल्लभ भाईके पास पहुँची। सरदार साहबने पंड्याजी, रावजीभाई-मणिभाई, महाराज आदि को इस संबंधमें सच्चा समाचार प्राप्त करने के लिए गाँवोंमें भेजा। छह-दिनमें सरदार साहब भी बोरसद जा पहुँचे। जाँच करने पर विदित हुआ कि 'खढाणा' गाँवमें प्रतिजन ३॥) रुपये और 'गालेल' एवं 'जोगण' में प्रतिजन ७) रुपये का कर लादा गया था। महाराज आदि समाचार प्राप्त करके आये और सरदार साहब ने पूछते समय खूब बालकी खाल उतारी। महाराज कहते हैं कि मुझे तो इन्होंने प्रश्न-पर-प्रश्न कर करके बहुत उलझाया। इस समय सरदार साहबके साथ इतना गाढ़ परिचय नहीं हुआ था। मुझे ये बहुत कठोर प्रतीत हुए। इनके अविश्वासभरे प्रश्नों की परंपरासे मनमें हुआ कि परमात्मा कभी ऐसे मनुष्य के पल्ले न पड़ावे। मेरी प्रत्येक बात को झूठी सिद्ध कर रहे हों, इस प्रकार ये प्रश्न करते थे। इस विषयमें मैंने पंड्याजी के पास दोषावेदन (शिकायत) भी किया था।

पर उसी दिन सायंकाल बोरसद की खुली सभामें इन्होंने जो भाषण किया, उसे सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। हमारी बालकी खाल उतारकर जो समाचार इन्होंने प्राप्त किया था, उसके आधार पर ये सरकार को चुनौती देते थे। इन्होंने सभामें कहा कि मैंने अपने विश्वासपात्र साथियों को गाँव-गाँव भेजकर जाँच कराई है। मैं सप्रमाण कहता हूँ कि गाँव को निर्दोष प्रजा पर यह आपा-धापी का अंधाधुँध राज्य है। प्रजा लुटी जा रही है, इसे बचाना तो एक ओर रहा उलटा उस पर कर थोप दिया गया है। यह तो वही बात है कि 'कमजोर का ज़ोर पर जोर।' इन्होंने इस सभा में प्रजापक्ष इतने सुंदर ढंगसे प्रस्तुत किया था कि मैं तो इन पर मुग्ध हो गया। मैंने देखा, जो इन्होंने प्रश्न कर-कर के मुझे उलझाया था। उसके मूलमें इनका उद्देश्य सचाई प्राप्त करके अपने विषय को दृढ़ बनाना था। बहुत-से लोगों को बाहर से देखने पर सरदार बहुत उग्र प्रतीत होते हैं। मेरा भी पहला अनुभव ऐसा ही था। अधिक परिचय हो जाने पर विदित हुआ कि इस उग्र मुखाकृति और वाणी के मूलमें कोमल हृदय पड़ा है।"

एक सप्ताह में सारे बोरसद प्रदेशीय जनता की एक विशाल सभा बुलाई गई। इस समय के प्रमाण में यह सभा बहुत बड़ी कही जा सकती है। इतनी बड़ी थी कि व्याख्याता का शब्द ठेठ छोर तक बहुत कठिनता से पहुँचता था। इस सभा में गुजरात के अच्छे अच्छे कार्यकर्ता और अग्रेसरों को भी

आमंत्रित किया गया था। इस सभामें हैड़ियेवेरेके विरोध में लड़त चलाने का प्रस्ताव पास हुआ और प्रदेश के अलग -अलग विभागों में शिविर डालने का निश्चय किया गया। गाना, सुणाव, वीरसद, वहेरा, आँकलाव, कंथोरिया, अलारसा, बोलाद तथा वासद--इन नौ शिविरों में जिलेके अनुभवी कार्यकर्ता अपने अपने डेरे डालकर बैठ गये। बोरसदको मुख्यअड्डा बनाया गया। वहां दरबार साहब और पंड्याजी रहते थे। किसी गांव में कुछ भी हो जाय वह रत्ती-रत्ती अड्डों के कार्यकर्ताओं द्वारा सायंकाल से पहले-पहले मुख्य अड्डे पर पहुँच जाता था। महाराजके भागमें कांठा विभाग आया था। इससे पहले काम करने के लिए महाराज मही नदीके खड्ढोंमें बसे इस कांठेके गांवों में कभी नहीं गये थे। इस हैडियेवेरे की लड़तने इन्हें कई-एक नये ही अनुभव कराये।

इससे पहले पेटलाद से डेढ़-एक कोस पर स्थित जोगण गाँवमें महाराज एक बार गये थे। जोगण छोटा सा गरीब गाँव है। इसमें मुख्यतया पाटणवाड़ियों की बस्ती है। पर इस गाँव की 'मथरावटी' मैली थी। जिस दिन महाराज वहाँ गये थे। उसी दिन किसीने १५०) रुपया देकर एक खून करा दिया था। उसकी जाँच के लिए आये हुए इस विभाग के फौजदार और पुलिस का वहाँ पड़ाव था।

फौजदार के मुँहमेंसे कानके कीड़े मर जायँ--ऐसी गालियां निकलती थीं। मार--पीट चल रही थी। सारे गाँव का ध्यान

यहीं केंद्रित था। इस गाँव की गरीबी गंदे-मंदे छोटे-छोटे घर और मार-पीट का दृश्य देखकर महाराज को ग्लानि हो गई। सन् १९-२२ में जेल जाते समय गांधीजी का कहा यह वाक्य—'तू इस जाति की सेवा करना' इन्हें फिर याद आया। सोचने लगे—मैं इनकी किसी प्रकार सेवा करूं! महाराज कहते हैं कि इस समय मेरे मनमें अनेक विचार आये—"इनकी गरीबी दूर करनी चाहिए, इनकी गंदगी निकालनी चाहिए, इनकी कुटेवें छुड़ानी चाहिए। यदि यह सब करना हो तो मुझे इनके बीचमें ही रहना चाहिए। ऐसा भी मनमें आया कि दूसरी दौड़ा-दौड़ की अपेक्षा यही सच्ची सेवा है।" महाराज के मनमें इनके लिए बहुत आत्मीयता जागी। इन्हें वे अपने स्वजन ही दीखने लगे। ये विचारते थे "ये लोग चोरी क्यों न करें? हमारे धनियोंने इन्हें चूसने में क्या बाकी रक्खा है? ये शराब पीकर उपद्रव क्यों न करें? जितना खर्च और परिश्रम हमारे बालकों पर होता है। उसमें से कितना इन्हें ज्ञान या अच्छे संस्कार देने के लिए किया जाता है? इनकी दृष्टि विशाल न हो, इन्हें देश, दुनिया या स्वराज्य की कल्पना न हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इनके पास जाकर कभी किसीने ऐसी बातें कीं?" महाराज ज्यों ज्यों विचार करते जाते थे त्यों त्यों इन्हें ये चोरी, लूट और हत्या करनेवाले निर्दोष बालकों जैसे दीखने लगे। महाराज इस गांवमें दो-तीन घंटे ठहरे। पर इन तीन घंटोंके लिए इनके सामने एक नई ही दुनिया खड़ी हो गई। महाराज कहते हैं:—

"मैंने सोचा कि मुझे इस काम में ही जुट जाना चाहिए। शहर के काम करनेवाले बहुत होते हैं। पर इनका साथी कोई नहीं। मुझे इनका साथी हो जाना चाहिए। इस जोगण गाँवमें ही मुझे पाटणवाडिया और बारैया जातिमें काम करनेकी दीक्षा मिली; यह कहना अनुचित न होगा।"

'जल्दी से जल्दी इस गाँव में आकर बैठ जाऊँ' ऐसा विचार लेकर वहां से ये निकले थे। पर ये वहां आकर स्थिर बैठ जायँ, इससे पहले इनके सामने हैड़िये-बैरे की लड़त आकर खड़ी हो गई।

इस कारण इन्हें स्थिर बैठना न मिला। परंतु इस जाति में ही रहने को मिले; इसलिए इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र कांठा विभाग चुना।

१२—गाँवमेंसे ब्राह्मण भूखा जाय?

बोरसदकी सभा विसर्जित होने पर महाराज 'रास' गये। वहाँके मुख्य किसान भाई आशाभाई से ये मिले और इन्होंने उसे विदित कराया कि हैडिये-वेरे की लड़त के लिए मुझे इन कांठे के गाँवोंमें फिरना है। महाराज इससे पहले कभी राससे आगे के गाँवों में नहीं गये थे। इसलिए आशाभाईने कांठे के अठारह गाँवों की सूची बनाकर दे दी। यह लेकर ये तो चल पड़े। सभी गाँव नये थे; इसलिए ये नाम भूल जाते। बार बार महाराज यह सूची निकाल-निकालकर नाम देख लेते। पहला गाँव आया 'अमियाद'। इस गाँव की गली-गली में घूम घूमकर महाराजने समझाया कि 'हैडियावेरा क्या है? और किसलिए नहीं भरना चाहिए। महाराज की बातों में लोगों को रस पड़ता। इनकी बातें सुनने के बाद सभी हैडिया-वेरा न भरनेमें सम्मत हो गये। दुपहर इन्हें भूख लगी तो इन्होंने साफ सुथरे अच्छी स्थितिवाले घरमें जाकर कह दिया—'आज मैं आपके यहाँ जीमूँगा'। गृहपतिने कहा—'बहुत अच्छा'। झटपट उसने पानीका घड़ा मांजकर मँगवा दिया। महाराजने केवल आधसेर खिचड़ी ली। नहाकर आंगन में ही तीन ईंटें खड़ी करके खिचड़ी

बनाकर खा ली। यहाँ का काम हुआ। ये आगे बढ़े। 'दहेवाण' पहुँचे। यहाँ के ठाकुर (ग्रामपति) ने हैडिया-वेरा न भरनेका वचन दिया। इससे महाराजको बहुत आनंद हुआ। पर जब यह बात पत्रों में प्रकाशित हुई तो ठाकुर साहब कुछ घबरा गये थे।

'गाजणा' के ठाकुर साहब के गले महाराज की बात न उतरी। क्योंकि उस के मनमें गांधीजी के प्रति उलटे विचार थे। वह ऐसा मानता था कि गांधीजीने धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। इसलिए वह गांधीजी पर झुंझलाकर (चिढ़कर) महाराज को धर्मका उपदेश करने लगा। महाराजने सामने से प्रश्न किया कि 'धर्म का उपदेश करने का अधिकार किसका है? यदि आप क्षत्रिय धर्म का पालन करते हैं तो फिर गाँवमें लूट होने पर आराम से सोये कैसे रह सकते हैं? धर्म के विषयमें आप अधिक जानते हैं या मैं ब्राह्मण अधिक जानता हूँ? ऐसी बातें सुनना किसे रुचे? ठाकुर साहबने भी आवेश में आकर सुना दिया कि 'जो तुझे ऐसा उलटा-सुलटा बोलना हो तो निकल इस गाँवसे बाहर।' महाराजने पूछा 'मैं क्या उलटा-सुलटा बोलता हूँ?' गाँवमें से बाहर मैं क्यों कर निकलूँ? देखता हूँ कौन है मुझे निकालने वाला?

इस प्रकार ठाकुर साहब के साथ बोल-चाल हो जाने के बाद महाराज गाँव से बाहर की एक धर्मशाला में जाकर बैठ गये। महाराज के साथ एक पाटीदार सद्‌गृहस्थ भी था। सायंकाल हो गया था। इतने में इसी गाँव का पर्वतसिंह नामक एक भाई

महाराजके पास आया और पूछ-ताछ करने लगा 'कहाँसे आये हैं? क्या काम है?' महाराजने इनके यहाँ आने का कारण समझाया और भाई के हाथ पर एक रुपया रखकर पूछा कि इस भाई के लिए थोड़ी सुखड़ी (गुड़ और आटा मिलाकर घी में पकाई एक बानगी) बनवाकर ला सकोगे? उस भाईने रुपया वापस करते हुए महाराजसे कहा कि "यह आप क्या बोल रहे हैं? ब्राह्मण का पुत्र हमारे गाँव में से भूखा जा सकता है? आप दोनों चलें मेरे घर, खा-पीकर आराम से रात काटें। कल सवेरे जहाँ आपको जाना हो वहाँ जायँ।" उस भाई का आग्रह और भाव देखकर महाराज उसके साथ चल पड़े। चलते-चलते महाराजने कहा कि 'हमारे ले जाने में कुछ लाभ नहीं होगा, ठाकुर तुम्हें व्यर्थ तंग करेगा।' ठाकुर साहब के साथ बना हुआ सारा किस्सा बता दिया। पर उस भाईने उत्तर दिया 'भले जो होना हो सो हो, पर मैं ब्राह्मण को अपने आंगनमें से भूखा क्यों निकालूँ?' घर ले जाकर दोनों अतिथियों को प्रेमपूर्वक जिमाया। महाराजने उसे हंडियेवेरे की बात समझाई। इसमें भी वह सम्मत हो गया। इतना ही नहीं; पर उसने तो ऐसा भी कहा कि "यदि यह बात आप सबके समक्ष कहें तो बहुत अच्छा हो। आप कहें तो मैं सबको इकट्ठे करूं?" महाराज को इससे बढ़ कर और अच्छा क्या लगता? इन्होंने कहा 'यदि तुम इकट्ठे करोगे तो मैं अवश्य सबको समझाऊंगा। उसी रात उसी उत्साही भाई ने घर-घर जाकर ठाकुर साहब के समीप ही स्वामीनारायण-मंदिर के चौगान में

सब को इकट्ठे किया। महाराज ने इस सभा में 'हैडिया वेरा क्यों आया और हमें क्यों नहीं भरना चाहिए' इसका सारा इतिहास कह सुनाया। इसी सभामें इन्होंने सच्चा राज धर्म क्या होता है— यह भी समझाया। इसके उदाहरणमें राजा रामचन्द्र का आदर्श रखा। इन सब बातों का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। महाराज की ये बातें सुनकर ठाकुर साहब का छोटा लड़का इनके प्रति बहुत आकृष्ट हुआ। थोड़े दिनों के बाद बोरसद जाकर महाराज के पाससे कातने के लिए चर्खा भी ले आया।

पर ठाकुर साहब को यह सब अच्छा नहीं लगा। दूसरे दिन इसने उस पर्वतसिंह को बुलाया और पूछा 'तूने उस ब्राह्मण को क्यों बुलाया था?' उसने उत्तर दिया 'ब्राह्मण के पुत्र को मैं अपने गाँव में से भूखा जाने दूं, यह हमें शोभे?' ठाकुर साहबने प्रश्न किया—'पर तूने तो सारा गाँव इकट्ठा कर के सभा भरी और भाषण सुने थे न?" इसके उत्तर में पर्वतसिंह बोला— किसीने घर के कोठे पर बैठ कर सुना होगा तो किसीने प्रत्यक्ष बैठकर सुना होगा— इसमें हो ही क्या गया? ठाकुर साहबने इस समय तो पर्वतसिंह को अधिक कुछ नहीं कहा। पर मनुष्य का विषैला स्वभाव एकदम अपना विष नहीं छोड़ता। अवसर पाकर पर्वतसिंह को ब्राह्मण को जिमाने के अपराध में २००—३०० के गड्ढे में उतरना पड़ा।

धीरे धीरे महाराज सब गाँवोंमें फिर गये। बादमें तो ये ऐसी चौकड़ी भरते कि डेढ़ दिनमें १८ गाँव छान मारते। कांठे विभागके गाँवोंमें हैडियावेरा न भरनेका संदेश पहुँच गया।

१३–'सयनसेवक' क्या होता है ?

जिस प्रकार हेडियावेरा न भरनेका संदेश महाराजने कांठ विभागमें पहुँचाया था; उसी प्रकार दूसरे कार्यकर्ताओंने भी अपने–अपने विभागोंमें यह संदेश पहुँचा दिया था। पर दूसरे विभागोमें और महाराजके विभागमें एक अंतर था। शिबिरोंमें स्वयंसेवकोंका अड्डा होता था। कोई भी गाँव ढीला पड़ा कि झट स्वयंसेवकोंकी टुकड़ी वहाँ पहुँच जाती। महाराज को स्वयंसेवकों की टुकड़ी मानिए या स्वयंसेवकों का मुखिया कहिए, ये अकेले ही सब कुछ थे। इनकी कार्यप्रणाली ही ऐसी थी कि इसके लिए न दूसरे स्वयंसेवकोंकी या अन्य किसी व्यवस्थाकी आवश्यकता पड़ती थी। महाराज जिन अठारह गाँवोंमें काम करते थे; वहां के लोगोंके साथ ऐसा सीधा संबंध सध गया था कि आवश्यकता पड़े तो ये लोग ही स्वयंसेवकका काम करने लग जायँ। इतना होने पर भी इन्हें एक अनुरूप साथी मिल गया था। इनका नाम था बोड़का महाराज। इनका मूल नाम तो गणपतिशंकर था, पर ठिंगना शरीर, सादा जीवन और घुटा हुआ सिर देखकर लोगोंने इनका नाम 'बोड़का महाराज' रख छोड़ा था। बोड़का महाराजका नियम ऐसा कि रोज दो–तीन

गाँवोंमें घूमें, लोगोंसे मिलें, स्मित करें और बहुत कम बोलें। इनका खर्च तो कुछ मिलता ही नहीं था। घूमते-घूमते जहाँ खानेकी सुविधा मिले वहीं खालें और लोगोंको उत्साहित करते रहें।

एक दिन 'रास'से महाराज पर संदेश आया कि कल डी. डी. सी. स्वयं आकर बदलपुरमें वेरा न भरनेवालों के यहाँ जप्ती करनेवाले हैं। महाराज रातो-रात बदलपुर पहुँच गये। बोड़का महाराज इसी गाँवमें थे। महाराजकी सूचनासे इन्होंने खेत-खेत फिरकर रातो-रात गाँवको इकट्ठा किया। कांठ विभाग के लोग वर्षका अधिक समय खेतोंमें छप्पर छाकर ही बिताते हैं। महाराज मिलनेके लिए बुलाते हैं। इसलिए क्षणभर की भी देर किये बिना सब लोग इकट्ठे हो गये। इनके समक्ष महाराजने यह बात रखी—"कल साहब आवेगा। हमें वेरा भरना नहीं। दूसरे विभागमें तो स्वयंसेवक हैं; पर मेरे पास स्वयंसेवक नहीं। इस-लिए तुम्हारी सहायताकी आवश्यकता पड़ेगी।" एक जन बोल उठा * 'पर बापजी! यह सयनसेवक क्या होता है? आपका इससे क्या काम है?' महाराजने समझाया, "कल साहब आकर घरोंकी जप्ती करेगा। स्वयंसेवक हो तो सब जगह संदेश पहुँचा आवे कि कोई घर खुला न रखे। यदि आँगनमें ढोर भी बंधे होंगे तो ये भी जप्तीमें ले लिये जायँगे। साहब आया है। ढोर घरोंमें बाँध दो या खेतोंमें ले जाओ। इस प्रकार घूम-घूमकर छोटे-मोटे सभी संदेश घर-घरमें पहुँचा आवे। रात-

* गुजरातमें श्रद्धेयों के लिए प्रयुक्त होनेवाला शब्द।

घरात देखे बिना और बिना किसी लालचके लोगोंका हित करना चाहे। कोई उलझनमें पड़ा हो उसे सच्ची सलाह और अपनेसे जितनी सहायता हो सके करे—इसका नाम है स्वयंसेवक।" पर ये 'अपने बोड़का महाराज हैं तो सही।' भाई! हम दोनों कितनी दौड़ादौड़ी कर सकते हैं? मेरे भागमें १८ गाँव आये हैं। इन सबमें संदेश पहुँचाना है।'

एक मुखिया बोल उठा—"इतना ही काम है न? महाराज! कल एक भी घर खुला नहीं रहेगा। पशुओं को भी सांकल और रस्से खोल कर खुले छोड़ देंगे। आप निश्चित हो जायँ। कल गाँवमें कुत्ता तक भी नहीं रहेगा।" गाँव मुखियेके इतना वचन देनेके बाद महाराजको चिंता करनेका कुछ कारण नहीं रहा। इसने एक-दूसरे के साथ बातें करके घर-घरमें संदेश पहुँच जाय, ऐसी व्यवस्था कर डाली।

महाराज आधीरात वहांसे 'उमलाव' पहुँचे। वहाँ के लोग महाराज पर खूब भाव रखते थे। उन्होंने भी महाराज के कथनानुसार सब व्यवस्था कर डाली। वहां के लोग इतने पक्के थे कि एक समय उत्तर विभागका कमिश्नर मि० प्राट साहब स्वयं इस गांव में आया। इसने लोगों को धमकी दी। पर उन पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार इन्होंने अठारह गाँवोंमें पहले से ही तैयारी कर ली थी।

एकदिन महाराज 'रास' से 'कठाणा' जा रहे थे। रास्तेमें 'दिवेल' गाँव आया। वहाँ के लोगोंने महाराजको देखा और

इन्हें घेर लिया। एकने कहा—“महाराज! यह कठाणाकी पुलिस लोगों को धमकाकर पूले ले जाती है—इसका क्या करें?” महाराज के पास दूसरे स्थानों से भी इस प्रकारके दोषावेदन (शिकायतें) आये थे। इसलिए इन्होंने ‘डरकर कुछ न देनेकी’ सम्मति दी और पुलिस के इस प्रकार के वर्तनका समाचारपत्रों में दिया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि पुलिस इन्स्पैक्टर इस विषय की जाँच करने आया। इसने कणभेके कितने-एक किसानों से ‘अमियाद’ गांव में लिखा लिया था कि हमने स्वयं प्रसन्नतासे पुलिसको पूले दिये थे। महाराज के पास तो अणु-अणु का समाचार पहुँच जाता था। इसलिए यह बात भी तुरंत इनके पास पहुँच गई और इन्हें यह भी खबर मिली थी कि पुलिस इन्स्पैक्टर कई—एक बातों को पैसे चुकाकर ठंडा पाड़ना चाहता है।

इसी समय महाराजने कठाणे में एक सभा की थी। उसमें पुलिस की ओर से होने वाले संताप की बात भी छेड़ी थी। इस समय पुलिस—इन्सपेक्टर भी वहीं उपस्थित था। इसलिए महाराजने उसे लक्ष्य कर के कहा कि यदि किसी के थप्पड़ जमाकर दो रुपये निकलवालें तो ये रुपये क्या प्रसन्नतापूर्वक दिये कहे जायँगे? अब साहब पैसे चुकते करनेके लिए आवें इसका क्या अर्थ? यह अकेले पैसों का ही प्रश्न नहीं प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है। पुलिस पूले मांगने आई होगी तो किसानने ऐसे ही थोड़े दे दिये होंगे? खेत में गाय मुँह मार जाय तो वह उसे भी दो लाठियाँ जमा देता है।

वह किसान प्रसन्नतापूर्वको पुलिसको कैसे पूले दे सकता है? पूले लेजानेसे पहले पुलिसने जो धमकियाँ दीं—इसका क्या?" यों कहकर महाराजने किसानोंको सलाह दी कि यदि इस प्रकार पैसे दें तो न लेना और किसानोंने पैसे नहीं लिये।

इसके बाद तो महाराजके पास छोटी—मोटी बहुतसी पुकारें आने लगीं। एक दिन महाराज 'कठोल' के पाससे जा रहे थे। वहां एक कुम्हारने आकर पुकार की कि पासके थानेकी पुलिसने मुझसे पानी भर जाने के लिए कहा, पर मैंने ना पाड़ दी। पुलिसने मुझे मारा। उस मारकी उभरी हुई रेखाएँ भी उसने महाराज को दिखाईं। इसलिए महाराज रास जाने को एक ओर रखकर सीधे कठाणे के फौजदार के पास पहुँचे। वहाँ जाकर इन्होंने पहले यह वाक्य सुनाया— "क्यों जी सर्वत्र आपका ही राज्य हो गया क्या? बादमें सब समाचार कहा। फौजदारने पुलिसको आदेश दिया — जाओ, कुम्हारको बुला लाओ। महाराजने कहा, उसने कौन अपराध किया है जो वह यहाँ आवे? गरीब कुम्हार अपना चाक बंद करके यहाँ आवे, इसकी अपेक्षा आप ही वहाँ चलकर जाँच करें तो यह ठीक नहीं? पूरा समाचार एवं प्रमाण भी वहाँ से मिल सके।" अंतमें उसने वहाँ जाकर जाँच करने का वचन दिया। इसलिए महाराज वहाँसे चलकर फिर कुम्हार के पास आये और उसे सब बातोंसे अवगत किया। साथ-साथ यह भी कहा कि यदि तुझे बुलावें तो काम छोड़कर वहाँ नहीं जाना। फौजदार आवे

तो बनी हुई सारी बात कह देना। महाराज गाँवसे बाहर निकले कि इन्हें खबर मिली—'जमादार गाँवमें आ गया है और फौजदार आनेवाला है। इसलिए ये वहाँसे आगे न जाकर गाँव की धर्मशालामें आकर एक बड़ के नीचे बैठ गये।

थोड़ी देरमें फौजदार आया। जमादारने कुम्हार को बुला कर धमकाना आरंभ किया। महाराज को इस बात का पता चला। इसलिए ये वहां गये। इन्होंने कुम्हार से कहा कि तू यहाँ क्यों आया? महाराज को आये देखकर फौजदारने समीपके थानेकी पुलिस को बुलाया। पुलिस आई। इसने पूछताछ अरंभ की। महाराजने कुम्हार का शरीर उघाड़कर दिखाया। यह देखकर पुलिस महाराजकी ओर आँखें फाड़-फाड़ ताकती रही। एक सिपाही तो यहाँतक बड़बड़ाया कि ये धौली टोपीवाले ही सब बातें ऊँठ तक पहुँचाते हैं; अच्छा, अब इन्हें देखेंगे। महाराज के कानमें ये वाक्य आ गये। इसलिए इन्होंने कहा बादमें क्या देखोगे अभी देख लो ना? तुम्हें इस गाँवकी चौकी करनेको रखा गया है या ऐसे गरीबों को तंग करने? इस ओर के गराशियों के मंजे का पैंताना खोलकर रोझ मारने को तुम्हीं ले गये थे न? इस कुम्हारने पानी भरने की 'ना' कही तो इसे मारा। मालूम होता है तुम्हारा ही राज्य हो गया है।

अंतमें फौजदारने थोड़े रुपये पुलिस के पाससे कुम्हार को दिलाकर वहीं बात दबा दी। इस प्रकार हैडियेवेरे की लड़त चलाते-चलाते महाराज सामान्य लोगोंको उठाने पड़ते अनेक

प्रकार के पुलिस आदि के संकटों से परिचित हुए। जहाँ जहाँ पहुँच सकते थे वहाँ वहाँ उनकी सहायता के लिए भी दौड़े। पर ऐसी छोटी-मोटी बहुत-सी भिड़ंतों के कारण कई-एक सिपाहियों की आँखों में ये खटकने लगे। इनकी गरीबों के प्रति दयालुता देखकर और धूप-छाया देखे बिना निस्वार्थ लोकहित के कार्य करते देखकर कई-एक के मनमें इनके लिए आदर और प्रेम भी उपजा।

एक दिन एक सिपाहीने आकर इन्हें खबर दी कि "कल हम सबेरे सबेरे 'बत्रा' गाँव में जप्ती करने जा रहे हैं।" दूसरे दिन महाराज "बत्रा' गये। पर इनके पहुँचने से पहले ही वहाँ पुलिस सुसज्जित थी। गाँवके लोगोंने अपनी अपनी भैंसों के रस्से निकालकर उन्हें खुली छोड़ दिया। सिपाहियोंने एक सेठ के यहाँ जप्ती आरंभ कर दी। महाराज कुछ विलंब से पहुँचे। इस लिए इन्होंने गाँवके दामन में खेलते हुए लड़कों को इकट्ठे करके उनसे महात्मा गाँधीजी की जयके नारे लगवाये और कहा—"चलो, डाकू आये हैं; उनसे घबराना नहीं, डरना नहीं।" इस प्रकार ४०—५० लड़कों की एक टोली लेकर महाराज सेठ के घर पहुँचे और जाते ही ललकारा कि "लूटने दो धन-संपत्ति, बाबर देवाके सगे-संबंधी आये हैं।" सेठने जप्ती होने दी। पर एक पाई तक नहीं दी। गाँव के दूसरे लोगोंने अपने अपने घरों को ताले मार दिये। इससे फौजदार साहब तिलमिला उठा। 'खटनाल' गाँव

में भी फौजदार को ऐसा ही अनुभव हुआ था। वह बहुत क्षुद्र हो रहा था। पर जहाँ लोग ही पक्के हों तो वहाँ बेचारा क्या करे? इस प्रकार जप्तियां हो रही थीं; तो भी 'हैडिये वेरे' में एक पाई तक भी नहीं भरी गई। 'खटनाला' का माल चौरे (अथाई) में ही पड़ा रहा। क्योंकि उसे उठाने के लिए गाँव के चौकीदारोंने भी सहायता नहीं की। इन सब समाचारों से लोग अधिक-से-अधिक रंगमें आते जाते थे।

जनता को निश्चित हो गया कि यह तो, उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली बात है। इसलिए वेरा न भरने के विषय में लोग बिलकुल पक्के हो गये थे। सरकारने जप्तियाँ करने के लिए और त्रास फैलाने के लिए निवृत्त हुए पटु-तर पटवारियों एवं कुशल जप्ती-अधिकारियों की नियुक्ति की। पर लोग अडिग ही रहे। अंत में होम-मैंबर स्वयं जाँच करने बोरसद में आये। इन्होंने एक खुली सभा भरकर कुछ-एक बातें पूछने का विचार किया था। परंतु सरदार वल्लभाई का आदेश था कि श्रीयुत रामभाई वकील के अतिरिक्त दूसरा कोई कुछ बात न करे। थोड़े अधिकारियों और कुछ लोगों के बीचमें श्रीयुत रामभाई वकील ने अपनी विशिष्ट शैलीमें होम-मैंबर के समक्ष प्रजाका सारा विषय प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं अधिकारियों की ओर अंगुलियां कर करके इन्हें विश्वास दिलाया कि डाकुओं को पोसनेवाले और लूट-मार करानेवाले ये पुलिस अधिकारी ही हैं।

बात यह थी कि बाबरदेवा के साथी, अलिये को पुलिसने पकड़ लिया था। इस पर बहुत आरोप थे। तो भी इसने कहा—"यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैं बाबरदेवा को पकड़वा दूँ।" इस कारण क्लैक्टर और सुपरीन्टैन्डण्ट दोनोंने इसका यह प्रण (शर्त) स्वीकार लिया। खंभात, गायकवाड़ी तथा ब्रिटिश अधिकारियों पर अंतरंग आदेश पहुँचे कि "अलिया बाबरदेवा को पकड़वायेगा, इसलिए इसे पकड़ना नहीं।" दूसरे राज्यों की पुलिस भी बाबरदेवा और इसकी टुकड़ी को पकड़ने का प्रयान करती थी। यह आदेश इसे न रुचे यह स्वाभाविक था। पर अलिये के द्वारा बाबरदेवा को पकड़ने की ऐसी युक्ति चल ही रही थी कि इतने में उस अंतरंग आदेश की एक प्रति सरदार वल्लभभाई के हाथ लगी। इन्होंने इसे 'यंग-इंडिया' में० प्रकाशित करा दिया।

अब अलियेने क्या-क्या किया यह भी देखने ही योग्य है। इसने अधिकारियों से कहा कि बाबरदेवा को संदेह न हो जाय इसके लिए मुझे लूट-मार करने की छूट मिलनी चाहिए। अधिकारियोंने इसे लूट-मार करने की छूट देदी। जितनी माँगीं उतनी बंदूकें दीं और सादे वेशमें इसकी सहायता के लिए पुलिस भी दी। अलिया की यह टोली भी लूट-मार करने के लिए निकल पड़ी। जनता को बचाने के लिए सरकार का कैसा दृष्टिकोण था, इसका यह आदर्श उदाहरण है।

"अलिया छूट चुका है" यह समचार बाबरदेवा को यथा-समय मिल गया था। इसलिए यह अलियेसे सदा सतर्क ही

फिरा करता था। अलिये को भी विदित हो गया कि बाबरदेवा को मेरी युक्ति की खबर पड़ गई है। पर अब तो इसे नियमानुसार लूटमार करने का प्रमाणपत्र मिल गया था। फिर यह क्यों पीछे रहे? साथवाले सिपाहियोंकोभी वेतनके अतिरिक्त आय का ऐसा नया मार्ग क्यों बुरा लगे? इस टुकड़ीने छोटी-मोटी बहुत सी लूट-मारें कीं। इसे सौंपी गई बंदूक से ही इसने एक मुसलमान की हत्या की। एक की नाक काट डाली। इसे संदेह था, यह मुझे पकड़ाने को फिर रहा है। अधिकारी लोग मानते थे कि अलिया हमारे हाथ में ही है। सिपाही जब चाहें इसे पकड़कर हमारे अधिकारमें कर देंगे। पर अलियेने सिपाहियों को गाँठ लिया था। अधिकारी इसके पकड़ने की ताकमें ही थे कि अलिया एक रात सब सिपाहियों को सोते छोड़कर और इनकी चारों बंदूकें लेकर भाग निकला। सिपाही अपने घर हवा खाने लगे।

पर ऐसे-ऐसे उदाहरण और युक्ति युक्त वास्तविकता सुनकर 'होम मैंबर' तो अवाक् रह गया! यह वहाँ तो कुछ नहीं बोला। पर मुंबई जाकर इसने आदेश निकाला कि खेड़े जिले के ११४ गाँवों पर जो दो लाख चालीस हजार का प्युनिटिवटैक्स लगाया है वह उठा लिया जाय और जब्ती का माल वापस देकर उसकी पावतिया (पहुँचें) ले ली जायँ।

इस प्रकार डेढ़ महीने की पक्की लड़त के बाद 'हैडिया वेरा' समाप्त हुआ।

इतने थोड़े समयमें हेडियावेरा उठा लिया गया। इससे जनतामें वहुत उत्साह भर आया। महाराजने सोचा कि यदि कांठा विभाग में इसका उत्सव मनाया जाय तो जनतामें जागृति वढ़े। इन्होंने अपना विचार लोगोंके सामने रखा। लोग तो उत्साह में थे ही। उस पर भी महाराजकी ओर से उत्सव मनाने की सूचना मिल गई। फिर क्या था, तुरंत इन्होंने इसे स्वीकार लिया। देखते ही देखते "कठाणा गाँव में उत्सव की सभा भरेगी और इसमें सरदार वल्लभभाई तथा पूज्य कस्तूरवा पधारने वाली हैं।" यह संदेश कांठेके गाँव–गाँवमें पहुँच गया।

कांठेकी लड़त विना किसी खर्च के या विना किसी तड़क भकड़ के लड़ी गई थी। स्वयंसेवकोंमें महाराज और वोडका महाराज दोनों ही थे। वोरसदसे श्री दरवार साहव इस लड़त के विषय में एक पत्रिका निकालते थे। परंतु महाराज इसकी एक प्रति मँगाते थे और गाँव–गाँव घूम–घूम सुनाते थे। अधिकतर वातें तो ये मौखिक ही कहा करते थे। खर्चके विषय में महाराज कहते थे कि "जब लड़त चालू हुई तव मैंने वोरसदसे एक रुपया लिया था और लड़त समाप्त होने पर वही रुपया मैंने वापस कर दिया। मुझे इसकी कुछ आवश्यकता ही नहीं पड़ी।"

लड़त जैसे सादे रूपमें लड़ी गई इसका उत्सव भी उसी सादे रूपमें मनाना चाहिए। यह लड़त वैसी पवित्र एवं समुन्नत होनी चाहिए, ऐसी महाराजकी मान्यता थी! वस्तुतः महाराजकी इच्छा के अनुरूप गाँव के अपठित गिने जानेवाले लोगोंने वैसा ही करके दिखा दिया।

इस उत्सवके समय सात-आठ गाँवों की भजन मंडलियाँ संम्मिलित हुई थी । उत्सवकी सब प्रकारकी व्यवस्था का काम इन्होंने ही उठा लिया था। गाँवके तालाब का पानी सूख गया था । इस लिए मंडप तालाव में ही बाँधना निश्चित किया गया । तालावके रोड़ों से ही एक ऊँचा मंच बनाया गया। गाड़ा जोड़-जोड़कर ठेठ खंभात तकसे मँगनी पर बाँस लाये गये । गाँवमें फिर-फिर कर दरियाँ इकट्ठी की गई । १४-१५ हजार मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सकें ऐसा विशाल और सुन्दर मंडप बाँधा गया । इसे चारों ओरसे अशोक, आम और नीम के पत्तोंके तोरणोंसे सजाया गया। एक भी पाई के व्यय बिना उत्तम व्यवस्था की गई । बाहरसे पधारे हुए अतिथियोंका भोजन-व्यय कठाणेके एक सद्गृहस्थने अपने सिर ले लिया था ।

इस उत्सव-प्रसंग पर सरदार साहब और बा दोनों आनेवाले थे । पर एका-एक समाचार आया कि गांधीजी को जेलमें आन्त्र-पुच्छ कँडक शोथ को दर्द हो गया। गंभीर स्थिति देखकर सरकारने इन्हें शल्य चिकित्साके लिए यरोडा जेलमेंसे औषधालय में भेज दिया। इसलिये बा का इनके पास जाना पड़ा । सरदार साहब और महादेवभाई कठाणेकी सभामें आये थे ।

कांठाके लोगोंका उत्साह, व्यवस्था और समूह देखकर इन्हें बहुत आश्चर्य हुआ । इन्होंने सबको अभिनंदन दिया । एक ही मंच पर से सब तक शब्द पहुँच सके यह असंभव था। इस-लिए एकही समयमें चार मंच बना करके चार जनोंने चार स्थलों

से भाषण किये। लोगों के उत्साहकी सीमा न थी। स्थान-स्थान पर भजन सप्ताह चल रहे थे। प्रीतीभोज उड़ रहे थे। इस प्रदेशकी प्रजाको चारों ओरसे धन्यवाद मिल रहे थे। जनतामें एक प्रकारका आत्मविश्वास बढ़ा कि हम भी कुछ न कुछ कर सकते हैं और बड़ीसे बड़ी सरकारको भी झुका सकते हैं। कांठा विभागकी जनता महाराजको देवता के तुल्य पूजने लग गई।

१४—मद्य-निषेध

काठां विभागमें फिरते फिरते महाराजने देखा कि ठाकुर जाति शूर-वीर भले ही हो, पर शराबने इसकी दुर्गति कर रखी है। जब मनुष्य मद्यपान करने लग जाता है तो धीरे-धीरे उसमें बुरी लतें पैदा होने लग जाती हैं। मद्य पीकर वह चोरी करता है, हत्या करता है, लड़ाई—झगड़ा करता है, और व्यभिचार करता है। इसके परिणाम-स्वरूप कचहरी-कोर्टमें जाता है, शाहूकारके पंजेमें फँसता है, अपमान और निर्धनता इसके गले पड़ती है। मद्य पीनेवाले को अपनी माँ-बहन या बालबच्चों तकका भान नहीं रहता। इसका सारा परिवार कुसंस्कारी और कुटेववाला बन जाता है। मद्यप की छूत गाँवभरके नव-युवकों में फैल जाती है। इतना ही नहीं इससे गाँवमें गुंडातत्त्व भी पनपने लगते हैं।

चो०डा०स०अ०

महाराजने सोचा कि इस जनतामें इतनी जागृति आई है तो इससे लाभ उठाकर इस जाती को इस बुराईमें से निकालना

चाहिए। मद्य-निषेध का काम इन्होंने १९२० में भी किया था। इस समय जैसे ये विदेशी कपड़े पर धरना देते थे वैसे ही मद्यके ठेके पर भी सत्याग्रह करते थे। महाराजका स्वभाव ही ऐसा है कि जिस काममें हाथ डालते हैं; उसमें पूरी-पूरी शक्ति लगा देते हैं। उसीमें तल्लीन हो जाते हैं। इनके धरने का प्रभाव अच्छे-अच्छे व्यक्तियों पर पड़ता है। इनका काम देखनेवाले तो इन पर निछावर हो जाते हैं। परंतु ये स्वयं सुनाते हैं—"मैंने शहरोंमें मद्यकी दूकानों पर भी धरना मारा। पर मुझे इस काममें बहुत रस नहीं पड़ा। नागपुर सत्याग्रहसे पहले नड़ियादमें हमने विदेशी कपड़े पर धरना मारा था। इस समय मैं ऐसी हृदय-स्पर्शी निवेदिति करता कि कई बार ग्राहक खरीदा कपड़ा दूकानदारको लौटा देते और कई बार तो ग्राहक और दूकानदार मेरे अति आग्रहके कारण तंग आ जाते। एक मुसलमान व्यापारीतो मुझे मारने पर ही उतारू हो गया था। ग्राहकों को समझाने की मेरी रीति देखकर एक कपड़ेके व्यापारीने मुझे अपने यहाँ कर्मचारी रखने का लालच दिया। सबेरे से लेकर सायंकाल तक मैं तो हाथमें लिया हुआ काम कभी नहीं छोड़ता। इसलिए मेरा धरना बहुत कठोर पड़ता था। अब मैं जब विचार करता हूँ तो मुझे प्रतीत होता है कि उस समय जिस प्रकार मैं धरना देता था; उसमें एक प्रकार का आवेश और दोष था। इसका परिणाम भी कोई चिरस्थायी नहीं निकलता था। नागपुरके सत्याग्रह में जानेसे पहले हमने नड़ियादके बाज़ारमें विदेशी कपड़ा बिकना प्रायः बंद करा दिया था। पर जब वहाँसे वापस आये तो देखा कि खुले बाज़ार और धड़ल्लेसे बेचा जा रहा है।"

धरनेके काममें एक सैनिक के नाते महाराज कई वार संमिलित हो जाते थे। पर इसमें इनका मन वहलता नहीं था। धरने की अपेक्षा ये सच्चे ज्ञान के प्रचार और प्रेमभरे समझौते को ही वास्तविक उपाय मानते हैं। इसलिए वाद में इन्होंने धरना देना छोड़ दिया और गाँव-गाँव में फिर-फिरकर समझाने का काम हाथ में ले लिया। मद्य की बुराइयाँ समझाकर इन्होंने जाति की पंचायतों से मद्यनिषेध के प्रस्ताव भी कराये। इस काम में इन्हें एक प्रकार का रस पड़ता था। इनका कहना हैं कि" पंचों के प्रस्तावों से एक प्रकार का अनुकूल वातावरण तैयार हो जाता है। इसका शाश्वत उपाय तो सच्ची समझ और व्यक्तिगत संपर्क ही है।"

मद्य-निषेध

एक वार महाराज मद्यकी कुटेव छुड़ाने के लिए एक लफंगी टोली के नायक के पास पहुँच गये। इसके गले महाराजकी वात उतर गई। इसने कहा यदि ऐसा है तो हम सब शराव छुड़ा देंगे। पर आप एकवार गांधी आत्माराम के दर्शन तो करावेंगे? आज तो मैंने पी ली है। कल थोड़ी-सी निकालूंगा। परसों पी लूँगा। आप नरसों (चौथे) आवें। हम वारह गाँवोंको इकट्ठा कर लेंगे।"

चौथे दिन वूढ़ेने आस-पासके वारह छोटे-छोटे गाँवोंको इकट्ठा किया गाँवकी स्त्रियाँ भी इस सभामें आई थीं। महाराजने इन्हें खूब सीख दी। मद्यपर कितने पैसे खर्च होते

हैं यह समझाने के लिए एक सुंदर उदाहरण दिया कि "मद्यपर" हमारा प्रति वर्ष अस्सी करोड़ रुपया खर्च होता है। अस्सी करोड़ कितना होता है समझ ! यदि हम अस्सी करोड़ रुपयों का ढेर लगावें तो उसकी छाया में अस्सी ऊँट खड़े हो सकते हैं। यदि अपने सारे देश के बूढ़े-बुढ़ियों, लड़के-लड़कियों, ब्राह्मण-बनियों और बाबा-जोगियों प्रत्येक पर २॥) ढाई ढाई रुपये का चंदा लगावें तो कहीं जाकर अस्सी करोड़ रुपया हो। इतना पैसा हम कुछ इने गिने लोग शराब पी-पीकर खर्च कर डालते हैं। यह सुनकर सब दंग रह गये। अंतमें इकट्ठे हुए सब लोगोंने मद्य न पीने का प्रस्ताव रखा। इसी समय वह बूढ़ा खड़ा हुआ और बोला-- "क्यों भाई लोगो ! जो इस महाराज ने कहा स्वीकार है ?" सबने कहा 'हाँ'। बूढ़ेने एक की ओर अंगुली करके कहा—इसने जो बाड़में घड़ा छिपा रखा है उसका क्या ?, (दूसरे की ओर मुड़कर) 'तूने जो तूस (पयाल) में दबा रखा है वह भूल गया ?" यदि झूठ-मूठकी 'हां' कहोगे तो मार डालूँगा, समझे ? पर सबने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया कि "अब हम मद्य को छूवेंगे तक नहीं।" इस सभामें सिपाही भी आये थे। महाराजने बूढ़े से कहा– "तूने इन सब घड़ों का भंडा फोड़ डाला। पर सामने पुलिस बैठी थी इसकी खबर नहीं थी ?' बूढ़ेने उत्तर दिया कि 'साली पुलिस क्या कर सकती थी, प्यालियाँ पी-पीकर तो इसका गला जला पड़ा है।'

इसी दिन भजन-मंडली रात के बारह बजे तक गाती

रही। भजन समाप्त होने के बाद इकने पूछा— 'महाराज! भजन गावें तो पाप माफ हो जायँ?' महाराज ने कहा— 'हाँ क्यों न'? उसने दुबारा पूछा— 'महाराज! हम तो अठारहों कर्म करनेवाले हैं, ये सब माफ हो जायँगे? ऐसा कहकर इसने अभी तक की हुई एक लूट की बात सुनाई। महाराजने कहा कि मनमें पछतावा हो, फिर कभी पाप न करने की मनसे गाँठ बाँध ले तो सब क्षमा हो जाता है। इस प्रकार गाँव-गाँव फिर-फिरकर महाराज ज्योति जगाते फिरते थे।

पर इन गामड़ों में घूमते-फिरते समय महाराज कहाँ और क्या खाते थे—यह भी जानने जैसा है। दुपहरे बारह बजे के बाद जिस किसी गाँव में जा निकले, वहाँ कोई अच्छा घर दृष्टि पड़े तो उससे आधसेर खिचड़ी लेकर बना खालें। फिर वही दूसरे दिनका दुपहरा। पर कभी-कभी तो इस प्रकार आधसेर खिचड़ी माँगने में भी संकोच अनुभव करते थे। कितनी रातें भूखे पेट निकाल देते थे।

आरंभमें गाँवोंमें घूमते समय ये डोरी-लोटा साथ रखा करते थे। गाँव उपकंठ के कुएं पर नहा-धोकर ही ये गाँव में प्रवेश करते। दो-तीन बार डोरी गुम हो गई। बादमें इन्होंने डोरी साथ रखना छोड़ दिया। पर साथ-साथ यह भी नियम कर डाला कि आज दुपहरे खाने के बाद ही पानी पीना है। इससे धीरे-धीरे इन्हें बद्धकोष्ठता रहने लगी। पहले-पहले तो दो-तीन दिन के बाद शौच जाते और बाद में तो ६-६ ७-७ दिन तक शौच न आये—ऐसी स्थिति खड़ी हो गई। ऐसा होने पर भी

इनका दैनिक गाँव-गाँव घूमना तो चालू ही रहा। अच्छा यंत्र हो तो कुछ दिन बिना तेल दिये भी काम दे सकता है। पर लंबे समय तक तो यह बिगड़ ही जायगा।

महाराजका शरीर स्वस्थ, सुदृढ़ और कष्टसहिष्णु था। अभी भी ये मीलों तक चल सकते हैं। सरलता से ५—७ दिन का उपवास कर सकते हैं। एकसाथ दो-चार रातों को जागरण कर सकते हैं। कोई भी काम आ पड़े तो उससे पीछे हटनेवाले नहीं। प्रत्येक स्वयंसेवक का शरीर ऐसा होना चाहिए यह महाराज की मान्यता है। परंतु ये अपने अनुभव से इस सिद्धांत पर आगये हैं कि शरीर को बहुत फुलाना और दुलारना नहीं चाहिए। स्वाद का चस्का नहीं लगाना चाहिए! इन्द्रियाँ बिगड़ जायँ, ऐसा अमोद-प्रमोद नहीं करना चाहिए। पर साथ-ही-साथ यह स्वस्थ रहकर पर्याप्त काम दे सके इतना पोषक भोजन, पानी और आवश्यक आराम भी इसे देना चाहिए। नहीं तो तेल के बिना जो दशा यंत्र की हो जाती है वही दशा अच्छे-से-अच्छे शरीरकी भी हो जायगी।

किसी लड़तमें हार हो जाने पर हतोत्साह हुई प्रजामें फिरसे उत्साह आवे ऐसे प्रयत्न होने चाहिएं। इसी प्रकार विजय मिलने पर विजय के मदसे प्रजा आनंदोत्सवमें मस्त होकर एक प्रकार के प्रमादमें पड़ जाती है। इसमें से भी इसे बचाना चाहिये। इतना ही नहीं महाराज तो ऐसा मानते हैं कि विजय के कारण प्रजामें आये हुए उत्साहको किसी शक्तिवर्धक काममें जोड़ देना चाहिये।

इसके अनुसार इन्होंने सन् १९२३ की हैडियावेरा की लड़त समाप्त होने पर भी कांठा विभाग में घूमना चालू ही रखा। लोगों पर इन्होंने ऐसा जादू डाला था कि लोग इन्हें छोड़ना ही नहीं चाहते थे और महाराज को भी वहाँ रहनेमें एक प्रकार का रस आता था।

एक दिन वहाँके ठाकुरों की सभामें इन्होंने महेमदाबाद वापस जाने की बात छेड़ी तो लोग कहने लगे कि अब आपका यहाँ से जाना कैसा? इनका भाव देखकर महाराजने योग्य समय पर टकोर की— "यहाँ रहकर मैं क्या करूँ? तुम चोरी जैसे अपराध करते हो, मद्य पी पीकर उपद्रव करते रहते हो और पुलिस आ आकर तुम्हें सताती रहती है—यह मुझसे ऐसा देखा नहीं जाता।" इस वचनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि काठ गाँव के मुखियों का एक पंच बनाया गया। इसने घरमें ही झगड़े निपटाने और मद्य छुड़ाने का बीड़ा उठाया। धीरे-धीरे चोरी न करने का प्रचार भी इस पंच के द्वारा होने लगा। गाँव-गाँव ऐसे पंच बनाये जाने लगे। इन पंचोंने सारोल, खटनाल और कठाणा गाँव में के शराबके ठेके बंद कराये। कठाणा गाँवके लोगोंने तो ठेके की सारी शराब खरीद करके ग्रामोपकंठमें इसकी होली जलाई और सारे गाँवने मद्य न पीनेका होलीके सामने प्रस्ताव किया

इस आंदोलनसे मद्य सदा के लिये निषिद्ध हो गई ऐसा नहीं कह सकते। पर इस समय का वातावरण बहुत शुद्ध हो

गया था और कितनों के व्यक्तिगत जीवनमें तो सदा-सर्वदा के लिये भी परिवर्तन हो गया था।

महाराज सुनाते हैं कि बारडोली की लड़त के बाद जब मैं वहाँ गया था तो वहाँ भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ था। वहाँ की प्रजा को भी मद्य और ताड़ी की लतने पागल बना रखा था! इसलिये वहाँ के मद्यनिषेद के काम में भी महाराजने साथ दिया। वहाँ की भोली-भाली रानीपरज (रानप्रदेश की आदी-वासी) जाति के अनुभव इन्हें इतने ही उत्साह-प्रेरक लगे थे। मद्य का व्यसन निकल जाने पर इस दबी-कुचली जाति में भी एक नई उमंग पैदा हुई। श्री जुगतरामभाई, श्रीचूनीभाई तथा इनकी आश्रमस्थ मंडलीने लड़त के बाद वहाँ खादी शिक्षण की नींव डाली। इसलिए आज हम वहाँ की प्रजा की आकृति बदली हुई देख रहे हैं। आज इसी जातिमें से पढ़े-लिखे उच्च वर्ण के लोगों को भी मात करने वाले भावनाशील सेवाव्रतधारी नव युवक निकले हैं।

महाराजका निश्चत मत है कि सत्याग्रह-आंदोलन के समय कार्य कर्ताओं एवं जनता के दिये बलिदानों के फल उतारने हों, या विजय-बल के उत्साह से लाभ उठाना हो, अथवा भावी पीढ़ी के लिए अधिक तैयारी करनी हो तो बीच-बीच में आनेवाले शांतिके अवसरों पर स्थान-स्थान पर रचनात्मक कार्यों के पड़ाव डाल देने चाहिए। लड़त के समय उभरे हुये नये लहूको अनुभवी और परिपक्व कार्यकर्ताओं में रूपांकित करने के लिए इसे दिग्द-र्शन और काम मिल सके ऐसे कार्यक्षेत्र खोलने चाहिए।

१५, चोरों के दिल किस प्रकार जीते !

बोरसद-सत्याग्रह के बाद महाराज गामड़ोंमें घूम रहे थे। इसी समय इन्हें कठाणा गाँव में संदेश मिला कि समीपके कणभा गाँवमें से लुवाणे के (लुवाणा एक जाति) घी के दो डव्वे चुराये गये। इसकी जाँच करने के लिए फौज़दार वहाँ गया है महाराजको जोगण गाँव के चौरे (अथाई) का दृश्य याद हो आया । इन्होंने मनके साथ निश्चय किया कि वहाँ जाकर चोरको ढूढ़ूँ और उसे इस लतमेंसे निकालूँ। दिनमें फौजदार वहाँ था । इसलिए ये रातभर कठाणेमें ही रुके रहे और दूसरे दिन कणभे को चल पड़े । मार्गमें इन्हें फौजदार सामने से आता हुआ मिला। इसने महाराज से कहा कि आप जब तब इन लोगों का पक्ष ले लेते हैं। पर यह जाति अपना स्वभाव कभी छोड़ सकती है ? इस कलेभे गाँवके लुवाणे के दो डव्वे घीके चुराये गये । ये तो मारने पर ही सीधे होंगे। महाराजने कुछ उत्तर नहीं दिया । पर इन बचनोंने इनके मन पर बहुत प्रभाव डाला ।

कणभे जाकर ये गाँवके एक मंदिर में उतरे। चोरी करने वालेका नाम-धाम प्राप्त करके ये उसके खेतमें पहुँचे । उस भाईने महाराज को प्रेमपूर्वक बुलाकर खाट बिछा दी । जब बात चली तो वह महाजन की भाँति बोलने लगा कि "महाराज ! ये मूर्ख लोग आपका मान नहीं रखते। आप इतनी दौड़-धूप करते हैं। पर तो भी ये चोरी नहीं छोड़ते।" ऐसे कहकर चोरको गालियाँ निकालने लगा और महाराजको तो हाथ तक भी नहीं रखने दिया।

महाराज खिन्न मनसे मंदिर में वापस आ गये। मंदिर का पुजारी खिचड़ी लेकर आया। पर महाराजने तो निश्चय कर रखा था कि जबतक चोर नहीं मिलेगा तबतक खाऊँगा नहीं। यह निश्चय सुनकर जो लोग वहाँ खड़े थे उन सबको दुःख हुआ। बात गाँवमें पहुँची और लोगोंकी टोली-की-टोलियाँ मंदिरमें आने लगीं। कइयोंने महाराज के साथ स्वयं भी अनशन कर दिया। पर महाराजने इन्हें समझा-बुझाकर खाना खिला दिया। दुपहरे के बाद तो महाराजने पानी भी छोड़ दिया। इनके मनमें एक ही विचार घुल रहा था कि किस प्रकार चोरको ढूँढ निकालूं और इस लतसे बचाऊँ। महाराज के उपवाससे सारा गाँव ऊंचे-नीचे होने लगा। पर महाराजने तो अपना उपवास चालू ही रखा। दूसरे दिन रातको महाराज मंदिरमें सो रहे थे। किसीने आकर इनका पैर का अंगूठा खींचा और वह घबरा गया। पासके लोगों को भी खबर न पड़े इस प्रकार अंगूठा खींचनेवालेने संकेत किया। महाराज खेत तक पीछे-पीछे चले। पर कुछ बातचीत नहीं हुई। उसने हाथसे ही सुझाया कि उस खेत में जाओ। घोर-घुप अँधेरा था। महाराज के पाओं में जूते तो थे ही नहीं। इसलिए खेतमें चलते-चलते इनके पैरों में स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) के काँटे गड़ गये। इतने में खेतकी दूसरी ओरसे डब्बा खटखटाया। महाराज जिधर से आवाज आई थी उसी दिशामें चलने लगे। जब ठेठ तक पहुँचे तो वहीं-के-वहीं दो डब्बे पड़े थे। आवाज़ करनेवाला भाग गया था। रातो-रात महाराजने ये डब्बे लुवाणे के यहाँ पहुँचाये। लुवाणेने कहा कि इनमेंसे एक घीसे

भरा डब्बा मेरा है। पर दूसरे में घी अ तेल मिला हुआ है यह मेरा नहीं। गाँव–लोगोंने जब यह बात जानी तो बहुत प्रसन्न हुए कि अब महाराजका उपवास छूट जायगा। पर महाराजने कहा कि मुझे तो चोरी करनेवाला चाहिए। अकेले डब्बों को मैं-क्या करूँ ? महाराज का उपवास चालू ही रहा।

दुपहरे महाराज मंदिर में बैठे थे। उसी समय उन डब्बों के चोर का लड़का आया और महाराज को अपने घर बुलाकर ले गया। महाराज के साथ दूसरे भी कुछ लोग गये थे। महाराजने सब को बाहर ही बैठा दिया। पर उस चोरने सबको अंदर लाने के लिए कहा। और सब के सामने अपनी चोरी स्वीकारी। महाराजने कहा–जब खेत में पहली बार मिला था तो झूठ क्यों बोला था ? इसने कहा–मुझे क्या पता था कि आप यहाँ तक पहुँच जायँगे। महाराजने पूछा, यह घी–तेल का मिश्रित डब्बा तू कहाँसे ले आया ? चोर बोला–जब फौजदार यहाँ आया था तो मुझे उसे २५) का उत्कोच (घूस) देना पड़ा था। घी का डब्बा बेचा, इसके ३०) उठे। शेष पाँच बचे, इन में से तेल ले आया। घी–तेल मिलाकर दूसरा डब्बा भर दिया। अंत में लुवाणे को दस रुपये और देने का तथा आगेको चोरी न करने का महाराजको वचन दिया। महाराजने पूछा– तूने चोरी किस लिए की ? वह चोर कहने लगा कि सांझ को हम बैठे–बैठे बातें कर रहे थे। इतने में लुवाणे को अपनी दुकान बंद करके दहेवाण गाँवमें जातिभोजन के लिए जाते देखा। हमारे मनमें उठा कि हमारे सारे गाँवको चूसकर खा रहा है। चलो

आज इसी पर हाथ साफ करें। हँसी-हँसी में चोरी करने निकल पड़े और हमारे हाथ में दो डब्बे आये।

महाराज बोले—पर इससे तुम्हारे हाथमें क्या आया? उत्कोच के रुपये तुझे फौजदार को देने पड़े। गाँव में कोई दूसरा अपराध होगा तो फौजदार अब तुझे ही बुलावेगा। लुवणा हमें लूटता है और हम इसे लूटें यह कैसा न्याय? हाँ, हमें कोई लूट ही न सके ऐसा करना चाहिए।

चोरने कहा—यह कैसे हो सकता है? यह तो हमें कलमके गोदोंसे ही मार रहा है, इसे किस प्रकार रोका जाय?

महाराजने कहा कि इसका भी उपाय है। हमें व्यापारी का ऋणी नहीं बनना चाहिए, कोर-कसरसे रहना चाहिए और अपने बच्चों को गणित सिखाना चाहिए। कहीं अपनी भाँति ये भी अँधे न रह जायँ। इस प्रकार सब को सीख दे, दो शब्द कहकर महाराज वहाँ से उठ खड़े हुए।

गाँव के लोग प्रसन्न हुए और महाराज का उपवास छुड़ाने की विधिमें पड़े। गाँवका मुखिया दाजीभाई महाराज को फलाहार कराने के लिए खजूर लेने लुवाणे की दूकान पर गया। यह लुवाणा इतनी तुच्छवृत्ति का था कि गाँवके लोग भी इससे उकता गये थे। जब इसके डब्बे चुराये गये थे तो लोगोंने कहा कि पुलिस अभियोग नहीं करना। महाराज इधर आवेंगे तो उनकी सम्मति लेकर कोई-न कोई मार्ग निकाल लेंगे। इसने उत्तर दिया कि हाँ-हाँ तुम्हारा महाराज जरूर डब्बा लाने-

वाला है! —एसा कहकर गाँवके लोगों से विरुद्ध होकर इसने अभियोग लिखाया था। दाजीभाईने खजूरें माँगीं। इसने खजूरें तो देदीं। पर आधसेर खजूरोंका डेढ़ आना माँगा। इससे दाजी भाईके मनमें क्रोध आ गया। इसने खीजकर चवन्नी फेंक दी और कहा कि नहीं नहीं, महाराज के निमित्त भी खजूरों का डेढ़ आना नहीं हो सकता ; इनके तो चार आने ही होंगे। पर अब तू वे दस रुपये लेना! महाराजने जब यह बात सुनी तो इन्हें बहुत दुःख हुआ। उपवास छोड़ने का जो आनंद हो रहा था, वह लुप्त हो गया। हन्त! लोभ मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देता।

बादमें फौजदारने महाराज के पाससे चोरका नाम माँगा। महाराजने कहा मैं उसे अभय—वचन दे चुका हूँ। इसलिए नाम नहीं दे सकूंगा। फौजदारने चोरी के डब्बे लुवाणे के पाससे प्राप्त कर लिये थे। इस आधार पर इसने कहा कि यदि आप नाम नहीं देंगे तो आप पर अभियोग चलेगा। महाराज बोले—यह तो आप की इच्छा की बात है।

इन दिनों गांधीजी और सरदार साहब जुहूसे अहमदाबाद आये थे। महाराज इन्हें मिलने गये थे। इस समय सारा वृतांत महाराजने सुनाया और फौजदार की मनोवृत्ति के विषयमें क्या करना चाहिए, यह पूछा। गांधीजीने कहा—तुमने अभयवचन दे दिया है। नाम तो नहीं देना चाहिए और तुम्हें जेलमें जाने की तैयारी रखनी चाहिए। सरदार साहब की ओर मुड़कर गांधीजीने कहा " यह, कैसा न्याय ? " सरदार बोले कि घरमें वा

(कस्तूर वा) चोरी करें और आप नाम न दें तो आपको ही जेलमें ले जाया जाय ऐसा। वापूजी और सरदार जी दोनों खिड़–खिड़ा-कर हँस पड़े।

वादमें पुलिस-सुपरिण्टैंडैण्टने यह अभियोग चलने नहीं दिया। इन दिनों वहाँका फौजदार बहुत घूस खाता था। इसे भय था कि यदि महाराजके हाथ में इस वातका पुष्ट प्रमाण पहुँच जायगा तो ये इस वात को ऊपर तक पहुँचा देंगे। इसलिए यह महाराज के प्रति असद् भाव रखता था। हुआ भी ऐसा ही। एक दिन इसकी वडेली गाँव में हुई घूसकी घटना का पता महाराजको मिल गया। फौजदार पासमें ही रहता था। उसने फलों की टोकरी महाराजके यहाँ भेजी। महाराजने यह नहीं ली। वह स्वयं महाराज के पास गया और उसने कहा कि यह कोई घूस का माल नहीं। महाराज वोले ये सव पेशे ही ऐसे हैं। टोकरी वापस चली गई। धीरे-धीरे फौजदार साहव भी महाराज के प्रति सद्भाव रखने लगा।

इस प्रकार उपवास कर–कर के और प्रत्यक्ष परिचय में आ–आकरके महाराजने अनेकों के जीवन परिवर्तित कर डाले हैं।

१६. काँठे में वीज वाँटा

सन् १९२५ का चौमासा आने ही वाला था। पहले वर्ष कुतरा (एकजंतु) लग जानेसे लोगों के पास दालोंका वीज नाममात्र को भी नहीं रहा था। यह वात महाराज को विदित हो गई। तुरंत ये वोरसद गये। वहाँ इन्होंने समिति में

काठे के लोगों की समस्या प्रस्तुत की। सबने, मिलकर दालों की दुकान खोलने का प्रस्ताव किया और व्याकल्प (बजट) के साथ की (सिफारिश) भलामण को प्रांतीय समिति में भेजना ठहराया गया।

पर महाराज बैठे रह सकें ऐसा था ही नहीं। इन्होंने सोचा कि इस सारी विधिमेंसे पार निकलनेमें समय लगेगा। इसलिये दूसरी–तीसरी बातके लिए न रुककर सीधे 'बोरसद' से 'रास' गये। वहाँसे आशाभाई को साथ लेकर 'रुदेल' पहुँचे। वहाँ के व्यापारी के यहाँ से २५ मन दालों का बीज खरीदा और पैसे ८–१० दिनमें चुकता कर देंगे–एसा वचन दिया। पर माल ठिकाने लगने से पहेले ही मेघ उमड़ पड़े। अब गाडा–वाला चल नहीं सकता। किसानों को लगा कि अब बीज बोनेका अवसर निकल जायगा। महाराजने तो 'रास' से गधे मँगवाये और बीजकी गूनें भर–भर कर काठे में भेजीं। कणभा, काव्ठ, कठाणा आदि प्रत्येक गाँव में दो–दो गूनें गिरवा दीं। स्थानिक व्यवस्था करनेवाले को सूचना दी कि प्रति व्यक्तिको सेर भरसे अधिक बीज नहीं देना। वापस होते समय पैसे उगाह लिये गये। इस प्रकार इन्होंने बरसते हुए मेघों में तेरह गाँवों में बीज बेचा। यदि इस प्रकार बीज न पहुँचाया होता तो किसानों को हजारों की हानि उठानी पड़ती। गाँवके बनियों और लुवाणाओंने महाराज पर खूब वाग्बाण कसे। क्योंकि इनके कारण ये लोगोंसे जो मनमाना लाभ उठाना चाहते थे वह उठा न सके।

गाँवके किसान किस प्रकार चूसे जाते हैं–इसका महाराज

को बराबर ध्यान होनेसे ठीक अवसर पर सहायता पहुँचाने के लिये कैसा पग उठाना चाहिए इसकी सूझ इन्हें तुरंत पड़ जाती है।

गाड़ींभर अन्न उपजानेवाले किसानों की भी ऐसी दशा हो जाती है इससे महाराजको बहुत दुःख होता है। अन्नका ढेर देख कर किसान ऐसा हर्ष में आ जाता है कि खुले हाथ दाने बाँट देता है। बनिये भी इसे ऋणके गड्ढेमें ढकेल देते हैं। जो कुछ थोड़ा बचता है इसीसे सारा वर्ष निकालना होता है। नये वर्ष के लिए इसके पास बीज बोनेकी भी सुविधा नहीं होती। माल बेचना होता है तो किसान पानी के भाव बेच डालता है और बीजके लिए यही माल इसे दुगुने–तिगुने पैसे देकर खरीदना पड़ता है। महाराज ऐसा मानते हैं कि प्रत्येक किसानको बीजके लिए अच्छे--से--अच्छा अन्न पहलेसे ही संगृहीत करके रखना चाहिए।

सहायता के काममें इनकी जैसी झड़प गुजरातभरके दूसरे किसी कार्यकर्तामें नहीं। ठीक समय पर उपयोगी हो सके इस प्रकार ये धरतीके किसी भी कोने से आकर सिद्धोंकी भाँति खड़े हो जाते हैं—यही इनकी विशेषता है।

१७ इच्छा बा के घर

बीज विषयक किसानोंकी कठिनता देखने के बाद महा-राजने सोचा कि जबतक नया अन्न नहीं आता तबतक यदि एक–आध कोई दूकान खोली जाय तो किसानों को व्यापारियों के

पंजे में से निकाला जा सकता है। इसलिए 'कठांणे' में महाराजने इच्छाबा का एक घर किराये पर रखा। इसमें एक छोटी-सी दुकान खोली। महाराज बैठे-बैठे कातते रहते और लोग भी (पहले-पहले काम थोड़ा होने के कारण) अपने आप तराजूसे माल तोल लेते। रुपयाभर कम तोलते पर अधिक नहीं और पैसे पास में पड़ी कुलड़ी में डाल जाते। इस दूकानसे किसानों को बहुत सहायता मिली।

आरंभमें तो इच्छा बा घर भाड़े पर देने को तैयार नहीं हुई, क्योंकि वह छूआ-छूत माननेवाली ब्राह्मणी थी और महाराज थे ढेड़-भंगी सबको छूनेवाले। इसलिए महाराज के आकर बस जाने के बाद कुछ दिनोंतक तो यह महाराजकी चेष्टा देखा करती थी। पर धीरे-धीरे इसके विचार कोमल होते जाते थे। जब वहीं स्थिर रहना पड़ा तो महाराजने 'रास' से चने, कोदरा (एक धान्य) गेहूं आदि मँगाकर स्वयं राँधना आरंभ किया। इच्छा बा इनकी छोटी-मोटी प्रत्येक हलचल पर ध्यान रखती थी। इसका महाराज के प्रति सद्भाव बढ़ता जाता था।

एक दिन समाचार मिला कि समीप के बनेजड़ा गाँवमें चोरी हो गई है। महाराजने झट-पट कोदरी दाल बनाई। वह बराबर छाँटी न होने के कारण कच्ची रह गई। महाराजने थोड़ी कोदरी फाँक ली और दाल पी ली। बची-खुची कुत्तों के लिए बाहर जूठके ठीकरे में डाल दी और घर इच्छबा को सँभलाकर महाराज बनेजड़े के रास्ते पड़े। इच्छा बाने सोचा कि इस कच्ची कोदरी में से क्या

खाया होगा ? ज्यों-ज्यों महाराज के साथ परिचय बढ़ता गया त्यों-त्यों ये महाराज को सच्चे स्वरूप में पहचानने लगीं और इसके महाराज विषयक पुराने विचार बदल गये ।

कुछ समय पहले वनेजड़े में सरदार साहब के लिए सभा योजित हुई थीं । गाँवके लोगोंके साथ महाराज का गाढ़ा संबंध हो चुका था । महाराजने वहाँ जाकर प्रगट किया कि जिसने चोरी की हो वह आकर मुझसे मिल जाय । चोर कोई संतमेंत में नहीं आ गया । इसके लिए महाराज को निर्जल सात उपवास खींचने पड़े । लोग व्याकुल हो उठे थे । पर होता क्या ? चोर उपस्थित नहीं हो रहा था । लोग चोरको गालियाँ निकालते थे और इसे आधा माल दे देने की घात भी गढ़ रहे थे । यह सुनकर महाराज इन्हें समझाते कि यदि यही मार्ग पकड़ना हो तो उपवास करने की आवश्यकता ही क्या ? फिर ये इन्हें अहिंसाकी अनेक बातें बताते । चोरी करनेवाला जहाँ महाराज रहते थे उस मंदिर में प्रतिदिन आता और महाराज के साथ बातें भी करता । पर जबतक यह स्वयं स्वीकारे नहीं तबतक चोरी इसीने की है यह कैसे खबर पड़े ? आठवें दिन जब महाराज के पास दूसरा कोई नहीं था-ऐसा अनुकूल अवसर पाकर वह कहने लगा—“ बापजी ? मुझपर कृपा करो, चोरी मैंने की है ” । महाराजने चोरीका माल माँगा । इसलिए वह एक सोनेकी चूडी ले आया और कहने लगा कि एक नग बेचकर तो मैं दान ले आया हूँ । महाराजने इसे खूब सीख दी । जब लोगोंने जाना कि महाराज का उपवास

छूट गया तो फूले न समाये। इन्होंने महाराज को पालकी में बैठाकर गाँवभरमें यात्रा निकलाने का विचार किया। महाराज ने इसके लिए 'ना' पाड़ दी और गांधीजीका चित्र लेकर जलूस निकालने की सम्मति दी। जलूस निकल चुकने के बाद लोगोंने ब्राह्मणों को जिमाया। आठ दिन का उपवास था तो भी महाराज खाने बैठ गये। अच्छा हुआ कि इन्हें कुछ गड़बड़ नहीं हुई।

जबसे इच्छाबाने उपवास की बात जानी थी तबसे इन्हें बहुत दुःख हो रहा था। उपवास छूटनेका समाचार पाकर ये बहुत ही प्रसन्न हो उठीं। महाराज कटाणे आकर क्या देखते हैं कि इनकी कोठड़ी इच्छाबा ने झाड़—झूड़कर, लीप-पोत कर साफ-सुथरी बना रखी है। इसमेंकी सब दूसरी चीजें निकाल दी गईं। बैठक में ही गद्दी- तकिया सजा रखा है।

महाराज घरमें जाकर वापस आये और पूछने लगे कि "इच्छाबा? अन्न आदि की मटकियाँ कहाँ है!" इच्छा बा बोलीं, तुम्हें "इनसे क्या काम है? तुम्हें रांधने ही कहाँ आता है? बस, आजसे तुम्हें मेरे यहाँ ही खाना होगा"। इसके बाद जबतक महाराज वहाँ रहे तबतक इच्छाबाके घर ही जीमते रहे और जब फिर कभी कठाणे जाना हुआ तो इनका उतारा इच्छाबाके यहां ही होता था। यदि इच्छाबा कोई दूसरी—तीसरी चीज बनातीं तो महाराज खाते नहीं थे। इसलिए इच्छाबा खिचड़ी और रोटी बनाती पर घी—दूध खूब उँड़ेलती। जब बहुत दिनों के बाद महाराज मिलते तो माताकी भाँति इनके

सिर पर हाथ फेरतीं। महाराज और इच्छावाका माँ-पुत्रका-सा नाता बन गया था।

इन दिनों फिर एकबार महाराज को उपवास करने पड़े थे। वटादरेके सेठकी तिल्लोंकी बोरी कठाणे का एक मनुष्य उठाकर ले गया था। महाराजने नौ-दिन के उपवास किये, पर कुछ पता न चला। इसमें पुलिस का भी हाथ था। क्योंकि वे सोचा करते थे कि यह मनुष्य जहाँ-तहाँ अपने बीच आ पड़ता है, इसलिए चोरी पकड़ने ही नहीं देनी चाहिए।

एक भाई को पता था कि चोरी किसने की है और वह यह भी जानता था कि चोर पुलिसके भयसे अपना अपराध स्वीकारेगा नहीं! महाराज तो उपवास खींचते ही चले जा रहे थे। पर यह इस भाईसे सहन नही ही हों रहा था। इसलिए नवें दिन रातको यह महाराजके पास पहुँचा और कहने लगा-- "महाराज, चोरी मैंने की है!" जब महाराजने मुद्दा--माल माँगा तो इसने कहा कि "यह बरसात का समय है, तिलोंकीबोरी जमीनमें दबा दी थी, वह बह गई। यह लीजिए उसकी कीमत ३०) रुपये।" इस प्रकार झूठ बोलकर इसने महाराज का उपवास तुड़ा दिया। जब डेढ़--महीने के बाद महाराज को वास्तविकता का पता चला तो इन्हें बहुत दुःख हुआ।

जिस दिन उपवास समाप्त हुआ उसी रात इच्छावा महाराज को मंदिर में से अपने घर ले जाने के लिए आई। दूसरे दिन महाराज इनके यहाँ गये। *गंठोड़ेका काढ़ा पिया। वहाँसे

---

* एक जड़ी--बूटी।

तीन मील दूर बदलपुरमें श्री अंबालाल–बाजीभाईने खादीकेन्द्र आरंभ किया था। वहाँ जाकर दो छटांक रूई पींजकर पूनियां बनाईं। बारह बजे से पहले घर आकर नहाये और जीमे। थोड़ी देर बाद कातने बैठनेवाले थे इतने में कँपकपी छुटी और जोर का ज्वर चढ़ गया। चार दिन तक उतरा ही नहीं। वहाँ से जब उठेतो महीनों के बीमारोंका सा इनका शरीर हो गया था। पर ये तो फिर काममें जुट गये।

महाराजका स्वभाव ही एसा है कि जहाँ दूसरा काम करनेवाला न हों वहीं जाकर काम करना। बदलपुर में पूंजा-भाई–अंबालाल आदि काम करने आ पहुँचे। इसलिए ये तो कठाणे की ओर ही रहने लगे।

महाराज जहाँ जाते वहाँ नये नये प्रेम–संबंध जोड़ते। इनकी त्याग भावना, सेवा- परायणता और अनुभव--ज्ञान देखकर जो इनके परिचय में आता वही उनका हो जाता।

जैसे कठाणे में इन्हें इच्छाबा जैसी माँ मिल गई थी ऐसे रासमें भक्त हृदय और परम उत्साही आशाभाई जैसे एकनिष्ठ सेवक मिल गये थे। गांधीजी की घोषणा मिले तो लड़त में और लड़त न हो तो रास गाँवकी सेवामें यह इनका कार्यक्रम। जब-जब महाराजने साथ माँगा तो कुटुंबकी अपेक्षा किये बिना आशाभाई तैयार ही होते। आज तो इनका कार्यक्षेत्र सारा कांठा विभाग बन गया है। इनके कार्य से सरदार वल्लभभाई जैसे भी प्रसन्न

हो गए है। पर महाराज की सम्मति के विना एक भी डग न भरना यह आशाभाई की टेक है। महाराज इनकी ओर न खिचें तो जायँ कहाँ ?।

ऐसे तो इन्होंने दूसरे अनेक संबंध जोड़े हैं और अनेकों को मार्गदर्शन कराया है।

हाजरी का शल्य

एक दिन महाराज 'वेत्र' से 'वनेजड़ा' जा रहे थे। मार्ग में वटादरा गाँव आया। वहाँ के मुखीने (नंबरदारने) आग्रह करके महाराजको एक रात वहाँ रोक लिया। गाँव के चौरे में उतारा दिया।

यह गाँव गायकवाड़ी सीमा का था। प्रतिदिन रात को वहाँ के अपराधियों की हाजरी के समय जो दृश्य देखने को मिला इससे इनका दिल सुलग उठा। हाजरी भराने के लिए अकेले पुरुष ही नहीं; आये थे स्त्रियां और वालक भी थे। समय हो ने पर रातको सारे–का–सारा चौगान भर गया। मुखी नाम वोलता जाता था और आये हुए सव जन हाजरी भराते जाते थे। जव वीच–वीच में अवाज में अंतर पड़ता मुखी मुँह दिखाकर जाने का आदेश देता। स्त्रियां भी खिड़–खिड़ाकर मुँह दिखाती थीं। इस समय का दृश्य देखकर महाराजका मन वहुत व्याकुल हो उठा। 'हाजर साहव' की एक एक अवाजने महाराज के हृदय पर हथौड़े का-सा काम किया। महाराजने देखा कि मनुष्य को

पशुसे भी तुच्छ और निर्लज्ज बनाने का यह प्रकार है । ऐसे हाजरी भरानेवालों की संख्या कोई थोड़ी नहीं थी। अकेले वटादरा गाँव में ही ५५३ नाम थे। मुखी अपनी प्रभुता दिखा रहा हो इस ढबसे बार बार महाराजकी ओर देखकर हँसता था। पर महाराज का मुख तो सिल चुका था। इनके मनमें अत्यंत मंथन चल रहा था कि यह हाजरी का शल्य किस प्रकार निकले ?

सबकी हाजरी लग चुकी। मुखीने महाराजकी ओर मुड़कर कहा कि इन उचक्कों के कारण हम काममेंसे सिर ऊँचा नहीं कर सकते। महाराज और तो कुछ नहीं बोले। पर इन भाइयों के साथ थोड़ी बात करने की इच्छा प्रगट की। इतने में एक आवाज आई कि अब हम जायँ ?

'मूखी' गर्जकर बोला " कुत्ती के पुत्रो ? जानते नहीं ये महाराज आये हैं ? इनके पाँव छूओ " ; यह सुनकर महाराज को तो मानो भाला भोंका गया। पर ये कड़वी घूंट गले के तले उतार गये।

हाजरी भराने के लिए आये हुए लोगों की ओर अभिमुख होकर महाराजने पूछा –" इन देवियों को भी हाजरी भरानी पड़ती है–इससे तुम्हें दुःख नहीं होता ? "

एकजन बोल उठा ' बापजी, यह तो अच्छा हुआ; नहीं तो ये राँड़ें रूठकर मायके दौड़ जाती थीं। अब शून्य लग जय' इस भयसे खिसकतीं तक नहीं। " इस उत्तरने तो महाराज के घाव पर नमक का काम किया। वह अभी बोल ही

रहा था कि बीचमें ही एक समझदार भाईने इसे धमकाया और महाराज के अभिमुख होकर कहा, महाराज दुःख क्यों न हो ? यह तो मूर्ख है। रांधना--पकाना, गाय- भैंस दुहना या एसे ही घरके दूसरे काम छोड़कर यहाँ सरकारी चौरे में नर--नारियों को हाजरी भराने आना पड़े यह किसे अच्छा लगे? पर करें भी क्या ?

इस उत्तरसे महाराज को कुछ आश्वासन मिला। इन्होंने वहाँ कोई लंबा उत्तर तो नहीं दिया। पर उस बुद्धिमान् दिखाई देरहे भाई से कहा कि आज मैं रातको तुम्हारे बासमें सोने आऊंगा। सब उठ उठकर जाने लगे। मुखीने महाराजसे कहा कि इन कोलियों के बाड़ें में किस काम सोने जाते हैं ? वहाँ कुछ सुविधा नहीं रहेगी। हाँ, इन्हें कुछ सीख देना हो तों वहाँ जायँ। पर सोने के लिए यहीं आइए। महाराज ने दृढ़ता--पूर्वक कहा--ना, मैं तो वहीं सोऊँगा। तुझे कुछ कष्ट नहीं होगा। यह सुनकर मुखी को बहुत अचरज हुआ।

यह रात महाराजने पाटणवाड़ियों के वास में ही निकाली। महाराज के वहाँ पहुँच जाने पर खा-पीकर टोलीकी टोलियाँ आने लगीं। महाराजने बहनों को भी बुलाया था; इनसे बहुत बातें कीं। अपने मनकी भड़ास निकाली। महाराजने कहा —" ऐसी हाजरी भराते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? ले जाय तो चले जाओ सब जेलमें। पर भेडों--बकरियों की भाँति हाजरीमें मत आओ "। बाद में तो हाजरी न भराने से क्या क्या परिणाम आवेंगे और हाजरी क्यों लगाई जाती है--ये सब चर्चाएँ चलीं। इन सब बातों के अंतमें वहाँ इकट्ठे लोगोंके मनमें

इतना तो अवश्य ठसा कि अपराध करके हाजरी में नाम चला जाना अच्छा नहीं और कैसे भी क्यों न हो पर हाजरी तो निकालनी ही चाहिए ।

हाजरी महाराज के मनमें शूलकी भाँति खटकने लगी। इन्होंने और जाँच की तो पता चला कि भादरण और पेटलाद तालुके के साठ के लगभग गाँवों में पाटणवाड़िया नर–नारियों को हाजरी भरनी पड़ती है । ५–६ हजार लोग क्रिमिनल ट्राईब्ज एक्ट के भोग बने थे । एक अपराध से इनकी हाजरी आरंभ होती और हाजरी में शून्य लगनेसे यह क्रमशः बढ़ती ही रहती। गाँवके नंबरदार, पटवारी या दूसरे किसी अधिकारी के साथ थोड़ा भी मनमुटाव या वैमनस्य हुआ कि हाजरी फिर गले आ पड़ती । सबके चले जाने पर महाराज तो बहुत रात तक यही सोचते रहे, यह हाजरी निकले किस प्रकार ? ”

दूसरे दिन महाराजने वटादरा छोड़ा पर हाजरी के विचारोंने इन्हें नहीं छोड़ा । यह बनाव बनने के दो–तीन दिन बाद ही खेड़े जिले के वृद्ध कार्यकर्ता श्री अब्बास-तैयबजी की ओरसे महाराजको संदेशा मिला कि “ बड़ौदे के पुलिस–कमिश्नर साहब आपको याद करते हैं । ” इससे पहले कभी महाराज बड़ौदे के पुलिस–कमिश्नर से नहीं मिले थे । इसलिए इनके मनमें आश्चर्य हुआ । पर बादमें विदित हुआ–सिद्धपुरमें अब्बास साहब और महादेवभाई इनसे मिले थे तब महाराज और इनके

काम के संबंधमें कमिश्नर साहबसे कहा था । इसलिए उन्होंने इनसे मिलने की इच्छा प्रगट की ।

पुलिस--कमिश्नरने महाराजसे पाटणवाड़िया जाति और इनके काम के विषय में अनेक प्रश्न किये । इस जाति के सुधार के लिए क्या क्या हो सकता है । यह बात चल रही थी। इसमें महाराजने हाजरी की बात भी रखी ।

साहबने कहा—आप ठीक कहते हैं । हाजरी के साथ अनेक अनिष्ट आते हैं। पर एकाएक हाजरी निकाल देने से भी कुछ लाभ न होगा । मैं आपको इस जाति के कई--एक मुखियों का नाम देता हूँ । आप इनके साथ जान पहचान बढ़ावें और इनकी ओरसे ही हाजरी निकालने की माँग आने दें। आप बीचमें पड़कर जो योग्य शर्तें हों वे रखें और बादमें नाम कढ़ावें तो इस हाजरी निकालने का भी कुछ अर्थ सिद्ध होगा । इन लोगों में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी इससे आगेका काम सरल बन जायगा । इस प्रकार काम करने के लिए यदि आप प्रस्तुत हों तो चार--पाँच गाँमों की हाजरी निकालने का प्रयोग करनेको मैं तैयार हूँ ।

महाराजको कमिश्नर की बात सच्ची लगी । पाटण-वाड़िया जाति के प्रति इनके मनकी भावना भी ताड़ गये । आपकी दी हुई सूची के अनुसार सब मुखियों को मिलकर मैं स्वयं आपके पास आऊंगा ऐसा कहकर महाराज विदा हो

गये । कमिशनर साहबकी पहली भेंटसे ही महाराज में नया उत्साह आया और पाटणवाड़िया जाति पर से हाजरी का कलंक धो डालने की आशा बँधी।

कमिश्नर साहब के कथनानुसार महाराज तो भद्रण और पेटलाद तालुके के गाँव--गाँवमें फिरने लगे। ये पाटणवाड़ियाओं के वासमें ही उतरते । कहीं रात भर रहें, कहीं दिन भर रहें और कभी कभी तो एक ही दिन में दो तीन गाँव घूम जायँ। स्थान--स्थान पर समझाते फिरे कि हाजरी बहुत बुरी चीज है। सिंहजैसा बलवान मनुष्य भी हाजरी से गीदड़ बन जाता है । बहनों को हाजरी भरानी पडे इससे बढ़कर और कलंक क्या हो सकता है ? इस प्रकार ये हाजरी के लिए ईर्ष्या पैदा कर रहे थे साथ ही साथ यह भी समझाते थे कि हाजरी हमारी करतूतों से ही आती है; इसलिए हमें अपनी करतूतें सुधारनी चाहिए। चोरी, शराब, उपद्रव जैसे अपराधोंसे बचना चाहिए ! अपनी अच्छी छाप बैठानी चाहिए । ऐसी--ऐसी बातें सुनना बहुतों को अच्छा लगता । कितनों के मन पर इसका प्रभाव भी पड़ता ।पर ये लोग सोचते थे कि चिपटी हुई हाजरी छूट ही कैसे सकती है ! किसी को हाजरी निकालने का उत्साह आ भी जाता पर चोरी करने का स्वभाव कैसे बदला जा सके ? इस विचार से फिर पीले पड़ जाते थे ।

इस प्रकार महाराजने पाटणवाड़िया जाति में एक

वातावरण खड़ा किया । कमिश्नर साहबके बताये सभी मुखियो से ये मिल चुके । इनमेंसे कितनों को महाराज पहलेसे ही पहचानते थे । इस बातचीत पर से महाराज को निश्चय हुआ कि जो कमिश्नर साहब कहते थे वह बात बिलकुल सत्य है । हाजरी निकलाना सुगम काम नहीं । एक बार भी हाजरी निकल जाय तो इससे बहुत लाभ भी न हो। पर ऐसे अनुभवसे महाराज कुछ भी निराश नहीं हुए। ये तो गाँव-गाँव फिर-फिर कर अपने विचार फेंकने लगे ।

१२ वटादराकी हाजरी निकल ही गई ।

आरंभ में महाराजने धर्मज, वासणा, वालवोड और वटादरा की हाजरी निकलवाने का विचार किया। क्योंकि यदि इन चारों गाँवों में शुभ आरंभ हो जाये तो इसका प्रभाव बहुत दूर तक पहुँचता । हाजरी निकलवाने की उतावल महाराज को तो थी; पर लोगों को कहाँ थी? गाँव के लोग वचन दें कि अब हम चोरी नहीं करेंगे तभी महाराज हाजरी निकलवाने का उत्साह कर सकें । अंतमें अकेले वटादरेने चोरी न करने का वचन दिया । इसके नाम हाजरीमेंसे निकल गये । डेढ़ महीने की दौड़-धूप के बाद सब स्त्रियों के नाम हाजरी में से कम हो गये । इतने समयमें महाराज को अनेक बार पुलिस-कमिश्नरसे मिलना पड़ा । इससे इनका आपसका परिचय बढ़ता गया । देवियों की हाजिरी निकल जाने के बाद महाराजके सिरपरका भार उतर गया ऐसे हलके हलके लगने लगे और दुगुने उत्साह से गाँव-गाँव फिरने लगे ।

एक दिन वटादरे के भाईने आकर महाराजसे कहा कि आप हाजरी तो निकलवा गये । पर बादमें मुखी हमसे एक एक रुपया लेने लगा है । इस प्रकार डेढ़ सौ तो उसने उगाह लिया हैं और बाकी के उगाह रहा है। महाराजने पूछा–किस लिए ? उसने उत्तर दिया–हाजरी निकल गई इसलिए ! यह सुनकर महाराज को बहुत दुःख हुआ ! तुरंत ये इस भाई के साथ वटादारा पहुँचे और जाकर मुखीसे कहने लगे कि क्या ऐसी घूस खाई जाती है ? गरीब लोगों से लिये हराम के पैसे फूट निकलते हैं । तुम सब के पैसे वापस कर दो । पर मुखीने तो कई घाटों का पानी पी रखा था । वह ऐसे ही थोड़े गाठा जा सकता था ? महाराजने कहा कि आज तक जो तुमने खाया सो पच गया पर ये रुपये तो कठिन पड़ जायँगे, समझ लो । मुखीपने का अभिमान सुगमता से नहीं उतरता ।

महाराज किसानों के पैसे वापस दिलाने आये हैं; यह जानकर मुखी का एक प्रतिपक्षी महाराजसे मिला कौर बोला, महाराज ? यह तो घर ही बैठाने योग्य है। बहुत घूस खाता है । आज इसके पाप का घड़ा फूटने वाला है । महाराज इस भाई को भी पूर्णतया पहचानते थे ! इसलिए इन्होंने कहा कि यह पापी होगा तो इसका पाप इसे खावेगा पर इससे दूसरे कौन--कौन अच्छे हैं-- यह तो बताओ । इसमें तुम्हें पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं ।

दो--चार घंटों के बाद मुखी स्वयं ढीला पड़ गया । इसने सोचा कि ऐसा हठ करनेसे कुछ सार नहीं निकलेगा ।

महाराज इससे फिर मिले और इसे समझाया कि गाँवके लोगों के साथ शत्रुता बाँधने से कुछ लाभ नहीं निकलेगा। ऐसे रुपये लेकर मोटे–ताजे नहीं हो सकते। व्यर्थ नाम अपमानित हो जायगा। मुखी ये रुपये धर्मादेमें डालने के लिए सम्मत हो गया। पर महाराजने कहा कि जिनके रुपये जा रहे हैं उनका क्या अपराध ! इन्हें तो ये वापस मिलने ही चाहिए। महाराजने तो ऐसा भी कहा— जैसे चौरेमें बुलाकर रुपये लिये थे वैसे ही एक एक को बुला बुलाकर सब रुपये वापस दे दो। मुखीने कहा कि नाक तो गई अब ओठ तो रहने दीजिए। अंत में सब रुपये महाराजने ले लिये। जिस--जिस के थे उस--उसको बुलाकर वापस दे दिये।

इस घटना का प्रभाव सारे गाँव पर पड़ा। मुखी का हृदय कुछ नहीं पलटा था। इसने तो चक्करमें फँस जाने के कारण यह पग उठाया था। इसका द्वेष तो बढ़ ही गया था। महाराजका तो यह नाम तक भी नहीं सुन सकता था। गाँवकी पंचायत से इसने यह प्रस्ताव पास कराया कि "इस गाँवमेंसे हाजरी निकल गई है, इसलिए अब गाँव सुरक्षित नहीं। शराब की लत में पड़े लोग अंकुश उठ जाने से उदंड बन गये हैं और कुछ--न--कुछ उलटा कर मारेंगे; इसका हमें भय है। इसलिए हमारी माँग है--पाटणवाडियाओं की निकाली गई हाजरी फिरसे चालू होनी चाहिए।" पंचायत की प्रार्थना--पत्र पहुँचते ही पाटणवाड़ियाओं की हाजरी चालू हो गई।

हाजरी चालू हो गई है--यह सुनकर महाराज तुरंत वटादरा गये और गाँव के लोगोंसे मिलकर इन्होंने वास्तविकता जान ली। महाराज को देखकर मुखीने लोगों को उद्देश्य करके कटाक्ष मारा कि देखो, यह तुम्हारा महाराज, इसने तुम्हारी हाजरी कैसे निकाली जो यह फिर आकर चौंट पड़ी। महाराज, इसके उत्तर में एक भी अक्षर नहीं बोले। ये तो सीधे यहाँसे वड़ौदे पहुँचे और पुलिस कमिशनरसे मिले। पुलिस कमिशनर इनसे सूबा साहबसे मिल लेने के लिए कहा। महाराज की बात सुनकर सूबा साहबने अनेक प्रश्न किये। आप कितने पढ़े हैं! क्या काम करते हैं? ऐसे कामों में आप क्यों मत्थापच्ची करते हैं? जाइए, सब नियमानुसार होगा। शराबी लोगों की हाजरी भरानी ही चाहिए। महाराज वापस आकर दुबारा पुलिस कमिशनर से मिले और इन्होंने अनुभव कह सुनाया। कमिश्नर साहबने पुलिस नायाब सूबे को बुलाकर महाराजका परिचय दिया और सारी वस्तुस्थिति सूबा साहबके पास रखनेकी सूचना दी। नायब सूबेने महाराज को साथ लिया। पर महाराज तो घोड़ा गाड़ी में बैठते नहीं थे। इसलिए इन्होंने कहा कि आप गाड़ी में आइएगा और मैं चलकर आपके कार्यालय में आ पहुँचता हूँ।

टूंके रास्ते होकर महाराज दौड़ते हुए सूबा साहब के कार्यलयमें आ पहुँचे। पर ये दो चार मिनट विलंबित हो गये थे। इनका वेश देखकर पहेरादारने इन्हें अंदर नहीं जाने दिया

१५ मिनट के बाद नायब सूबा कार्यालयसे बहार आये इन्होंने महाराजको देखा और इन्हें ये सूबा साहब के पास ले गये। नायब सूबेने इनसे पहेलें ही बात कर रखी थी। इस लिए महाराज को कुछ कहना ही न पड़ा। इन्होंने भी इस समय अधिक कुछ न कहकर साढ़े ग्यारह बजे फिर मिलने का समय दिया दस बजनेवाले थे। महाराजने श्री बेलचंद बैंकरके यहाँ कह रखा था कि मैं ग्यारहसे पहले जीमने आऊँगा। उनका मकान दूर था। महाराजने सोचा कि उतावल करके समयपर यहाँ आही पहुँचूंगा। उतावल करने पर भी महाराज तो साढ़े बारह बजे सूबा साहब के कार्यालयमें पहुँच सके। इस प्रकार विलंब हो जानेसे सूबा साहबसे मिल न सके। इससे महाराज को दुःख तो हुआ; पर अब हो ही क्या सकता था ?। दूसरे दिन सवेंर साहबके कार्यालयमें आने के समय महाराज दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। यों दिनसे महाराज को दरवाजे पर चक्कर लगाते देख कर एक कर्मचारीने पूछा " आप कौन हैं ? पाटण-वाड़ियाओं का पक्ष लेने किस लिए आये हैं ! क्या साहब आपसे मिलने को खाली बैठे हैं ! आदि आदि। यह बकझक चल ही रही थी इतने में सूबा साहब वहाँसे निकल गये। महाराज इनसे न मिल सकने के कारण बहुत ही तिलमिलाये। पर सूबा साहबने इन्हें देख लिया था। इसलिए थोड़ी देर के बाद पहेरेदार के द्वारा इन्होंने महाराजको बुलाया। महाराजने कल विलंब हो जानेसे न मिल सकनेके कारण संकोच व्यक्त किया। पर सूबा साहबने तो संक्षेपमें

ही बता दिया कि " जाइए लिख डाला " महाराजने पूछा—' क्या लिख दिया ? उत्तर मिला हाजरी निकाल दी जायगी । महाराज सूबा साहबके कर्मचारीसे मिले और इसके पाससे लिखित आदेश माँगा । कर्मचारीने कहा—आप जायँ । यह आदेश नायब सूबा साहब के पास जायगा और उनके हस्ताक्षर हो जाने के बाद वहाँ आवेगा । महाराज को हाजरी निकालवाने की इतनी उतावल थी कि इन्होंने कहा--'तुम यह आदेश मुझे ही लिखकर दे दो न ! मैं नायब सूबा साहब से हस्ताक्षर करा लूँगा । महाराज का अति आग्रह और उच्च अधिकारियों के साथ परिचय देखकर चली आती हुई पद्धति को छोड़कर वह आदेश महाराज को लिखकर दे दिया । हस्ताक्षर लेने तथा कार्यालयमें नोंधाने के लिए भारपूर्वक समझाया । महाराज यह 'आदेश लेकर सीधे पुलिस नायबसूबे के कार्यालयमें गये । आदेश नोंधाकर इन्होंने नायब-सूबाके हस्ताक्षर ले लिए । यहाँ से यह आदेश भादरण के फौजदार की सही के लिए जाना चाहिए । महाराज को तो अब थोड़ासा विलंब सहन नहीं हो रहा था । इसलिए ये पैदल रातों-रात आदेश लेकर भादरण पहुँचे । वहाँ के फौजदारसे मिले । फौजदार यह आदेश देखकर चकित तो हुआ । पर आदेश आने पर अब क्या हो सकता था ? इन्होंने नोट करके पिपलोई के नायबफौज़दार पर हाजरी निकाल डालने का आदेश लिख दिया । महाराज यहाँसे सीधे वटादरा पहुँचे । नायब फौजदार पर का यह आदेश लेकर चौकीदार इन्हें पिपलोई से वटादरा बुला लाया । सायं पाँच बजे इसने वटादरे का एक-एकनाम हाजरीमें से निकाल डाला ।

गाँवका मुखी तथा पंचायत के सभ्य यह देखकर हक्के-बक्के रह गये।

आशंका और उसका सुलझाव

बड़ौदा राज्यके पुलिस कमिश्नर के संबंध बाद महाराजके लिए हाजरी निकलवाने और घूस दूर करने का काम सुगम बन गया। पर यह संबंध बँधने से पहले इन पर पक्का पहरा रखा गया था। महाराज गाँवों में क्या क्या करते हैं? लोगोंके साथ कैसी-कैसी बातें करते हैं? इनका लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ता है? इन बातों की कमिश्नर साहब ने सूक्ष्म जाँच कराई थी। इन सब के बाद इनके मनमें विश्वास हुआ होगा कि यह मनुष्य आपत्तिजनक नहीं। इसी लिए महाराज को इन्होंने पहले भेंटके लिए बुलाया होगा। सन् १९२५ में गांधीजीने सोजित्रेमें भाषण किया था। उसमें इन्होंने महाराजकी बहुत प्रशंसा की थी। उसका प्रभाव भी अधिकारियों पर था ही।

पर एक समय बड़ौदेके वर्तमान दीवान साहब श्री मनुभाई-ने पुलिस कमिश्नर से कहा कि आप रविशंकर महाराज को बहुत आगे न आने दें। क्योंकि यह काग्रेश का व्यक्ति है। इसका संपर्क बढ़ना नहीं चाहिए। इस बनाव के बाद पुलिस कमिश्नरने महा-राज को एकान्त में बुलाया और कहा कि आपके साथ मेरा व्यक्तिगत संबंध तो बहुत है, बात ऐसी बन गई। इसलिए अब आप यहाँ अधिक आया-जाया न कीजिए।

यह बात गांधीजी को भी विदित हो गई। बड़ौदा-राज्य

परिषद् के समय श्री मनुभाई का अभिनन्दन-पत्र आया था। इस अवसर का लाभ उठाकर गांधीजीने श्री अब्बास साहब को दीवान साहब से मिलने के लिए भेजा और उनके साथ महाराजसे भी जाने के लिए कहा। इस प्रकार महाराज की दीवान साहब के साथ भेंट आयोजित हुई।

अब्बास साहब के साथ बातचीत हो चुकने के बाद दीवान साहबने महाराज के साथ बात की। इन्होंने पहला प्रश्न किया —आप कितने पढ़े ह? महाराजने उत्तर दिया—बहुत ही थोड़ा —गुजराती की केवल सातवीं श्रेणी तक। इन्होंने दूसरा प्रश्न किया —आप किस प्रकार का काम करना चाहते हैं? महाराजने उत्तर दिया कि मैं तो पाटणवाड़ियाओं में घूमूँगा और अपनी शक्ति के अनु सार धार्मिक उपदेश देने का काम करूँगा। तीसरा प्रश्न किया गया कि आपको लगता है ये लोग सुधर जायँगे? महराजने कहा, क्या पता? हम ब्राह्मणों का यह धंधा है; इसलिए ये सुधरें या न सुधरें प्रयत्न तो यही करते हैं। इसमें राजकीय सहायता हो तो काम अधिक हो जाता है; नहीं तो मैं अकेला ही चेष्टा करता रहूँगा। बड़ौदा राज्य का गाँव हो या अंग्रजी राज्य का मेरे लिए तो दोनों समान है। जहाँ जहाँ पाटणवाडिया जाति रहती होगी वहाँ वहाँ मैं काम करूँगा। दीवान साहबने हँसते-हँसते पूछ लिया कि आप गाँवों में फिर फिरकर विद्रोह तो नहीं फैला देंगे? महाराजने कहा —मेरा काम है उपदेश देना और सेवा करना। लोगों में सच्ची समझ फैलाना मैं अपना धर्म समझता हूँ और यदि विद्रोह फैलाऊँ तो मुझे अधिकृत करने की आपके पास कौनसी कम सत्ता है?

अच्छा जाइए ! कमिश्नर साहब से मैं कह दूंगा। वे आपके अच्छे कामों में सहायता पहुँचावेंगे। ऐसा कहकर इन्होंने हँसते-हँसते महाराजको बिदा दी। महाराज भी इनका आभार मानकर बिदा हो गये।

दूसरे ही दिन महाराज कमिश्नर साहबसे मिले। उन्होंने कहा कि 'हाँ' दिवानसाहबकी ओरसे मुझे सूचना मिल चुकी है। आप निश्चिन्त रहें। अब आपको आवश्यकता पडे तो मुझसे मिलिएगा।

इतने परिचयके बाद महाराजका बहुत काम सरल बन गया हाजरी निकलवानेका काम इन प्रसंगोंके बाद ही आगे बढ़ने लगा। धीरे धीरे दूसरे अधिकारियोंके साथ भी महाराजका संबंध जुड़ता गया। जनता की छोटी-मोटी कठिनाइयाँ दूर करना सुगम बनता गया। पुलिस कमिश्नरका महाराज पर इतना अधिक विश्वास जम गया कि दूसरे अधिकारियोंके पास भी ये महाराजके कामका उल्लेख करते थे। दूसरे इनके हृदयमें पाटण-वाड़िया जाति के लिए एक कारुणिक कोना भी था। ये व्यसनों और बुराइयों में फँसी एक शूरवीर जातिको उँचा उठाना चाहते थे। पुलिस विभाग के उच्च अधिकारी होने पर भी ये मानते थे कि हाजरी लगानेसे अपराधी सदाके लिए सुधरता नहीं। उलटा अधिक अन्यायका भोग बनता है। दिन-पर-दिन बिगड़ता जाता है। इनकी मान्यता थी कि "जो मनुष्य चोरी या कोई दूसरा अपराध करता है, उसमें उस अकेले का ही दोष नहीं होता। पर उसकी परिस्थितियाँ तथा अनेक दूसरे तत्त्व इसे इस

दोषकी ओर ढकेलते हैं। जबतक ये परिस्थितियाँ न बदलें और अपराध की ओर ढकेलनेवाले तत्त्व दूर न हों तब तक बाह्य दंड या कारावास सिर दर्द पर उत्तेजक मरहम के समान है। यह इसका सच्चा और शाश्वत उपाय नहीं। जबतक दूसरा कोई उपाय नहीं मिलता तबतक इस अधूरे उपायको ही अजमाते रहना चाहिये।"

इस प्रकार महाराजकी और इनकी विचारसरणी प्रायः मिलती-जुलती थी। इसलिए एक दूसरे के साथ मेल खा गया। विध बैठ गई। महाराजकी पद्धति भी इन्हें प्रिय लगती थी। पर यह व्यापक किस प्रकार हो सकती है? यह इनकी आशंका थी। आज ये कार्यमें से निवृत्त हो चुके हैं आज भी महाराज और इनका वैसा ही मधुर संबध है।

एक समय महाराज कठाणमें थे। वहाँ आकर एक जनने चुगली खाई कि "बापजी बटादरे में सेंध लग गई और फौजदारकी आँख मुझ पर है, आप बचावें तो बचें।" महाराज ने पूछा—तुम पर फौजदारकी आंख होनेका कोई कारण तो होगा न? उत्तर मिला—कारण तो दूसरा कोई नहीं। पर चोरी का माल जिसके खेतमें पडा है वह कहता है कि मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता और इसकी आशंका मुझ पर की जा रही है। महाराजने पूछा "मुद्दा-माल अभी खेतमें ही पड़ा है? इसने कहा 'हाँ', मुखीने वहाँ एक मनुष्य बैठा रखा है।

तुरंत महाराज तैयार हो गये और उस भाई के साथ बटादरे के लिए चल पड़े। जहाँ मुद्दा-माल पड़ा था उसी खेत में ही जाकर खड़े हुए। माल की रखवाली करनेवाला व्यक्ति भी बैठा-बैठा ऊब गया था। महाराजने इससे कहा कि मालकी पोटली ला। इसे चौरेमें सौंप दें। ऐसा कहकर इन्होंने पोटली उठा ली और जाकर चौरेमें प्रस्तुत कर दी। दो-चार घंटों बाद फौजदार भी आ पहुँचा मुद्दा-माल मूल स्थानसे उठ जाने के कारण इसने हाथ नहीं धरा और यह बिगड़ पड़ा।

इन दिनों रासके एक पाटीदारकी रणोली के खेतमें हत्या हो गई थी। इसकी जांचके लिए सर फौजदार आदि इकट्ठे हुए थे। महाराज फौजदारको बिगड़ा देखकर गाँव के पाँच अग्रगण्य तथा मुद्दा-माल लेकर 'रणोला' पहुँचे। चोरीका माल फौजदारके समक्ष रखकर महाराजने कहना आरंभ किया कि बटादरेमें सेंध लगी है, गाँवके ये पाँच आगेवान आगे को चोरी न होने देने का वचन देते हैं। यह मुद्दा-माल है। फौजदार साहबने यह अपने अधिकारमें नहीं लिया। इस लिए आपके पास प्रस्तुत किया है। सर फौजदारने कहा, मुद्दा-मालका पंचकूत करना बाकी होगा। महाराजने कहा, यदि दो दिनतक स्तेय-मालका पंचकूत न किया जाय तो क्या रखवाली करनेवाला व्यक्ति वहीं बैठा रहे? यह कैसा न्याय? सर फौजदारने स्तेय-माल अधिकारमें लिया। इसमें का कुछ माल खुट रहा था इसकी जाँच चली। महाराजने भी तथ्य प्राप्त करने का प्रयत्न

किया। ये चार बार बहारदे हो आये। एक महीनेके बाद इन्हें खबर लगी कि चोरीमें गांवका चौकीदार भी सम्मिलित है। स्त्रियोंके झगड़ेमेंसे बात चोरी तक पहुँच गई। चौकीदार अपना अपराध माननेवाला नहीं था। क्यों कि यदि वह अपराध स्वीकार करता है तो उसकी आठ बीघा जमीन, कुआँ और चौकीदारी सब कुछ जाता है—इसका भय था।

सच्चे तथ्य प्राप्त करके महाराज सीधे बड़ौदे चल पड़े। और पुलिस कमिश्नरसे मिले। इन्होंने कहा यदि यह अभियोग विधि पूर्वक कचहरीमें चलेगा तो इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। चौकीदारको कारावास होगा तो वह सुधरेगा नहीं, किन्तु उलटे रास्ते चढ़ जायगा। इस अपराधमें वह सीधा दोष पात्र भी नहीं। यदि आप इस अभियोगका निकाल मुझे मेरी रीतिसे करने दें तो हम जो हाजरी निकालकर इस जातिमें सुधार करना चाहते हैं। उसमें एक डग आगे बढ़ेंगे। साहब सम्मत हो गये। इन्होंने फौजदारको मिलनेके लिये बुलाया और तार देकर अभियोग निकालदेने का आदेश दिया।

दूसरी ओर मुखीका एक निकटका सगा गरासीया था। इसने उस चौकीदारको डराया और उससे ४०) रुपयेकी घूस ले कर अभियोग उलझा डालने का वचन दिया। साथ-साथ यह सूचना भी दे दी गई कि कुछ भी हो जाय पर अपराध स्वीकारना नहीं।

महाराज जब बड़ौदे से वापस आये तो इन्हें विदित

हुआ कि इस प्रकरण के तो यह नई कोंपल फूटी है। महराजने प्रगट या अप्रगट चौकीदार अपराध स्वीकार ले इसके लिये बहुत प्रयत्न किये। पर सब निष्फल गये। अंतमें महाराज को उपवास पर उतरना पड़ा। आठ उपवासों के बाद पंड्याजी वहाँ आये। इन्होंने गाँव को इकट्ठा करके भाषण किया और ये चले गये। दूसरे दिन चौकीदारने महाराज के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार लिया और जो चोरित माल खूटता था यह भी वह दे गया। महाराज को आनंद हुआ। इनके उपवास छूट गये। महाराजने इससे कहा कि तेरी चौकीदारी और जमीन पर कोई बाधा न आवे इसके लिये मैं भरसक प्रयत्न करूंगा। इतना पक्का हो जाने पर महाराजने सारी बात फौजदार के सामने रखी।

फौजदार चौकीदार को बुलाकर बहुत धमकाया और गालियां निकालीं। पर महाराज बीचमें थे। इसलिये यह बात यहीं तक रही। अभियोग-वापस खींच लिया गया और उस गरासियेने जो ४०) रुपये लिये थे उन्हें चौकीदार को लौटा देने का निर्णय हुआ। मेरी बात बाहर आ गई यह जानकर गरासिये के पावों की मिट्टी निकल गई। इसने महाराजके परिचित एक व्यापारी के द्वारा पैसे महाराज के पास पहुँचा दिये। इसे भी कुछ कहना-करना तो नहीं था। वास्तव में तो ये पैसे चौकीदार को वापस मिलने चाहिए थे। पर ग्राम-पंचायत के अति आग्रह के कारण ये रुपये जाति के काम में उपयुक्त हुए? चौकीदार इस महा विपत्तिमें से बाल-बाल बच गया था। इसलिए इसके मनमें इन रुपयों का कुछ मूल्य भी नहीं था।

२२. गाड़ी में बैठना छोड़ा

महाराज का पालन- पोषण ही इस प्रकार हुआ है कि विना कारण किसी प्रकार बिगाड़ इनसे सहन नहीं होता। इनके जीवन की रहनी करनी पर भी इस का गहरा प्रभाव पड़ा है।

ये सुनाते हैं कि सन् १९२५ में स्व० पंड्याजी मुझे वड़ौदे ले गये थे। ये मुझ पर बड़े भाईका-सा स्नेह रखते थे। वड़ौदे में चार-पाँच दिन तक मुझे जहाँ-तहाँ घुमाया, नये-नये स्थान दिखाये और नये-नये परिचय कराये। पर मेरे मनमें यही उठा करता था कि मेरा प्रयोजन ही क्या है जो मैं इधर-उधर घूम रहा हूँ? सब देखता था, सब स्थानों पर जाता था, पर मनमें जलन सी होती रहती थी। मेरे मनमें वार-बार यह विचार उठाता था कि इस रेलगाडीके कारण ही लोग इतनी दौड़ा-दौड़ी करते हैं। व्यर्थ ही चक्कर काटते रहते हैं। यदि चलकर ही जाना पड़े तो लोग इतना न घूमें और न किसीको घुमावें। मुझे बहुत-सी बुराइयोंकी जड़ रेलगाडी ही दिखाई दी। इस पर चिढ़ चढ़ी और इस पर बैठना ही छोड़ दूं—यह प्रबल विचार मनमें जागा।

इन दिनों महाराजका एक गाँव की हाजरी कढाने के लिए वड़ौदे जाना हुआ। कड़कही धूप थी। गाड़ीमें बैठने को मन हो जाय ऐसी स्थिति थी। वटादरे के एक भाईने सुझाया कि महाराज! गड़ीमें ही जाइए न। महाराजने कुछ उत्तर न दिया। महाराजके पास टिकटके लिए पैसे भी नहीं थे। पिप-

लोई गाँवकी हाजरी कढ़ानी थी। इसलिए वटादरे का एक भाई पिपलोई तक महाराजके साथ आया और इसने पिपलोईके एक व्यक्ति को बुलाकर कहा कि महाराज हाजरी निकलवाने बड़ौदे जा रहे हैं। एकांत में यह भी कहा होगा, जा, पाँच रुपये ले आ। इन्हें किराये के लिए चाहिए। वह व्यक्ति पाँच रुपये ले आया और मँगानेवाले के हाथ पर रख दिये। महाराजने देखा कि इनमेंसे दो इसने मेरे सामने रखे। महाराज को सूझा कि यह भी आवश्यकता वाले को लूटनेका एक प्रकार है। यह सोचकर महाराज को बहुत दुःख हुआ। इन्होंने रुपये लेनेकी स्पष्ट ना कह दी। एक पाई भी नहीं ली। मूल धनीको उसके पाँचों रुपये मिल गये यह भी महाराजने देख लिया।

कड़कती धूप की कुछ अपेक्षा न करके महाराज वहाँ से पैदल चल पड़े। गरीब की चूसमें स्वयं भागी होते-होते बच गये। इस प्रकार का मधुर आनंद ललाटंतप के तेज में चलते-चलते अनुभव कर रहे थे। इनके मनमें प्रबल वेगसे ये विचार उछल-कूद मचा रहे थे कि चूस अटकाने का शाश्वत उपाय क्या? इन्हें एक ही उपाय सूझता था—'सद् ज्ञानका प्रचार'। यह तो चल ही रहा था। पर इसकी गति बहुत धीमी थी। महाराजने सोचा—मैं कुछ कर कसता हूँ? इसी क्षण कर सकता हूँ? इसके परिणाम-स्वरूप इनके मनमें एक संकल्प बँध गया 'आजसे अहमदाबाद, बड़ौदा, खंभात और गोधरे तक की गाड़ियों में नहीं बैठना'। वर्षोंतक महाराजने इन गाड़ियों में पाँव नहीं रखा। प्रकार से इनका जीवन प्रवासी है। यह सारा प्रवास पैदल

ो होने लगा। आजकल आवश्यकता पड़ने पर ये गाड़ी में बैठ जाते हैं। गाड़ी की अपेक्षा पैदल चलना ही अधिक पसंद करते हैं। कई बार तो ऐसा भी कहते सुनते हैं कि मेरा शरीर तो कभी बीमार नहीं पड़ता, इसका कारण पैदल प्रवास ही है।

फौजदारके बच्चे याद आ गये

बटादरे के चौकीदारका समाधान हो जाने के बाद तीसरे ही दिन महाराज बेलगाम-कांग्रेस में संमिलित होनेके लिये चल पड़े। आठ-दिन के उपवासोंसे इनका शरीर बहुत अशक्त दिखाई देने लग गया था। काम आ पड़ने पर अपनी सब कठिनाइयाँ भूल जाना यह महाराज का स्वभाव बन गया है। पंड्याजीके साथ बोरसदसे ये बेलगाम चले गये। इस प्रवासमें इन्हें काका कालेलकरजीका साथ मिल गया। महाराज इनके विषयमें बताते हैं कि 'इनका विशाल-ज्ञान और महाराष्ट्रीय होनेपर भी गुजरातीमें बातकरने की इनकी छटा देखकर मैं इन पर मुग्ध हो गया। पंड्याजीके पाससे इनके विषयमें पहले बहुत कुछ सुन रखा था। पर इस प्रवासमें हुए इनके परिचयसे मुझे इनके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया। मनमें एक प्रकारका प्रेम उमड़ा और मनमें एक ऐसी भावना उठी कि जिन्हें ऐसे व्यक्तियोंके साथ रहना मिलता है उन विद्यार्थियोंका कैसा सौभाग्य है।

बेलगामकी महासभामें सूतके मताधिकारका प्रस्ताव पास हुआ था।

बेलगाम कांग्रेसमेंसे आनेके बाद फिर महाराजने हाजरीका काम हाथमें लिया। पर यह ऐसा काम नहीं था जो झट-पट रास्ते पर आ जाय।

वासणा गाँवमें महाराजने तीन चक्कर मारे—तीन बार गये। लोग हाजरी निकालनेको उद्यत नहीं होते थे। एकबार तो गाँवके लोग वालवोड़ बरात लेकर गये हुए थे। इसलिए महाराजभी वहीं पहुँचे। इन्होंने सोचा कि एक साथ ही दोनों गाँवोंका काम सध जायगा। पर इस समय लोग इन्हें पूर्णतया पहचानते नहीं थे। वे इन्हें ब्राह्मण जानकर फेरे हो जाने पर इन्हें चार आने दक्षिणा देने लगे और वे हाजरी निकालनेके लिए सम्मत नहीं हुए। महाराजने दक्षिणा लेने की 'ना' कहदी। इसलिए वे इसमें दो आने और बढा कर दक्षिणा देने लगे। महाराजने कहा भाई! दक्षिणा मुझे क्या करनी है। पर वालवोड़वाले हाजरी निकालने को सम्मत हो गये। महाराज उन्हें भादरण आनेके लिए कह कर कड़कती धूपमें भादरणके फौजदारके पास गये। और कहने लगे कि वालवोड़ वाले हाजरी कढानेके लिए आ रहे हैं। सांझ तक कोई नहीं आया। इसलिए दुबारा महाराज वालवोड़ गये। गाँवके आगेवानने कहा "क्या करूँ, लोग मानते नहीं"। एक व्यक्ति प्रेमपूर्वक महाराज को पाँच रुपये देने लगा महाराजने ये लिए नहीं। इस काममें अथक प्रयत्न करने पर भी विफलता मिलती थी। तो भी महाराज उत्साह नहीं छोड़ते थे। पर जहाँ अच्छे उत्तर की संभावना होती जैसे वहाँ विफलता मिलती थी और वैसे ही कई असंभावित स्थानोंमें सफलता भी मिल जाती थी।

जबूद गाँवके लोग हाजरी कढ़ाने के लिए गाड़ा जोड़कर महाराजको बुलाने के लिए आये थे। ज्यों-ज्यों कुछ गाँवों की

हाजरी निकलती गई त्यों-त्यों उनका प्रभाव दूसरे गाँवों पर भी पड़ने लगा।

एक दिन पिपलोईके पाटणवाड़ियों को वहाँके फौजदारने खूब उधेड़ा। लोग पुकार लेकर वटादरे महाराज के पास पहुँचे। महाराज इनके साथ पिपलोई गये। जिन-जिन पर मार पड़ी थी उनके निवदेन लेने लगे। निवेदन तैयार करके ये पुलिस कमिशनरसे मिले और इन्होंने सही वस्तुस्थिति सामने रखी। कमिशनरने तुरंत नायब सूबे को बुलाया और इस अभियोगमें जांच करके उचित कार्रवाई करने की सूचना दी। पर नायब सूबा और वह फौजदार दोनों मिले हुए थे। इन दोनों ने मिलकर घूस खाने की कुछ कमी नहीं रखी थी। शेरडी गाडीयाखाड़ गाँव को हाजरी निकालनेके बदले में इन्होंने गाँव-लोगोंके पाससे आठ-सौ रुपयोंकी घूस ली थी। इसलिए महाराजका यह अभियोग नायब सूबे को क्यों अच्छा लगे? और पुलिसकमिशनर के आदेश को टाल भी कैसे सके? पुलिस कमिशनर ने तार देकर फौजदार को बुलाया और महाराज़ को यहीं रुक जाने की सूचना दी।

दूसरे दिन सब इकट्ठे हुए। इस समय फौजदार तो काँपने लगा। पुलिसकमिशनरने इसे खूब धमकाया और कहा—जाओ, अपना मुँह मुझे नहीं दिखाना। दूसरे दिन इसे पदच्युत करने का आदेश निकलनेवाला था, पर महाराजको रातमें नींद नहीं आई। इनकी आँखों के सामने फौजदार के स्त्री-बच्चे तैरने लगे। सवेरे-सवेरे नहा-धोकर ये नायब सूबे से मिलने गये। महाराजके प्रति इसका बहुत आदर-भाव

९

तो नहीं था, पर शिष्टाचार के नाते पूछा:—कहिए कैसे आना हुआ? महाराजने कहा—कल साहबने फौजदार साहब को बहुत धमकाया। रात में मुझे उसके बच्चों की याद आई। इस बार उसे क्षमा दिलानी चाहिए। महाराज की ऐसी बात सुनकर इसका भाव बदला और इनके साथ रस-पूर्वक बातें करने लगा। इसने कहा कि ऐसा कराना तो आपके हाथ की बात है। महाराजने कहा, आओ हम दोनों चलें। वह तैयार हो गया। महाराजने अपना भाव पुलिस कमिशनरके सामने रखा। कमिशनर साहबने कहा कि आप इसमें न पड़ें। जो हो रहा है वह ठीक ही हो रहा है। यदि यह सदाके-लिए रहेगा तो आपको ही तंग करेगा। महाराज बोले—कुछ नहीं करेगा, जो आपने धमकी दी है यह क्या कम है? महाराज का आग्रह देखकर इन्होंने फौजदार को बुलाया और महाराजके सामने ही कहा कि देखो, इस रविशंकर महाराजके आग्रहसे ही इस बार तुम्हें छोड़ रहा हूँ,। आगे के लिए नियम ले लो।

अनंतर पिपलोई गाँवके नाम हाजरीमें से निकल गये।

चार-चार फेरे मारने पर भी जो वासणा गाँव तैयार नहीं होता था। अब वही हाजरी कढ़ाने के लिए बार-बार आने लगा। इसके नाम निकल गये। 'धर्मज' भी सम्मत हुआ। जब कणझटके लोग तैयार हुए तो यहाँ के मुखीने महाराजको एकांतमें ले जाकर कहा:—पता है? अमुक—अमुक तो बाबरदेवा की टुकड़ी में मिले हुए थे।

महाराजने संक्षिप्त उत्तर दिया कि इसीलिए तो इनके नाम कढ़ाने की अधिक आवश्यकता है।

२४-आग को दीमक नहीं लगती

आन्त्र-पुच्छ के दर्द में से उठने के बाद गान्धजीको छोड़ दिया गया। वे गुजरातमें आये। इस समय महाराज आदिने उन्हें मही नदी के कांठा विभाग में घुमाने का कार्य-क्रम बनाया था।

कठाणे में इच्छाबा के घर ही उनको उतारा दिया गया। घर बहुत सुभीतेवाला नहीं था। पर इच्छाबाकी श्रद्धाभक्ति सब कमियों को दूर कर रही थी। उसने प्रेमपूर्वक १५–२० जनोंके लिए भोजन बनाया। घरको लीप-पोत कर स्वच्छ दर्पण-सा बना रखा था। छूआछूत माननेवाली इच्छाबा अपने घरके ओटले पर बैठकर हरिजनों के साथ बातें करते गांधीजी को देखती ही रहती थी। गांधीजी अभी नहाये नहीं थे। इच्छाबा के यहां नहाने की कोठड़ी या चौकड़ी नहीं थी। इसलिए पड़ोस के घरमें गांधीजी के नहाने की व्यवस्था की गई। इस नीचे घर की एक अँधेरी चौकड़ी पर बैठकर गांधीजीने एक बालटी भर पानी में स्नान कर लिया। नहाने के बाद महाराज उनकी धोती निचोड़ने लगे। गान्धीजीने धोती को छूने नहीं दिया उनके साथ उनका छोटा बेटा देवदास था। उसने गांधीजी की धोती धोई। वह पड़ोसिन तो अपने घरमें गांधीजी के चरण पड़ने से फूली न समाई।

इच्छाबा कुछ समय से चर्खा लाई थी। इसने अपने कते हुए सूत का थान भी बनाया था। इसने अपने पहले थानमें से एक धोती गांधीजी को भेंट की। गांधीजीने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार लिया।

दुपहरे दो बजे गांधीजी खुली सभा में भाषण करनेवाले थे। सभामंडप में दूर दूर से ठाकुर (छोटे राजे) आये थे। कई एक तो साथमें हुक्के भी लेते आये थे। इस सभा में एक हरिजनों की मंडली भी भाषण सुनने आई थी। पर वह मंडप के बाहर धूपमें बैठी थी। गांधीजी सभामें आये कि तुरंत उनकी दृष्टि धूपमें बैठे हुए हरिजनों की ओर गई। गांधीजीने सबसे यही बात कही कि आपकी इच्छा हो तो मैं उन धूप में बैठेहुओं को यहाँ बुलाऊँ। अनेक वर्षों तक काले पानी (अंडेमान) रह आये एक भाईने कहा कि हम इन्हें छू नहीं सकते। महाराज बोले कि महात्माजी छूते हैं न! उसने उत्तर दिया—'ये तो भगवान् हैं। गांधीजी ने कहा—तुम्हारा रविशंकर महाराज क्या नहीं छूता? उसने फिर उत्तर दिया कि आग को सीमक (दीमक) नहीं लगती! इसके बाद गांधीजीने बहुत समझाया पर लोग हरिजनों को मंडप में लाने के लिए सम्मत नहीं हुए। इस-लिए गांधीजीने इस सभामें भाषण नहीं किया और सभामंडप छोड़ दिया।

महाराज को इससे दुःख हुआ था। इनके मनमें यह लोभ था कि इन चार पाँच हजार मनुष्यों के समक्ष यदि गांधीजी दो शब्द कहे होते तो बहुत अच्छा होता। "भाषण की अपेक्षा आच-रण की कीमत कई गुना अधिक होती है" इस सिद्धांत के पक्षपाती गांधीजा इससे बढ़कर दूसरा कौन-सा पग उठाते?

कठाणे से गांधीजी कणभा और बनेजड़ा होकर बटादरे

गये। वरादरे में पादरे से एक बरात आई थी। बरातियों ने भाँत-भाँत के रंग विरंगे विदेशी कपड़े पहन रखे थे। गांधीजी यहाँ आये हैं—यह जानकार स्त्रियां स्वराज्य लेवुं सहेल छे" (स्वराज्य तो हाथमें ही है) यह गीत गा रही थीं। गांधीजी की आँखों और कानों में वहाँ का चित्र और गीत दोनों समा गये। सभा में गांधीजीने कहा कि हमारे भाइयों और बहनोंने विदेशी कपड़े तो पहन रखे हैं। क्या केवल 'स्वराज्य लेवुं सहेल छे' यह गीत गाने से हमें स्वराज्य मिल जायगा? ऐसी टकोर करके इन्होंने, विदेशी कपड़ेने हमारा कैसा सत्यानाश किया है और चर्खा ही हमारा तारणोपाय है" इस विषय पर प्रेरक भाषण दिया।

कणझट गाँव के वे लोग अपनी हाजरी कढ़ाने को कहने के लिए गांधीजी को सभा में ही आये थे। पर महाराज अब हाजरी कढ़ाने के लिए पहले की भाँति बहुत उतावले नहीं होते थे। फल को पकने देते थे। कणझट गाँव के लोगों की इच्छा पक गई थी। इसलिए इन्होंने यह कढ़ा डालने का निर्णय वहीं कर लिया था।

२५—हाजरी निकलने लगी

आरम्भ में मानो हाजरी कढ़ाने में महाराज का कुछ स्वार्थ हो, बहुत समझाने पर भी लोग आनाकनी करते थे। कुछ गावों की हाजरी निकल गई और लोगों को इसका लाभ दिखाई दिया, इसलिए

लोग महाराज के पीछे-पीछे फिरने लगे। कणझट की हाजरी निकलने के बाद इसकी छूत ऐसी लगी कि कुछ ही दिनों में सारे भादरण तालुके की हाजरी निकल गई।

एक समय महाराज जोशीपरे गये थे। वहां के एक पाटीदार ने पाटणवाडियों को यों भरमाया कि यह तो सी. आई. डी. (गुप्तचर) विभाग का मनुष्य है। देखना कहीं चक्कर में न आ जाना। एक बूढ़ा घबराया। इसने महाराज से कहा—मेरी हाजरी न कढ़ाना। महाराज ने पूछा—क्यों? वह बोला कि बहुत पुरानी हो गई है, काढ़नी है तो लड़के की कढ़ा देना। महाराज ने विनोद में कहा कि पुरानी होने से क्या तुम्हारी हाजरी की जड़ें जम गई? उसने कहा—नहीं, नहीं, आपको कष्ट होगा। सबकी हाजरी निकल जाने पर वह बूढ़ा खुश-खुश हो गया।

एक समय महाराज बडौदे से चले आ रहे थे। किंखलोड़ के खेतों में इनसे एक पाटणवाडिया मिला। उसने पूछा—जो हाजरी कढ़ाता है वह आप ही हैं? महाराज ने कहा—हां, बोल, तेरा क्या नाम है? उसने कहा—जरा ठहरेंगे नहीं? मैं अपने चाचे को बुला लाऊँ। हमारे गांव की हाजरी कढ़ानी है। महाराज बोले अब तो मुझे जल्दी का काम है। मैं बडौदे जा रहा हूँ, अपने चाचे को वहीं भेज देना। सप्ताह बीत चुका। वह चाचा नहीं आया। इसलिए महाराज ने सोचा कि चलो मैं ही जाकर उससे मिल आऊँ। वहां पहुँचने पर महाराज को विदित हुआ कि जो जवान मिला था वह बहुत भोलाभाला था। पर इसका चाचा तो सब प्रकार से घुटा हुआ था।

रात को किखलोड़ में सभा हुई। महाराज के समझाने से वहां के पाटणवाडियों ने हाजरी कढ़ाने का प्रस्ताव किया। पर एक नाम अपवाद रूप में शेष रखना सूचित किया गया। लोगों ने कहा——महाराज ! यह अपना धन्धा नहीं छोड़ सकता। ठेठ मुंबई जाकर चोरी कर आता है। महाराज ने सोचा सारे गांव के नाम निकल जायँ और इस अकेलेका नाम बाकी रहे यह ठीक नहीं। यहां तो ये कुछ नहीं बोले, पर बडौदे जाकर इन्होंने पुलिसकमिश्नर के सामने यह प्रश्न रखा। कमिश्नर साहब ने कहा—यदि ऐसा है तो उसका नाम हाजरी में से पहले कढ़ाना चाहिए। सहायता की आवश्यकता हो तो मैं सहायता के लिए प्रस्तुत हूँ। मैं उसे नौकरी में रख दूँगा। पर उसकी चोरी की लत छुडानी ही चाहिए। वह शेष रहेगा तो उसकी देखा-देखी दूसरे भी दुष्कर्मों में फँस जायँगे।

अन्त में एक-एक नाम (सारे के सारे नाम) हाजरी में से निकालने का निर्णय किया गया। उस युवक को कमिश्नर साहब ने नौकरी में रखा। पर एक महीना पूरा भी नहीं होने पाया था कि वह वहां से भाग निकला।

थोड़े समय के बाद 'बालपरा' 'ब्राह्मण गाम' और 'गंभीरा' की हाजरी भी निकल गई।

'वड़दला' पास के 'कणिया' गाँव में महाराज हाजरी कढ़ाने गये थे। वहां एक घटना घटी। सामान्यतः महाराज का नियम है कि जिस अपरिचित गाँव में जाते हैं, वहां जो मनुष्य इनसे पहले मिलता है और इन्हें बुलाता है उसी के यहां उतरते हैं। वह गरीब

हो या धनी। थोड़ी देर बाद गांव में खबर पड़ जाती और सब पाटणवाडिया इकट्ठे हो जाते। महाराज खिचड़ी बनाते और इसमें से सब थोड़ी-थोड़ी प्रसादी लेते। साथ-साथ अपनी-अपनी कठिनाइयां प्रस्तुत करते। महाराज कहते जाते और वे सुनते जाते।

महाराज 'कणियां' गये। उस दिन ग्यारस थी। महाराज का उपवास (व्रत) था। जिसके यहां उतरे थे उसके घर में मूँगफली (मूलफली) थी, उसने वही महाराज के आगे रख दी। महाराजने इसमें से थोड़ी खाई कि इतने में गाँव के लोग इकट्ठे हो गये और पुकार करने लगे कि 'अभी तक हाजरी क्यों नहीं निकली'? बात यह थी कि हाजरी निकालने का आदेश पेटलाद तक आ पहुँचा था। पर गांव का मुखी बिलकुल नहीं चाहता था कि हाजरी निकल जाय। इसने लोगों से कहा—देखता हूँ तुम्हारे नाम हाजरी में से कौन कढ़ाता है? एक ने उत्तर भी दे दिया—हाजरी तो महाराज कढ़ाते हैं। मुखी ने विकत्थन (शेखी) बघारते बघारते कहा, 'कढ़ा दी'! ऐसे तो कितने ही पेट भरनेवाले निकल पड़े हैं। इन शब्दों से गाँव के पाटणवाडियों की भावना पर ठेस पहुँची। मुखी फौजदार से मिल चुका था। लोगों के पास से पैसा हथियाने को (हड़पने को) युक्ति चल रही थी। महाराज थोड़ी देर में ही वस्तु स्थिति ताड़ गये। जब फौजदार और मुखी मिले तो महाराज ने सीधे ही सुनाया, 'आप पैसे किस बात के मांगते हैं?' पेट भरता न हो तो इसे फोड़ डालो। क्या हाजरी कढ़ाने आप गये थे? फौजदार बोले, कौन कहता है कि हमने घूस मांगी है? महाराज ने

उत्तर दिया—यदि घूस नहीं मां।। तो आदेश मिल जाने पर भी इस कणिया गांव की हाजरी क्यों नहीं निकाल डालते ? फौजदार ने कहा—यही निकालने के लिए तो आया हूँ । मुखी मुँह फाडकर सामने ताकता ही रहा । उसी समय चौरे में जाकर कणिया की हाजरी के नाम निकाल दिये, यह घोषित कर दिया गया।

नियम ऐसा था कि जिसे नाम निकलवाना हो तो उसे स्वतंत्र रूप से आठ आने का अंक-पत्र पर स्टाम्प चिपकाकर प्रार्थना करनी चाहिए । लगभग पाँच हजार नाम हाजरीमेंसे निकल गये । इनके टिकटों के ही ढाई हजार रुपये हो जाते हैं । पर महाराज तो पुलिस कमिशनर के सामने ही सब नाम लिखा देते । इसलिए हाजरी कढ़ानेवाले की एक पाई भी खर्च नहीं होती थी ।

थोड़े ही समयमें सारा पेटलाद तालुका हाजरी के चंगुल में से निकल गया ।

२६. पाटणवाडियापरिषदें

दादूराम महाराज वाले 'चलाली वगसोल' के एक भक्तने 'गोवेल' में पाटणवाड़िया जातिकी एक परिषद् भरी थी। १९२४ में यह परिषद देखनेके बाद महाराजने सोचा कि यदि प्रतिवर्ष इसी प्रकार पाटणवाड़िये इकट्ठे हों तो इनका संगठन बढ़े और अनेक सुधार भी हों । १९२५ में वटादरे के लोगोंने अपने यहाँ परिषद बुलाने का बीड़ा उठाया । इसकी तैयारी होने लगी । ११२ गाँवों में आमंत्रण-पत्र लिखकर हाथों-हाथ पहुँचा दिये गये । सरदार वल्लभ-भाई और ठक्कर बापा को विशेष आमंत्रणपत्र भेजे गये । इस परिषद

में एक जून २२॥ मन खिचड़ी लगी इतने अतिथि आये थे। एक साथ हजार-हजार मनुष्यों की दो पंगतें लगी थीं। भोजन हो ही रहा था कि बीचमें लटकाया हुआ एक प्रदीप (गैस) बुझ गया। पर एक भी मनुष्य उठा नहीं और न कुछ गड़बड़ या कोलाहल हुआ।अँधेरे में ही सब चुपचाप जीमते रहे। जब जीम चुके तो महाराजने पूछा कि अँधेरेमें जीमते हुए आपको असुविधा तो अवश्य हुई होगी? उन्होंने उत्तर दिया— 'ना रे महाराज, हम तो रोज खेतों में अँधेरेमें ही खाते हैं।

पाटणवाड़िया जाति की यह एक अनुकरणीय विशेषता है कि हजारों की संख्यामें एक साथ भोजन करने बैठने पर भी बिलकुल आवाज़ नहीं होने देते। व्यवस्थितरूपसे जीमकर थोड़ी देर में उठ खड़े होते हैं। भात का एक दाना तक जूठा नहीं छोड़ते। जातिभोजन हो रहा हो उस समय अकस्मात् संख्या बढ़ जाय तो भोजन खूटने पर किसी प्रकारकी 'हो-हा' किये बिना जितना पात्र में आ गया उतना ही खाकर उठ जाते हैं। बादमें इसके विषयमें टीका-टिप्पणी का एक अक्षर भी नहीं निकलता।

परिषद् भरने से पहले दिन महाराजने सबके साथ सारी रात जागकर चर्चाएँ कीं और प्रस्ताव गढ़े। दूसरे दिन सरदार साहब और ठक्कर बापा आ पहुँचे। इनके साथ जाति के आगेवानों का परिचय कराया गया। परिषद में प्रस्ताव सर्वानुमति से पास हुए और अतिथियोंने सीखके दो-दो शब्द कहे।

विदा होते समय प्रत्येक गाँवने एक एक रुपया भेंट दिया।

इस प्रकार ११३ रुपये इकट्ठे हो; पर भी खर्च से सौ-एक रुपया कम रहा। यह वटादरे के पाटणवाडियोंने मिला दिया। परिषद में आनेवालोंको दो समय खिलाना पड़ा था। पहले दिन खिचड़ी वनाई गई थी और परिषद के दिन दाल-भात वनाये गए थे। सव मिला कर दो डव्वे घी लगा। सव को भात के साथ मुट्ठी भर खांड दी गई थी। वहुत साधारण और थोड़े व्ययमें परिषद संपूर्ण हो गई। इसके वाद ऐसी ऐसी तीन परिषदें और भरी गइं। महाराज कहते हैं कि इसका सारा श्रेय जातिकी साधारणता और सुमेल को है। इन परिषदों में भी सरदार साहव और दूसरे अतिथि आमंत्रित किये गये थे।

पाटणवाड़िया जाति में वड़े-वड़े चार दोष हैं—१—मद्यपीना, २—चोरी करना, ३—छिपकर वैर निकालना और विवाह विच्छेद। इसी कारण इन में मारामारी और कजिया होता है। कचहरी में जाते हैं। घर के पशुओं तक वेचकर भी अभियोग लड़ते हैं। इन वुराइयों के कारण यह जाति भिखारिन हो गई है। पर इस जाति का पंच वहुत प्रवल होता है। कोई भूल करे तो वांधकर पीटने का दण्ड भी पंच कर देता है। उक्त परिपदों से पंच अधिक प्रवल हो गये। इन परिपदों में मद्य न पीना, चोरी न करना, चोर को अवलम्व न देना, जीवितभर्तृका स्त्री न लाना, प्रच्छन्न रूप से वैर न निकालना आदि प्रस्ताव होते थे। महाराज अपनी तलपदी भापा में ऐसे उदाहरण और युक्तियाँ देकर समझाते थे कि कुछ महीनों तक तो

ये दुर्गुण दूर करने का वातावरण खड़ा हो जाता । इन परिषदों से गाँव-गाँव महाराज का परिचय बढ़ता चला गया ।

परिषद् में गाँव-गाँव से जाति के पांच-सात आगेवान आते । हजार पन्द्रह सौ की उपस्थिति होती । ऐसे अच्छे प्रतिनिधित्व की देख-रेख होने से प्रस्तावों का प्रचार और आचरण सरल रीति से हो जाता । ऐसे प्रस्तावों से शाश्वत सुधार तो नहीं होता था, पर इस निमित्त धीरे-धीरे लोकमत पुष्ट होता जाता था । हाज़री कढ़ाने में महाराज को ये परिषदें भी बहुत सहायक सिद्ध हुईं । हाज़री कढ़ाने से जो वातावरण तैयार करना चाहिए वह इन परिषदों से स्वाभाविक हो जाता था ।

विवाह की अस्थिरता इतनी बढ़ गई थी कि सामान्यतः कोई भी स्त्री जीवनभर एक ही पति के साथ नहीं रहती थी । वह दूसरे के यहाँ जाय, इसमें से झगड़ा खड़ा हो और झगड़े से दूसरी अनेक दुर्दशाएँ हों । इसलिए "जीवितभर्त्तृका स्त्री के साथ विवाह न करना" यह प्रस्ताव प्रत्येक परिषद में आता । महाराज अपनी व्यक्तिगत संपर्कता से भी यह अवगुण दूर करने का प्रयत्न करते । पर वर्षों की पुरानी यह प्रथा सुगमतासे दूर होनेवाली नहीं थी । कई बार तो महाराजको इस अवगुण में से पैदा होते हुए अनेक अनिष्टों को देखकर उकताहट भी आ जाती थी । पर यह दूर करने का इनका पुरुषार्थ कुछ भी मंद नहीं पड़ता था । यह बुराई निकालते-निकालते दूसरे बहुत लाभ भी निकल आते थे । लोग ज्यों-ज्यों काम-धंधे में लगते गये त्यों-त्यों इनकी स्थिति सुधरती गई ।

आजकल तो इस अस्थिर विवाह की प्रथा में वेगसे परिवर्तन होता जाता है।

२७—ये स्मरणीय प्रसंग

महाराज स्वयं कहते हैं कि सन् १९२३ से १९२८ तक के पांच वर्ष के समय को मैं अपने जीवन का उन्नतिकारक काल समझता हूँ। इस समय मैं पाटणवाडिया जाति के साथ इतना ओत-प्रोत हो गया था कि खाते-पीते उठते-बैठते और रात को स्वप्न में भी मुझे उन्हीं के विचार आते। किसी भी गांव में महाराज जाते जब तक ये पाटणवाड़ियों से न मिलते तब तक इन्हें चैन न पड़ती। उनके बच्चे देखकर इन्हें अपने बच्चों का-सा स्नेह उमड़ पड़ता। पाटणवाडियों का अन्याय दूर करने के लिए चाहे जिससे टक्कर ले लेते। इस समय ये अकेले परिव्राजक की भांति घूमा करते। आज यहां हैं तो कल १५—२० मील दूर के गांव में पहुँच जाते। इस विभाग में तथा पाटणवाडिया जाति में दूर-दूर घूमना मानो इनका नित्य कर्तव्य हो गया था। कोई पूछता महाराज आप से कहां मिलें? ये उत्तर देते कि मुझे याद करो मैं झट पहुँच जाऊँगा। क्योंकि कुछ दिनों में ये वहां पहुँचने वाले ही होते। किसी गांव में काम के बिना एक पहर भी नहीं ठहरने का इनका नियम था। इनके पैर में चक्र था। और साथ-साथ कामों का भी चक्र मिल जाता। हाजरी निकालना यह मुख्य काम था। इसके साथ-साथ छोटे-मोटे दूसरे अनेक काम आ पड़ते।

गंभीरा गांव की हाजरी निकल गई थी । हाजरी निकल जाने के बाद महाराज वहां लम्बे समय तक पहुँच नहीं सके थे। एक समय बडौदे से आते हुए महाराज वहां ठहर गये। गांवमें प्रविष्ट होते ही एक पाटणवाडिया अपनी छोटी-सी छपरी सुधारता हुआ दीख पडा । उसने महाराज को देखा और झट—पट छपरी पर से उतरा। महाराज के चरणों में पड़ा और छपरी के अगले खण्ड में खाट बिछा दी। उसके मुख पर का हर्ष तो देखते ही बनता था। इसके घर की सामनेवाली दीवार पर ढाल-तलवार लटक रही थी। इसके अतिरिक्त घर में दूसरा कुछ वैभव नहीं था। स्थिति बहुत गरीब थी। पर थोडी देर में ही वह महाराज को बैठा कर बनिये के यहां से दाल-चावल उधार ले आया । बनिये ने चावल इतने घटिया दिये थे कि छाँटने पर उनका चूरा-चूरा हो गया। महाराज ने ईंटें खड़ी करके पानी रखा कि इतने में गांव में खबर पड़ गई। इसलिए वहाँ दूसरे पाटणवाडिये भी आ गये थाली में के चावल देखकर एकने उस भाई से कहा —अरे हो, महाराज को ऐसे चावल खिलाने चाहिए क्या? चलो महाराज, हमारे यहाँ खाना। इन शब्दोंने गृहस्वामिनी के मुख पर कैसे भाव पैदा किये यह महाराज की आँखों से ओझल नहीं था। गाँव के आगेवान आग्रह करते रहे और महाराजने —ये चावल क्या बुरे हैं? यह कहकर दाल और चावल उबलते हुए पानी में एक साथ ही डाल दिये। इससे चावल घुल गये और दाल तले लग गई। महाराजने तो जैसा बना अमृत मानकर खा लिया। इसी समय गाँव का मुखी

श्रीछगनभाई पटेल ढूँढ़ता २ यहाँ आ पहुँचा। इसने पूछा—गाँव में कोई दूसरा घर नहीं मिला? महाराजने कहा कि यह घर क्या बुरा है। सब बैठे थे। इस छपरी के सामने कुछ बच्चे धूल में खेल रहे थे। ये अपने खेल में शराब के ठेके का अनुकरण कर रहे थे। ये दृश्य इन्हें प्रतिदिन देखने को मिलते। महाराज के मन में यह अनुकरण देखकर अनेक विचार उठे कि यह स्थिति कैसे दूर हो सके?

जीमने के बाद महाराज छगनभाई के यहां गये। चलते-चलते महाराज ने उससे पूछा कि आप कभी इस रास्ते आये? वह बोला, 'ना, आज पहली बार आया हूँ। महाराज ने कहा, तो मेरे जैसों को यहीं उतरना चाहिए। तभी आप जैसे किसी दिन यहां आवें और यहां की दशा देखें। महाराज के उठ जाने के बाद उस घरवाले ने अपने छोटे-से घर के आगे गुदड़ियों की ऊँची गद्दी बनाई। महाराज जब वापस आये तो उन्हें उस गद्दी पर बैठाया। एक थाली में थोड़ी मिसरी और नारियल लाया और महाराज के गले में कनेर के फूलों का हार पहनाया। इस गरीब मनुष्य के भाव देखकर महाराज के मन में कैसी-कैसी भावनाएँ उठी होंगी इसकी तो कल्पना ही कर लेनी चाहिए। महाराज कहते हैं—उन दम्पती का चित्र कितनी बार मेरी आखों के सामने आकर खड़ा हो जाता है। इसका स्मरण भी मुझमें इस जाति की सेवा करने के लिए नया उत्साह भरता है।

एक बार महाराज जोशीपरे गये थे। एक पाटणवाडिये ने अपनी टूटी खाट बिछाकर उस पर एक नई गुदड़ी बिछा दी। फिर

कहा—महाराज, आप थोड़ी देर बैठें मैं अभी आता हूँ। पांच-एक मिनट में एक जिंजर की बोतल ले आया। महाराज के सामने रखकर कहा लो महाराज पीवो। धूपमें चल कर आये हैं। शरीर बरफ जैसा ठंडा हो जायगा। महाराजने कहा कि मेरा शरीर तो हिम (बरफ) जैसा ही है। उसने कहा, ताप आया हो तो वह भी चला जाय। महाराज बोले, ताप आया हुआ हो तब तो! फिर उसने कहा, सब लोग कहते हैं कि अदरक में से बनती है। हम भी पीते हैं। इतनी बातों के बाद महाराज से न रहा गया। धमकाकर बोले—अरे खानेको अन्न नहीं मिलता और इस प्रकार पैसा बिगाड़ते हो? जा, फोड़ डाल इस जिंजर को। जो वहाँ इकट्ठे हो रहे थे सब के मुँह फीके पड़ गये। महाराजने जिंजर की बोतल वापस भेज दी। बाद में सबको मीठी झिड़की दी और समझाया कि व्यर्थ पैसे फेंक डालनेकी अपेक्षा घी-दूध खाते तो अच्छा, जिससे शरीरमें कुछ शक्ति तो आती। यह प्रसङ्ग छोटा था। पर इसने महाराज के मन में सारी रात अनेक विचार पैदा किये। ऐसी बुराइयों में फँसे इन लोगों को किस प्रकार छुड़ाया जाय? दूसरे दिन महाराज वहाँसे निकले। वह घरवाला गाँव के बाहर तक इनके साथ गया। उसी समय एक हरिजन की छोकरी वैसी ही सोडावाटर की शीशी दूकानदार को वापस देने जा रही थी। उसकी ओर अंगुली करके उस व्यक्तिने कहा, देखो, महाराज! ये लोग भी पीते हैं। महाराज के मुख पर दुःख था। ये कुछ नहीं बोले। इन्होंने सोचा कि यह पढ़े-लिखे और व्यापारी लोगों की चाल है। इन पर इनका पुण्य प्रकोप चढ़ा। सोचा—यह

तो हत्या से भी भयंकर है। इन्द्रियारामी लोगोंने यह सब इन्द्रजाल फैला रखा है।

भादरण गाँव के किखलोड़ गाँव में महाराज पाटणवाडियों की सभा में बैठे थे। इनकी जाति के अनेक प्रश्नों पर चर्चा चल रही थी। इसमें चोरी छोड़ने की बात भी आई। इस समय एक व्यक्ति बोला—महाराज अब हमारी जातिमें से चोरी निकल गई है। पर यह फूला बावेचा अपनी टेव नहीं छोड़ता। खेतमें रहता है और यह कर्म करता है। किसीका कहना नहीं मानता। महाराजने फूले को बुलाया और उससे पूछा क्यों फूलाभाई! सब चोरी छोड़ने लग पड़े और तुम अभी क्यों चिपट रहे हो। फूलाने महाराज को ऐसा झट उत्तर दिया कि महाराज विचार में पड़ गये। 'बापजी, आप मेरे घर आये और कब मैंने आपका कहना नहीं माना? कल घर पधारें और वहीं जीमनेका भी रखें।

दूसरे दिन महाराज फूले के खेत में गये। इसका घर खेतमें था और साफ-सुथरा था। आंगन में सुंदर भैंसें बैल आदि देखकर महाराज को आनंद हुआ। बैठक में ही खाट पर गदैला बिछा दिया और महाराज को बैठाया। फूलाजी के दो स्त्रियाँ थीं। दोनों घर में से बाहर आईं और पल्ला पसार कर महाराज को प्रणाम किया। फिर इसके लड़के रुक-रुक करके आये और पावों पड़कर बैठ गये। लड़कों की बहुएँ थोड़ी दूर बैठीं। फूलाजीने महाराज से भोजन बनाने के लिए कहा। पर महाराजने 'ना' कह दी। इस पर

इसकी एक पत्नीने कहा कि मैं जानती हूँ आप हमारे घर क्यों नहीं खाते। मुझसे इन्होंने बात की थी, पर अब ये ऐसा नहीं करेंगे। यह बात करते करते उसने दूधका लोटा महाराज के आगे रख दिया। महाराजने कहा—नहीं, ऐसी कुछ बात नहीं। कल तुम्हारे यहां ही जीमकर जाऊँगा। रात को भोजन करके सारा कुटुंब महाराज के सामने बैठ गया। बूढ़ेने (फूलाने) घरके सब जन का महाराज को परिचय दिया। महाराज उसका सुखी परिवार देखकर प्रसन्न हुए बूढ़े से पूछने लगे:—'फूलाजी, आजतक कितनी एक चोरियां की होंगी? फूला बोला, इनकी क्या गिनती? सैंकड़ों की होंगी। हमारा धंधा ही यह हो गया।

खेती के कारण चौमासे में बहुत नहीं जाता। महाराजने पूछा, तुम जेल में एक बार भी नहीं गये? उसने कहा—'ना'। महाराजने कहा, तुम इतनी चोरियां करते हो फिर भी ऐसा सुख भोगते हो। इसमें तुम्हारे पूर्वजन्म के सत्कर्म काम कर रहे हैं। अपने किये हुए कर्म मनुष्य को भोगने ही पड़ते हैं। फूलाजी ने आगे बात चलाई—महाराज, आजतक मैंने किसी की मां-बहन की ओर कुदृष्टि नहीं की। किसीसे विश्वासघात नहीं किया या किसीको धोखा नहीं दिया, फिर मुझ पर भगवान प्रसन्न क्यों न रहें? महाराजने कहा—तुमने चोरियां तो अनेकों की हैं न! फूला बोला हाँ, चोरियाँ तो कीं—पर इसमें मैंने पाप कौनसा किया? यह तो हमारी खेती है, जितना कष्ट उठावें उतना मिले। महाराज जरा विचार कीजिए मैं कभी जिस मुहल्ले में नहीं गया,

वहाँ जाऊँ। पेटी-पिटारा बड़ा हो वहीं पहुँचूं। जहाँ धन पड़ा हो वहीं मेरा हाथ जाय। हाथ में बिच्छू-साँप न आकर धन ही आवे इसका क्या कारण? प्रतिदिन उन पेटियों के ताले मारे जाते हों पर उस दिन ताला मारना भूल जायँ-यह भूल किसने कराई? हम जानते भी नहीं इस प्रकार लक्ष्मी हमारे हाथ में स्वयं आ जाती है-यह क्यों होता है? लक्ष्मी तो धनवानों के घरोंमें बंदी होने से आकुल हो करके पुकार करती है कि मुझे यहाँ से छुड़ाओ। छुड़ाओ। हम तो उस लक्ष्मी को लाकर मुक्त कर देते हैं। इसमें से हमारे हाथ में तो कांटे कुचलने जितनी ही रहती है। हम तो मारवाड़ी हैं। हमारे जैसे इस लक्ष्मी को छुड़ा दें तो इसमें पाप ही क्या? बिना पसीना बहाये हराम की इकट्ठी की हुई लक्ष्मी यही पाप है। महाराज ने पूछा-क्या तुम पसीना बहाकर पैदा करते हो? उसने कहा जितना लाते हैं वह सब पसीने का नहीं, पर हमें भी तो परिश्रम के अनुरूप ही लक्ष्मी हमारे हाथ में रहती है। दूसरी तो पुलिस, अधिकारी, मुखी तथा माल रखनेवाले के पास चली जाती हैं। इस लिए जितनी रहती है उतनी तो हमारे भाग्य की ही होती है। ये सब बातें सुनकर महाराज को "**नमः स्तेनेभ्यः स्तेनानां पतये नमो नमः**" यह यजुर्वेद का मंत्र स्मरण हो आया। महाराज ने सोचा कि इसके कहने में बिलकुल तथ्य नहीं था यह भी कैसे कहा जा सकता है?

इस सब लंबी बातचीत के बाद महाराजने उसे सम-

आया कि चाहे तुम कैसे ही मानो पर तुम्हारा काम अच्छा नहीं। क्योंकि यदि सब इसी प्रकार करें तो अपना समाज टिक सके ? इसलिए आज तो मैं तुम्हारे पास से बचन लेने आया हूँ कि आजसे तुम कभी चोरी न करना। आज तुम्हें किस चीज की कमी है, खाने के लिए भगवानने अन्न दे रखा है। अब यदि इन लड़कों का भविष्य सुधारना हो तो तुम चोरी छोड़ दो और इन लड़कों से भी चोरी न करने के लिए कहो।

महाराज की इतनी बात सुनने के बाद वह हाथ जोड़कर बोला कि यदि आपकी ऐसी आज्ञा है तो मैं आजसे सदा के लिए यह काम छोड़ता हूँ। ये चार लड़के भी चोरी करने नहीं जायँगे। आओ बेटा, महाराज के आगे पानी उठाकर शपथ लो। महाराज! इन लड़कों पर तो मुझे विश्वास है—ये चोरी नहीं करेंगे और दूसरी कोई बुराई भी नहीं करेंगे। ये तो बेचारे खेतमें ही उलझे रहते हैं। पर मैंने मेरे बाद अपने तीसरे लड़के देहला को पाटच्चर-पटु (चोरी में चतुर) बना दिया है। यह मेरा कहना नहीं मानेगा। इसका मुझे भय है।

महाराजने कहा, जैसे तुमने इसे चोरी में कुशल बना दिया है वैसे ही प्रयत्न करोगे तो चोरी न करने में कुशल बन जायगा।

महाराज जब इस प्रकार एक कुटुंब में नया परिवर्तन लाकर चलने लगे तो फिर घरके सब जन इनके पाओं पड़े। महाराजने प्रसन्न होकर इनसे बिदा माँगी। ऐसा ही बना कि

सारा कुटुम्ब सुधर गया। पर जिस देहले के विषयमें बापने कहा था, वह चोरी, और लूंटों के मार्ग पर चढ़ा। उसने पिताकी सीख नहीं मानी। वह पुलिस के हाथोंमें तो नहीं आता था। पर उसकी दुर्वृत्तता इतनी बढ़ गई थी कि लोगोंने ही उसे पकड़कर पुलिस के पंजेमें दे दिया। अभी वह बड़ौदे के कारावासमें पंद्रह वर्षका दंड भोग रहा है।

एक गाँवमें महाराज पाटणवाडियों के बास में सबके साथ बातों में ऐसे पड़े कि एक बज गया, पर खबर तक नहीं पड़ी। एकने कहा - अरे हो! बारह के ऊपर दो बजने लगे हैं। महाराजके खाने के लिए तो कुछ करो। जिस घरमें बैठे थे वह बहुत ही गरीब घर था। पर वह गृहपति कहीं से दाल - चावल ले आया। महाराज बरामदे में खिचड़ी बनाने लगे। इसी समय बाहर गली में से काना-फूसी होती सुनाई दी, "घी का कैसे किया?" गृहपति बोला-"मेरे यहाँ तो एक बूंद भी नहीं।" पूछनेवालेने कहा कि मेरे घर था तो सही। आज सवेरे सब बनिये को दे दिया। "भाईजी भाई के यहाँ से कटोरी में उधार ले आ न!" फिर दे दिया जायगा। इस काना-फूसीने महाराज को चक्कर में डाल दिया। महाराज भोजन करने लगे तो इनके सामने एक कटोरी में घी भी रखा गया। पर महाराजने इसमें से अंगुली लगा कर खिचड़ी पर घी का छांटा दे लिया? इस प्रकार उधार लाया हुआ महाराज से कैसे खाया जा सकता था। महाराज के भोजन कर चुकने के बाद उस भाईने पूछा—महाराज, घी क्यों नहीं लिया? महाराज बोले—घी

तो लिया था न ! वह बोला कि इसमें लिया हुआ तो दिखाई नहीं देता। महाराजने कहा अन्न पवित्र करने के लिए छींटा दे लिया और कितना लिया जाय?

ऐसी निर्धनता देखकर कितनी बार महाराज को बहुत दुःख होता था। इतनी निर्धनता में भी उनकी कुलीनता तथा अपने प्रति भाव देखकर महाराज का हृदय हर्षविभोर हो जाता। आधी रातमें भी यदि इस जाति का कोई काम आ पड़ा तो महाराज को कभी नहीं हुआ कि यह कहां से आ गया? हाजरी निकलवाते समय इन्हें सप्ताह में सौ-सवासौ मील की यात्रा करनी पड़ी। खाने के लिए खिचड़ी या टिक्कड़ मिले; पर इनका काम रुकता नहीं। इनमें ऐसे दिन भी आये जिनमें केवल वाल की कलियां खाकर ही रहना पड़ा। प्रायः ये अपनी यात्रा रात में करना अधिक पसंद करते हैं। पहले-पहले जब ये बड़ौदा जाते और रात हो जाती तो किसीको न जगाकर जेल के आगे किसी बेंच पर चाकू आसन लगाकर सो जाते। एक बार ये रात में इस प्रकार सो रहे थे। वहाँ आकर सिपाहीने इन्हें जगाया और परिचय माँगा। महाराजने कहा—परिचय तो पुलिस कमिशनर साहबकी है। वाद में तो वहुत-सी वातें उसके साथ हुई और वह महाराज का भक्त वन गया। सवेरे उठते ही पहले महाराज अपने परम स्नेही श्रीवैंकर साहबके यहाँ गये। उन्होंने पूछा कि इस समय किस प्रकार आये? महाराज बोले, रात आया था। ज़ेलके आगे पड़े बेंच पर सो गया था। रातको

नींद में से सबको कहाँ उठाऊँ? यह सुनकर उन्होंने कहा, रात के बारह बजे भी आपको ये किवाड़ खुलाने का अधिकार है। घर में से यदि कोई न उठे तो लात मारकर किवाड़ तोड़कर भी कृपा करके आप अंदर आवें। उस दिन के बाद महाराज इस स्नेही की प्रसन्नताके लिए सदा इनके यहाँ ही उतरने लगे।

पर महाराज कहते हैं, रात–बिराते पैदल चलकर मेरे जो मधुर संबंध बने हैं, लोगों के सुखदुःख देखकर एवं सहानुभूति दिखाकर मेरा जो सजीव संपर्क पुष्ट हुआ है और लोगों का अवर्णनीय प्रेम अनुभूत हुआ है; यदि मैं गाड़ी में बैठकर घूमा होता तो यह सब कभी न सध सकता।

—o—

अतर्कितबाढ़ आई

सन् १९२७ के चौमासे में "सुन्दरणा गाँवकी हाजरी निकल गई है" यह समाचार देने के लिए महाराज सुन्दरणा गये थे। रात वहाँ के पाटणवाडिया के यहाँ निकालने का विचार किया था। ग्यारस होने के कारण खाने की कुछ भाँज-गड़ नहीं थी। रात पड़ी और बरसात आरंभ हुई। ऐसी मूसलधार बरसात पड़ने लगी कि छींट के कारण जिस घरमें महाराज उतरे हुए थे उस घरके ठेठ बरामदे तक सील आ गई। महाराज घुटनों में सिर देकर बैठे थे। घरधनी और उसकी पत्नी दोनों चिंता कर रहे थे कि महाराज को आज अपने छप्पर में भीगना पड़ेगा। इतने में धड़ाम देके घरका एक कोना पड़ गया। थोड़ी देरके बाद पिछवाड़ा

पड़ गया। महाराज और घरके सब जन एक साबित कोने में सिमट कर बैठे। बरसात तो बंद ही नहीं हो रही थी। सवेरे होने पर भी बरसात चालू ही रही। घरधनी ने कहा—महाराज आपका कल का उपवास है कुछ खाने के लिए करें। महाराजने कहा-तुम्हारा तो सब कुछ पड़ गया है, जहाँ खड़े हैं इतना ही दालान बचा हुआ है, फिर तुम मेरी चिंता क्यों करते हो? ऐसी स्थिति होने पर भी वह खिचड़ी लाया और महाराजने बना कर खा ली पर बरसात तो रुकती ही नहीं। पानी बढ़ ही रहा है। पानी आँगन में से बरामदे में चढ़ने लगा। लोग इकट्ठे हुए। गाँव डूब जायगा—यह सब को भय बैठ गया। एकने कहा-यदि रेलवे का नाला तोड़ दिया जाय तो गाँव बच सके। चलो, स्टेशन मास्टर की स्वीकृति लेने चलें। महाराज बोले, अब स्वीकृति का समय नहीं। नाला तोड़ डालो। अपराध होगा तो मैं अपने सिर लूंगा। लोगोंने नाला तोड़ दिया। इसलिए पानी उतरने लगा। सारा ही पानी धर्मज की ओर बहने लगा। गाँव बच गया।

उसके बाद महाराज बरसती हुई बरसात में छातीभर पानी में चलते-चलते वटादरा पहुँचे। वटादरा की दामन में पुरसा-पुरसा पानी हो गया था। पाटणवाडियों की गली में केवल चार घर खड़े थे। यह दृश्य देखकर महाराजके दुःख का पारावार न रहा। इनकी आँखें डब-डबा आईं। फिर तो इन्होंने रस्सी की सहायता से लोगों को समीप के ऊँचे

खेतों में पहुँचनेमें सहायता की। कितनों को ग्रामसेठ के ऊँचे मकान में पहुँचाया। महराज ठंडसे थर-थरा रहे थे। रातको ये वाड़ीलाल सेठ के घर पहुँचे तो उसका घर भी अब गिरे, तब गिरे—ऐसा हो रहा था। कीसी तरह घर को टेका देकर और टिकाकर रखा था।

पास में ही गुजराती शाला का एक शिक्षक रहता था। अगले दिन इसकी स्त्री को प्रसूति हुई थी। जिस कोठड़ीमें वह स्त्री पड़ी थी उसी कोठड़ी का पिछवाड़ा गिर पड़ा। तुरंत उस स्त्रीको दूसरी कोठरी में कर दिया। थोड़ी देरमें दूसरी कोठरी का कोना गिर गया। खाट उठाकर बरामदेमें लाये। यह दृष्य देखकर महाराजने सोचा—भगवान्, क्या करना चाहते हैं? मास्टर तो घबराकर सन्न हो गया। उसे राँधना भी नहीं आता था। महाराज सारी रात रहे। उस स्त्री के लिए हलुआ बनाकर दिया और छप्पर को टेका लगाया।

तीसरे दिनका सवेरा हुआ। बरसात मंद पड़ी। दस बजे तक तो बिलकुल बंद हो गई। लोगों को बचने की आशा जमी। बरसात बन्द होते ही लोगों की टोली-की-टोलियां महाराजके दर्शनों के लिए आने लगीं। एकने कहा कि "महाराज तो भगवान् के अवतार हैं। जब ये कांधरोटा' से आ रहे थे तो नाले में हाथी-डोब पानी था। पर ये पानी पर से चलते-चलते ही आये। इनके कपड़े बिलकुल सूखे-कोरे थे। सिर की टोपी भीगी हुई थी। महाराज बोले—पागल हो गये क्या? ऐसा कभी होता है? पर यह बात ऐसी फैली कि लोग घर-

घर से निकल कर महाराजके दर्शनों के लिए आते थे। गाँव के सेठ को भी यह बात सच्ची–जँची। महाराज इसके यहाँ गये तो गली में बाँधी घोड़ी के आगे घास का एक पूला डाल आये। इसपर से सेठ कहने लगा कि महाराज, सचमुच आपमें कुछ है? महाराजने कहा–क्या है? सेठ बोला–इस घोड़ी के पासवाला बैल ऐसा है जो इसके समीप जाता है उसे सींगों पर उठा लेता है। आप तो इसके बिलकुल पास गये थे तो भी इसने कुछ नहीं किया। महाराजने सोचा कि लोग कैसी-कैसी भ्रांतियों में फँसे पड़े हैं। इन्होंने सेठ को उत्तर दिया–तुम्हारा बैल बरसात से डर गया होगा।

यह २७ की बाढ़ का महाराज का अनुभव किया पहला दृश्य था। पर बाढ़ने गाँव-गाँव में हा-हा-कार मचा रखा था। महाराज अधिक जानने के लिए बड़ौदे की ओर चल पडे। पेटलाद के स्टेशन पर इन्हें वहां के चंदुभाई सेठ मिले। उसने महाराजसे पूछा–सहायता करेंगे? महाराज बोले–क्या? सेठने कहा समुद्र में राई का दाना डालना है। इस बाढ़ संकट की लाखों की हानि में मेरी क्या गिनती? यदि आप अवलंब दें तो मुझे थोड़ी सहायता करनी है। महाराजने कहा–बड़ौदे होकर आपसे मिलूँगा।

बड़ौदा नगर तो पानी से लबालब भर गया था। कमेटी बागके आगे जो सयाजीराव महाराज का ऊँचा स्मारक घोड़ा है उसके घुटनों तक पानी पहुँच गया था। यों समझिए कि निचाईवाला गरीब मुहल्ला पानी में बिलकुल डूब गया

था। महाराज बड़ौदेमें वेलचंद बैंकर से मिले। ऐसी बरसात में महाराज उनकी खबर पूछने गये; इसकी उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अब्बास साहब के मकान में कितने-एक गरीब कुटुम्बों को सहारा मिला ही था। महाराजने गामड़ों की करुण कहानी का उनके पास वर्णन किया। उन्हें सुनकर बहुत ठेस पहुँची और उन्होंने यथाशक्ति सहायता पहुँचाने का वचन दिया। वापस होते हुए महाराज पेटलादके सेठ से मिलते गये। उसने भी अन्न आदि की सहायता देने की तैयारी दिखाई। महाराजने कहा—अब तो मैं जा रहा हूँ। सहायता की आवश्यकता पड़ेगी तो आपसे मिलूंगा अथवा चिट्ठी भेजूंगा। इतना कहकर ये फिर गामड़ों में पहुँच गये।



२९—सहायता—कार्यका आरंभ

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों बाढ़से हुई रोमांचकारी हानियों की खबर पड़ने लगी। इस समय की लोगों की हृदय-द्रावक कथाएँ सुनी नहीं जा सकती थीं। सरदार वल्लभभाई इस समय अहमदाबाद में थे। उन्हें इस प्रलयंकर कथाओं (घटनाओं) की पूरी-पूरी कल्पना हो आई थी। इसलिय उन्होंने गुजरातके कार्यकर्ताओं को तार दे-देकर बाढ़संकट वाले विभागमें पहुँच जाने की घोषणा की और अहमदाबाद के धनपतियों से इस विपत्तिकाल में मुक्त हाथ से सहायता करने का निवेदन किया।

महाराज को भी 'जल्दी बोरसद आवें' यह तार मिला।

ये वोरसद पहुँचे। दरवार साहव तथा कल्याणजीभाईने अन्य कार्यकर्ताओं को साथ लेकर सहायता-कार्य आरंभ कर दिया था। उन्होंने महाराज से कहा कि आप कांठा विभाग संभाल लें और ये दशहजार रुपये लेते जायँ। महाराज बोले—मैं सहायता कार्यमें तो साथ ही हूँ; पर ये पैसे नहीं लूंगा। इनका हिसाव किताव रखना मुझे ठीक नहीं रहेगा। पैसे की आवश्यकता पड़ेगी तो मैं जुटा लूंगा। मुझसे पेटलाद वाले चंदुभाईसेठ ने पैसे की सहायता करने के लिए कहा है। दरवार साहवने कहा यदि इस प्रकार ठीक बैठता है तो ऐसा करें;। पर पैसे के अभाव से लोगों को सहायता न पहुँच सके— ऐसा नहीं होना चाहिए।

वोरसद जाते—जाते ये झारोलाकी हाजरी भी कढ़ाते आये। मार्ग के कीचड़ में से इनके पैर में एक कीला चुभ गया था। इसकी पीड़ा हो रही थी। इस पीड़ा के कारण महाराज बैठ रहें, ऐसी स्थिति नहीं थी। ये बोरसद से वटादरे गये। वहाँ के वाडीलाल सेठसे इन्होंने कहा कि बाढ़से लोगों की अपार हानि हुई है और मुझे ऐसी सूचना मिली है। सेठ बोला, पैसे पर्याप्त मात्रा में होंगे। तभी सहायता पहुँच सकती है। आपने रूपये लाने की 'ना' क्यों कर दी। जाइए, अभी रूपये मिल सकें ले आइए, हिसाव किताव मैं रखूंगा और आप कहेंगे तो अन्य सहायता भी करूंगा। महाराज जानते थे सामान्य स्थिति

में वह सेठ ऐसे काममें पड़नेवाला नहीं था। परंतु गाँवके लोगों-का त्रास देखकर उसकी भावना भी जाग उठी थी। उसने सहायता करने का वचन दिया इससे महाराजमें अधिक उत्साह आया। सस्ते अनाजकी दूकाने चलानी हो तो एसे साथी के विना काम आगे न बढ़ सकेगा यह महाराज बराबर जानते थे। तुरंत महाराज बोरसद जाकर तीन हजार रूपिये ले आये और इन्होंने अनाज की दूकाने चालू करा दीं। सेठजी सुयोग्य व्यापारी के अनुरूप बहुत ही ध्यान पूर्वक और एक पाई के भी स्वार्थ विना कामकाज सुव्यवस्थित करने लगे। अहमदाबाद की मस्कती मारकीट के एक सेठकी ओरसे कठाणे में दूकान खोली गई। रासमें आशाभाईसे एक दूकान खुलवाई गई। पैसे भी आने लगे। पेटलाद से चंदुभाई सेठ सहायता पहुँचाते थे। बीलीमोरे से एक मित्र चंदा करके भेजते थे। कांग्रेसका फंड भी आता था। वटादरे के वाडीलाल भाई सेठ की सहायता से सब पैसे का सुयोग्य उपयोग होता था। बड़ौदरा राज्यकी ओर से भी सहायता कार्य चालू किया गया था। महाराज पैसे का किंचित् भी दुर्व्यय न हो और लोगोंको पर्याप्त सहायता मिल सके इस लिए गाँव–गाँव घूम–घूम कर साक्षात् मिलने लगे एवं तात्कालिक सहायता पहुँचाने लगे। वटादरे के ही एक दूसरे सांकलचंद श्रीमान् बुद्धिमान् एवं मितव्ययी सेठ हैं, इन्होंने भी अपने धंधेको थोड़े समय के लिए एक ओर रखकर वटादरे गाँव के गिरे हुए मकानोंको चिनाने के लिए ईंटें पथाने की एक समयोपयोगी योजना गढ़ डाली। गाँवमें 'हाँका' दिला

दिया कि जिस–जिसको ईंटें पथवानी हों वह प्रतिहजार दो रूपिये अग्रिम धन दे जाय। शेष पैसे इटें गिनने के समय देगा तो चलेगा। सांकलचंद सेठ किसी सार्वजनिक काममें नहीं पड़ते थे, वह इटोंके काम में ऐसे गहरे उतरे कि इन्होंने ११ लाख ईंटें पथवाईं। तहसीलदार के पास से लकड़ियां धर्मार्थ लीं। इस लिए ईंटों का भाव ५॥ रू. प्रतिसहस्त्र उठा। ईंटें पाथने का कण्ट्रेक्ट गाँवके पाटणवाडिया तथा कुम्हारों को दे दिया गया। इसमें से भी ये थोड़ा कमा सके। परिणामतः इस प्रवृत्तिमें से गाँव को अच्छा लाभ हुआ। दूसरे गाँव भी इसका अनुकरण करने लगे। इस प्रकार महाराजने अपने व्यक्तिगत संपर्क से वशीकृत कितने व्यक्ति को सार्वजनिक काम में सेवा करने को लगा दिया।

भादरण तालुके के तहसीलदार बड़ोदा राज्य की ओर से सहायता देने आये थे। अभी भी महाराज की सूचनानुसार तगाई देते थे। तंत्रके नियमानुसार तो तगाई थोड़ी मिले। पर महाराज तो निश्चित की गई तगाई रोकड़ दे देते और बादमें तहसीलदार के पास से प्राप्त कर लेते।

पेटलाद के सेटने B B B का सिमेंट बिना कमीशन और बिना मार्गव्ययके देना निश्चत किया था। इस लिए सिमेंट की एक बोरी २॥ रूपिये पड़ती थी। बड़ौदा राज्यकी ओरसे राज्य की रेलवे में चाहे कहीं भी घूमें ऐसा महाराज को पारण–पत्र (पास) दे दिया गया था। इस लिए ये वेग से घूम सकते थे।

वाडीलाल सेठ की दूकानों का प्रबंध तथा हिसाब बहुत

प्रशंसित हो रहा था। वह यह सारा यश महाराज के नाम चढ़ाता था। यह महाराजको खटकता था। वटादरे में सौ मकान बंधाने की योजना भी स्वीकृत हो चुकी थी। इसके लिए ३० बीघे भूमि भी अधिकृत की जा चुकी थी। पर सब लोग मूल स्थानसे हटने के लिए उद्यत नहीं हुए इससे वहाँ के वे तीस मकान ही बाँधे जा सके।

३० आपसकी फूट महाकलंक

महाराज फिरते-फिरते जलसण गाँवमें गये तो वहाँ सड़क पर कमर तक पानी चढ़ रहा था। लोग कहते थे कि स्कूल के फट्टे तक पानी पहुँच गया था। गाँव तो तालाब सा ही बन गया था। पाटणवाडियों का एक भी घर खड़ा नहीं रह सका। उन सबने कुम्हार के आवे पर जाकर शरण ली। महाराज उन सबसे मिले। प्रत्येक को दस-दस सेर चावल दिये तथा कपड़ों की व्यवस्था कर डाली। पर वे लोग रहें कहां? यही मुख्य प्रश्न था। समीप के फिणाय गाँव में तहसीलदार आये हैं यह जानकर महाराज उनसे मिलने गये जलसण की वस्तुस्थिति उनके सामने रखी। उन्होंने कहा, यदि ऐसा ही है तो गोचर भूमि में उनके छप्पर बँधा दीजिए। वह भाग कुछ ऊँचाईमें है न? महाराजने कहा, 'हाँ'! उन्होंने कहा, आप काम आरंभ करावें; बादमें मैं भूमि अर्जित (ऐक्वायर) करा दूंगा। गाँव लोगों के आंतरिक विद्वेष के कारण ही यह काम छोड़ देना पड़ा।

उसके बाद डा. चन्द्रचूड़ तथा नायब सूबा इस विभागमें यात्रा के लिए निकले। उन्हें भी महाराज जलसण में ले गये। उन्होंने पाटणवाडियों की घर-बार विना की दशा देखकर तुरंत आदेश दिया कि घर बांधने के लिए ऊँचेसे ऊँचा स्थान पसंद करें। वह भूमि जिसकी होगी उसको पैसे भर दिये जायँगे। दो बीघे का एक सुंदर खेत पसंद किया गया। इसके मूल्य स्वरूप एक हजार देना निश्चित हुआ। पाटीदारों को पाटणवाडियों के घरों के लिए ऐसी मौके की भूमि मिल रही है यह रुचा नहीं। इसलिए विवाद खड़ा हो गया। परिणाम-स्वरूप भूमि अर्जित करानी पड़ी। अंदरो-अंदर दलबंदी हो गई। इस लिए महाराज पैसे कचहरीमें भर आये। फिर भी काम झगड़े में पड़ गया। जब तक सहायता-कार्य चलता रहा तब तक इसका कुछ सुलझाव नहीं हुआ। १९२८ की बारडोली लड़त में से महाराज वापस आये। तब कहीं जाकर अति कठिनतासे यह काम ठिकाने लगा। पर मकान बँधाने के लिए अब पैसे नहीं मिल सकते थे; क्योंकि सहायता-कार्य बंद हो चुका था। महाराज पेटलाद के सेठ चंदुभाई के पास गये। सारी स्थिति उसके सामने रखी। अंतमें कहा कि चार वर्ष के लिए आप इन लोगों को दो-हजार रुपया उधार दें। सेठने कहा-यदि रुपये चाहिए तो ऐसे ही ले जाइए; उधार देना ठीक नहीं रहेगा। महाराज बोले-इसमें कुछ कठिनता नहीं आवेगी, मैं हूं न। सेठने कहा, आपकी यदि ऐसी इच्छा है तो ठीक कीजिए प्रयोग। महाराज पैसे उधार दे आये। मकान भी बँध

गये। सेठने जो आशंका की थी वह ठीक (सच) ही निकली। महाराज को वे उधार दिये हुए पैसे अभी तक वापस नहीं मिले। सेठने उनकी उगाही भी नहीं की।

महाराज के लिए यह एक ही ऐसा प्रसंग नहीं आया था। सहायता—कार्यमें दूसरे स्थानों पर भी ऐसे ही अनुभव हुए थे। भूमि विषयक झगड़े तो स्थान—स्थान पर खड़े हो जाते थे।

जोशीपुरा गांवमें एक भूमिके झगड़ेने बहुत उग्ररूप धारण किया। बाढ़के समय पाटणवाडियोंके घर पड़ गये थे। वे उन्हें फिरसे बँधाने लगे। इसलिए पाटीदारोंने उन्हें रोका और कहा यदि मूल भूमिपर दुबारा घर बांधने हैं तो प्रतिघर २॥ रूपये भाड़ा देना पड़ेगा। एवं पशुओंका गोबर भी देना पड़ेगा। महाराजको इस बात की खबर पड़ी इसलिए महाराजने लटकती तलवार का सा वादा करने की पाटणवाडियोंको ना पाड़ी और कहा कि मैं दूसरी जमीन तुम्हें खरीद दूंगा। पर पाटीदार जमीन भी क्यों खरीदने देते? एक भूमि देनेको तैयार तो हुआ, पर उसने एक बीवेका आठ हजार मांगा। महाराज नायब दिवान गोविन्दभाई साहबसे मिले। उन्होंने कहा कुछ चिंता नहीं आप भूमि पसंद करें और मैं अर्जित [एकवायर] करा दूंगा। गांवके पाटणवाडियोंने गांव पासके पुराने वणझारा कूएँके साथ की दो बीघे भूमि पसन्द की। प्रसन्नता पूर्वक तो कोई भूमि देनेको तैयार था ही नहीं। इसलिए ८०० रूपयोंमें वह भूमि अर्जित की

गई । पैसे भी कचहरीमें भर दिये गये । वह भूमि पाटणवाडियों के हाथमें नहीं जानी चाहिए, इसलिए पाटीदारोंने हठ पकड़ लिया और द्वेषका पारा यहां तक चढ़ा कि कुछ तो यह भी विचारने लगे—'इसके मूलमें वह ब्राह्मण है, उसे पूरा करना चाहिए।' पाटणवाड़िये भी पाटीदारोंसे चिढ़ गये थे। पाटीदारोंने चिटनवीस को फोड़कर एक दो पाटणवाडिया चौकीदारोंसे इस आश्रयका प्रार्थना पत्र लिखाया की हमें भूमिकी आवश्यकता नहीं। इन दिनोंमें महाराज बारडोली सत्याग्रहमें गये हुए थे। जेलमेंसे छूटने के बाद इन्होंने सरमोण से नायब सूबेके नाम भूमि विषयक एक पत्र लिखा। हुआ ऐसा कि नायब सूबेके पास महाराजका पत्र तथा पूर्वोक्ति प्रार्थना पत्र दोनों साथ ही पहुँचे। पत्रमें महाराजने चिटनवीस तथा प्रार्थना पत्रके विषयमें भी लिखा था। नायबसूबेने उस चिटनवीस तथा चौकीदारको बुलाकर धमकाया और महाराजको भी बड़ौदा मिलनेके लिये बुलवाया। महाराज उनसे मिलनेके बाद स्वयं जोशीपुरे जाकर जाँचकर आये। पाटणवा-ड़ियोंको भूमि तो चाहिये ही थी। पाटीदार उसका अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। अन्तमें सिपाही ले जाकर फौजदारने कीलियाँ ठुकवाईं पाटीदारों ने पाटणवाडियों का व्यवहार बन्द कर दिया। बाजार से उन्हें कुछ भी न मिल सके ऐसा कर डाला। नायबसूबेने सिपाही भेजकर वह व्यवहार पुनः चालू कराया।

पर ऐसे बनावोंसे महाराजको बहुत दुख होता था। अपने समाज में जाति-जातिमें कैसा वैर-विरोध है, उच्च गिनी जानेवाली

जाति ग़रीब और पिछड़ी जातिके प्रति बड़े भाईके-से व्यवहारके स्थान पर कितना भेदभाव एवं तुच्छभाव रखती है। इसका भी ठीक-ठीक भान हो जाता था। ऐसे प्रसंगोंका वर्णन करते-करते महाराज कहते हैं कि जब कुछ समय पहले प्रकृति-प्रकोप हुआ था। बाद में सब कुछ बह जानेको था तो जहाँ-तहाँसे एक ही स्वर सुनाई देता था 'हे भगवान! दया करो।' उस समय हरिजन और ब्राह्मणमें भेद नहीं रहा। मैंने अपनी सगी आँखोंसे देखा है कि नदीमें तैरते हुए कड़बी के ढेर पर मनुष्य और साँप एक दूसरेके बिलकुल पास बचनेके लिए तड़फड़ा रहे थे। उस समय कोई किसी को नहीं काटता था, कोई किसी को नहीं मारता था। विपत्तिकालिक वैराग्य श्मशान वैराग्य नहीं तो और क्या है? अपने समाजमें से चोरी-लूट या अन्तर्विरोध निकालना हो और सुख शांति फैलानी हो तो अपनेमें पड़े हुए ऐसे विषम भेदभावों को हटाना ही पड़ेगा। इन्हें निकालने का एक ही उपाय है। सद्‌ज्ञान का प्रचार और दोनों ओरसे होनेवाला प्रयत्न।

[२१] पटवारीसे पीड़ित

बाढ़ सहायता कार्य के संबंधमें महाराज आदि पचरणिया गये थे। पचरणिया जलसणसे डेढ़ कोस है। इस गांवमें गांव के चौरे (अथाई) के अतिरिक्त सभी घर भूमिसात् हो गये थे। घरकी सभी वस्तुएँ अनाज तक भीग गई थीं। कितनों को तो अब खावेंगे क्या? इसकी ही घबराहट हो रही थी। महाराज

के साथ श्री मिटठू बहन पिटिट भी गई थीं। उन्हें वहाँ का हृदयभेदक दृश्य देखकर बहुत आघात पहुँचा। उन्होंने कहा यहाँ मेरी ओरसे सस्ते अनाजकी दूकान चलाइए। जो व्यय होगा मैं दूँगी। पैसे तो मिले पर दूकान कौन चलावे? इसी गांवके एक अपङ्ग भाईकी वहाँ छोटी-सी दूकान चलती थी। उसे ही सहायता देनेका ठहराकर उसीके पाससे एक सस्ते अनाज की दूकान निकलवाई गई। अनाज मंगाकर देनेका काम महाराज करते थे। एक बार 'सायमा' के स्टेशन पर चावलोंका वैगन मँगाया गया था। भाड़ा लेकर महाराज उसे छुड़ाने जा रहे थे। रास्ते में गाड़ीमें इनके खीसेमें से ३० रुपये किसीने निकाल लिये। महाराज कहते हैं कि मैंने कभी पैसे खोये हों तो मेरे जीवन में वह पहला ही प्रसंग था। वह ऐसी असावधानता के कारण इन्हें बहुत दुःख हुआ। स्टेशन मास्टर महेमदावाद के थे, इसलिये उन्होंने वैगन छोड़ दिया और बादमें भाड़ेके पैसे महाराजने भेज दिये।

इस दूकान के चालू होनेके थोड़े दिन बाद नायब सूबा श्री नायब पल्ली साहब पचरणीया आये थे। महाराजने इनका ध्यान लोगोंकी अपार हानि की ओर खींचा और कहा, अभी सस्ते अनाजकी दूकान खोली गई है। इस पर इस गांव के लोगोंको रुपयेमें चार आने और दूसरे गांवके लोगों को रुपये में दो आने खोट खाकर अनाज देते हैं। जो बिलकुल निराधार होता है उसे मुक्ति भी दी जाती है। नायब सूबाका भी इस गाँव

की दशा देखकर विशेष सहायता करने को मन हुआ। उन्होंने महाराजसे पूछा—इस गांवके प्रायः सभी मकान गिर गये हैं यहीं सारा गांव नये सिरेसे बांधे तो आप मुझे सहायता दे सकते हैं ? दो हजार रुपये मैं दूँगा और दो हजार आप लावें एवं चार हजार सरकारकी ओरसे तगाई मिल जायगी, इस प्रकार आठ हजार में सुन्दर गांव बंध जायगा। महाराज को भी उनकी बात अच्छी लगी।

गांव बँधाने के लिए ऊँचाईवाला एक खेत भी ढूँढ़ लिया गया। मुखीने अपने अधीन सर्वश्रेष्ठ जमीन होने पर भी एक पाटणवाडिये का खेत ही गांव स्थापन के लिए बताया। नायब सुबा सब टांक कर चलने की तैयारी कर रहे थे। उन्होंने एक नई ही बात कही, महाराज की ओर मुड़कर वे बोले, रवि शंकर महाराज, आप इन गरीब लोगों के लिए तन तोड़कर दौड़ा दौड़ी कर रहे हैं। पर ये (पटवारी की ओर अंगुली करके) हमारे नौकर ही उन्हें लूट खाते हैं। मुझे विदित हुआ है कि इस पटवारी ने दूसरी तगाई देनेके समय लोगोंसे घूस ली है। मैं पूरी जांच किए विना इसे कुछ करूँ तो अन्याय होना संभव है। आप इसकी सच्ची जांच करके मुझे दे सकेंगे। दुपहरे के बाद हम दोनों मिलेंगे।

महाराज ने जांच की और इन्हें विदित हुआ कि घूसकी बात सत्य है दुपहरे नायब सूबेने गांव के लोगों से मकान बांधने विषयक योजना कह सुनाई। सब खुश हो गये। बादमें धीरे से उन्होंने बात रखी कि मैं तुमसे एकबात पूछूँ, तुम सच कहोगे ?

एकजन—होवे, झूठ क्यों बोलें।

साहब—तुम इस महाराजके सामने झूठ बोलोगे ?

एकजन—ना, साहब।

साहब—सरकारने तुम्हें तगाई दी है ?

एकजन—हाँ, साहब ! यह कैसे मुकर सकते हैं ?

साहब—तगाई दी यह अच्छा हुआ ?

एकजन—बहुत अच्छा हुआ साहब। तगाई न मिलती तो हम क्या करते ?

साहब—ठीक, अब दूसरा प्रश्न, तुम्हारी तगाईमें से घूस किसने खाई ?

एकजन—साहब, घूस देनेकी तो आपने ना कही थी, वह कैसे दे सकते हैं ?

दूसरे दो—चार हां—में—हां मिलाकर साहब ! घूस कैसे दे सकते हैं।

नायब सूबेने महाराजकी ओर दृष्टि डाली। महाराजने सोचा, इन लोगों और पटवारी के बीचमें सूबा साहबने यह क्या पारायण खोला। महाराजने लोगोंकी ओर मुड़कर कहा—तुम्हें झूठ बोलनेकी क्या आवश्यकता है ? पैसे दिये हैं तो कह दो।

एक व्यक्तिसे न रहा गया। वह साफा कमर पर लपेटते—लपेटते बोल उठा—साहब, मार डालना हो तो मार डालो। पर झूठ नहीं बोला जाता। हमने घूस दी है यह मुकर नहीं सकते।

साहब—कितनी दी है?

वह व्यक्ति—साहब ? बीसवालेने एक,दसवालेने अठन्नी और पाँचवाले ने चवन्नी ।

साहब—किस-किसने दी है ?

वह व्यक्ति—सबने, कोई भी नहीं बाक़ी ।

दूसरा व्यक्ति—(बचाव करनेके ढबसे)

हाँ, साहब ? पैसे तो दिये थे । हम पटवारीके घर गये हों, वह हमें खानेके लिए बनवा दे तो फिर उसके बच्चेके हाथ पर अठन्नी-चवन्नी रखनी ही चाहिए न साहब ?

वह व्यक्ति—ऐसा क्यों बोलते हो? हमने कब उसके घर खाया ? मुसलमान के घर की खिचड़ी क्या खा लेंगे ?

दूसरा व्यक्ति निरुत्तर हो गया। वह व्यक्ति—साहब ! मकान बांधने के लिए जब अधिक तगाई मिलेगी तब पटवारी का गिरा हुआ घर बंधाने का निश्चय हुआ है। नायब सुबा और महराज की तो यह सुनकर आंखें ही खुल गई । पटवारी और मुखी के मुख पर इन सबके लिए रोष था । सबके बिखर लेने के बाद महाराज ने साहब से कहा—यह बात इस प्रकार सबके सामने न छेड़नी चाहिए थी ।

साहब—तो क्या मैं इन सबको घूस खाने दूं? उसे दंड दूँगा हो। साहब तो दिन में ही चले गये और महाराज गांव में ही रुक गये ।

गाँवके मुखी और पटवारी परस्पर ससुर और जमाई थे। दोनों ही मुसलमान थे। साहब जाते-जाते इन दोनोंको और घूस देनेवालोंमें से चार जनोंको पेटलाद आनेका आदेश देते गये। मुखी और पटवारी महाराजके विरुद्ध गाँवमें वातावरण तैयार करने लगे। सस्ते अनाजकी दूकानका अनाज ढोनेके लिए गया हुआ गाड़िवाला मुसलमान जब आया। उसने भी यह सब सुना। वह भी बल खा गया। पहले से ही जो बात स्थिर की गई थी उससे अधिक भाड़ा माँगने लगा। उचित माँगनी करनी चाहिए यह कहने पर गरमागरम चर्चा छिड़ गई। और वातावरण तंग (दूषित) बन गया। मुसलमानोंने दूकान पर आना ही बंद कर दिया।

दूसरे दिन महाराज सवेरे उठकर दूसरे गाँव जा ही रहे थे। इतनेमें पाटणवाडिया रोता-रोता महाराजके पास आया और कहने लगा-मैं किसीको मार डालूँगा। महाराजने पूछा, वह है क्या? वह बोला, अपनी जमीन पर एक भी मकान नहीं बाँधने दूँगा। मुझ गरीब की जमीन ही तो छीनने के लिए साहबको दिखाई है। मैं मर जाऊँगा, पर खूँडभर भी नहीं दूँगा। मेरे बच्चों को भूखे मारना है? मेरा नया बनाया कूआं खोसना है। महाराजने कहा-बदले में तुझे पैसे मिलेंगे न? वह किसान बोला-पैसोंको मैं क्या करूं? मेरे बच्चे क्या पैसोंको चाटेंगे? मुझे तो अपनी जमीन किसीको नहीं देनी। यह सब जानने के बाद महाराज को दुःख हुआ। ये नायब सुबसे मिले।

उनके सामने सब वास्तविकता रखी। साहबने कहा, आप घब-राइए नहीं, सब ठीक हो जायगा। उन्होंने उस पाटणवाडिये को गाँव पासकी बढ़िया जमीन दिला दी इससे वह तो संतुष्ट हो गया।

नायब सूबे के आदेशानुसार पटवारी आदि साहबसे मिलने के लिए जब पेटलाद गये तब अपने उत्तरमें पटवारीने लिखाया कि साहब! अहेमदाबादमें हिन्दू—मुसलिमका झगड़ा चल रहा है और यहां भी ऐसा ही झगड़ा उठे इसलिए रविशंकर महा-राज हमारे गाँव आते हैं। और लोगोंको भड़काते हैं। आप जाँच करिएगा तो पता चलेगा। ये आर्यसमाजी हैं और आर्यसमाजीका काम ही हिन्दू—मुसलमानों का झगड़ा कराना है। इस प्रकार इसने मूल प्रश्नमें से निकलने के लिए नया ही रास्ता खड़ा किया।

नायब सूबे के मनपर इस बातका प्रभाव बिलकुल न पड़ा हो ऐसा तो नहीं कह सकते। क्योंकि उसी समय में उन्होंने श्री मोतीभाई अमीन से महाराज के विषय में कई—एक प्रश्न पूछे थे। उनमें महाराज आर्यसमाजी हैं या नहीं? हिन्दू—मुस-लमानोंमें उपद्रव कराते हैं या नहीं? ये भी थे। श्री मोतीभाई साहबने उन्हें उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानता वे आर्यसमाजी हैं या नहीं। पर इतना तो छाती ठोक कर कह सकता हूँ—वे हिन्दू मुसलमानों से झगड़ा कभी नहीं कराते हैं, यदि कहीं हो रहा हो तो रोक अवश्य देते हैं।

यह बात जानने के बाद महाराजका नायब सूबेसे मिलना हुआ तो इन्होंने बात चीत में कह सुनाया कि अपका विभाग भी बहुत विचित्र है। जब घूसका निर्णय करना था तो आपने मुझे हाथमें ले लिया और मुझ पर पूर्ण विश्वास दिखाया जब मेरे छिद्र निकालने हैं तो दूसरे तीसरे से पूछते फिरते हैं। इससे अच्छा होता यह बात मुझसे ही पूछी होती और मैं आपसे कह देता। ऐसा कहकर महाराजने हिन्दू-मुस्लिम विषयक अपने विचार प्रगट किये।

नायब सूबा बोला—मैं जानता हूँ कि आपके विषयमें किसी प्रकारकी शकके लिए स्थान नहीं; तो भी एक अधिकारी के रूपमें सभी बातें चारों दिशाओंसे जांचनी चाहिए। आपको बुरा लगा हो तो लज्जित होता हूँ। महाराजने कहा, लज्जित होनेकी कुछ आवश्यकता नहीं।

थोडे दिनों के बाद उन्होंने पटवारीको घर बैठा दिया। पदच्युत कर दिया। पटवारी के भड़कानेसे वहां के मुसलमानोंने बारैया और पाटणवाडियोंको हाथमें लेने का बहुत प्रयत्न किया। पर इनकी दाल गली नहीं। सूबा साहबने उसे पदच्युत करने के बाद सारे पेटलाद तालुके में आदेश निकाला कि तगाई बाँटने में कोई पटवारी या दूसरा अधिकारी घूस खावेगा तो उसे पदच्युत कर दिया जायगा। इस उदाहरण और आदेश का भी अच्छा प्रभाव पड़ा।

३२—नर्मदा में डूब मरेंगे

बाढ़—संकट का काम अभी पूरा भी नहीं हो पाया था कि इतने में तो बारडोली का सत्याग्रह आ गया और सरदार की घोषणा निकली। पचरणिये को आदर्श गांव बनाने की नायब सूबा साहब की योजना अधूरी ही पड़ी रह गई। परंतु बाढ़—संकट में सरदार साहब के प्रोत्साहन से कार्यकर्ताओं ने ऐसा काम करके दिखाया कि जनता को भान हुआ—हमपर विपत्ति आ पडे तो हमें भी कोई देखनेवाले बैठे हैं। महाराज ने तो अपनी विशिष्ट शैलीमें कितने कितने काम किए हैं उनकी गिनती करनी ही कठिन है। कांठा विभाग की जनता को बोध हो गया कि हमारी बांह पकड़ने वाले महाराज आए इसीलिए हमारा उद्धार हो गया।

जब जानेका अवसर आया तो नायब सूबेने कहा कि आप जांय नहीं। महाराज बोले, सरदार साहब का आह्वान हुआ है इस लिए जाना ही पड़ेगा। सूबा साहबने विनोद में कहा—आप जाँयँगे तो मैं आप पर अपराध सिद्ध करके आपको पकड़ा दूँगा और यहां सहायता कार्य कराऊँगा। महारज बोले, ऐसा करना हो तो सत्ता आपके हाथ में है। पर इस वार्तालाप के थोड़े दिन बाद ही महाराज बारडोली पहुँच गये।

गुजरात के गाँवों में कर की आँकनी नये सिरे से होनी थी इसका आरंभ बारडोलीसे किया गया। पुनर्जाँच अधिकारी ने ताल्लुके

को जाँच करके ऐसा विवरण दिया कि चालू कर में पचीस टका बढ़ती की जाय। इस बढ़ती के कारण इतने टुट पूँजिया (लूले-लँगडे) और कृत्रिम थे कि जनता में इस बढ़ती से बहुत असंतोष फैल गया और इसके विरोध में एक प्रकार का आंदोलन आरंभ हुआ। आरंभ में लोगोंने धारा सभा के सभ्यों द्वारा निवेदन किया और सभाएँ भरीं पर इससे सरकार के कानों जू तक नहीं रेंगी। इसी लिए लोग सरदार साहबके पास पहुँचे। सरदाने कहा कि इसमें लड़ना पड़ेगा। तुम्हारी तैयारी हो तो मुझे बुलाना। लोगोंने विचार करके सरदारकी सरदारी स्वीकारी सरदार साहब सरदारी लेनेसे पहले बारडोली जाकर १।२। १९२८ को लोगोंका कसकर देख आये थे। जब सब इकट्ठे हुए तो उन्होंने पहला ही प्रश्न रखा—संपत्ति खोने के लिए कौन कौन तैयार हैं? लोगोंने उत्सुकता दिखाई। वे आगवानी लेनेके लिये सहमत हो गये और उन्होंने गांधीजीका आशीर्वाद भी ले लिया।

फरवरी की १२ वीं तारीख को उन्होंने बारडोलीमें एक सार्वजनिक सभा भरी। इसमें बारडोलीके करवृद्धि विषयमें एक सभा भरी। जनता का अभियोग प्रस्तुत किया और यह उचित है या नहीं—इसका निर्णय करने के लिए एक निष्पक्ष जांच समिति की मांग प्रगट की। इस सभा के आरंभ में श्री महादेव भाईने "शूर-संग्राम को देख भागे नहीं" यह गीत गाया था। धारा सभा के सभ्य भी इस समय उपस्थित थे। उन्हों ने इस सभा में इस आशय के भाषण किये कि हमने न्याय प्राप्त करने के लिए आज

तक विधिपूर्वक प्रार्थना पत्र आदि दिये , पर अब हम यह अभियोग लड़ाकुओं के हाथ में देना उचित मानते हैं।

इस सभा के बाद सरदार साहब ने बंबई सरकार को इस विषय में एक लंबा पत्र लिखा और इसमें भी उस जांच-समिति की मांग की गई थी। पर सरकारने इस पत्र का उत्तर बहुत असभ्य दिया।

इसके बाद सरदारने गुजरात के चुने हुए कार्यकर्ताओं को बारडोली बुलाया और तालुकों का विभाग करके योग्यता पूर्वक छावनियाँ डालीं। महाराज के भाग में सरभोण विभाग आया था। ये पूर्णा और भी ढोला नदी के मध्यवर्ती अठारह गांवो में घूमा करते थे और सरभोण आश्रम में रहते थे। सांझ सवेरे ये आस पास के गांवों में फिरते। लोगों को बोरसद सत्याग्रह के अनुभवों की तथा बीस-इक्कीस के सत्याग्रह की बातें सुनाते। यह सुन-सुन कर लोग खुश खुश हो जाते। वहांके लोग महाराज को रविशंकर कहकर बुलाते। थोड़े ही समय में रविशंकर का गाँव लोगों के साथ ऐसा घनिष्ठ संबंध हुआ की लोग इन्हें अपने यहाँ जीमने का आमंत्रण देने लगे पर महाराज तो सरभोण आश्रम में स्व० डा० त्रिभुवनदास अपने व्ययसे औषधालय चलाते थे, उनके कुटुम्बके साथ ही रहते और जीमते थे।

एक समय प्रो० नायक के ससुर श्री भूलाभाई पटवारी ने कटाक्षमें कहा कि आप बारडोली के लोगों का लड़ाने के

लिए आये हैं। पर इसमें आपका क्या जाता है। हानि होगी तो बारडोली के लोगों की होगी आपको तो क्या 'नंगी नहावेगी और क्या निचोडेगी' वाली बात है।

यह सुनकर क्षणभर तो महाराज स्तब्ध रह गये। बादमें इन्होंने ऐसा गरमागरम उत्तर दिया कि खेडे जिलेके मनुष्य नाकवाले होते हैं, हम समझते थे, या तो हम यहां से काम पूरा करके जायँगे या बीचमें आनेवाली नर्मदा नदीमें डूब मरेंगे।पर नकटे होकर वापस नहीं जायँगे। परिहासमें कही हुई बत का ऐसा गम्भीर उत्तर मिलेगा—इसकी मूलाभाई को कल्पना भी नहीं थी। पर इस प्रसंगसे आए हुओं के मनमें बारडोली की लड़ाई कितने महत्वकी है—इसका पूरा पूरा परिचय हो गया।

३३—लोग घरोंमें ही बंदी बन गये

सरदार साहब ने बारडोली सत्याग्रह के समय आदेश निकाला था कि मेरे अतिरिक्त कोई स्वयंसेवक या कार्यकर्ता प्रगट भाषण न करे और दी जानेवाली सूचनाओं का पूर्णतया पालन किया जाय। सत्याग्रह—पत्रिका' द्वारा गांव गांव घूम—घूम कर सरदार जी भाषण करते थे। जिससे गांवों की भाई-बहनें लड़ाई के लिए सूसज्जित होती जा रही थीं। सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रतिज्ञा पत्रों पर नये नये हस्ताक्षर आने लगे थे। सरकारी अधिकारी भी चौथाई देने की सूचना देते जाते और जप्ती तथा खालसा करने की धमकियां भी देते जाते थे पर सरदारजी ने गांव

गांव और जाति जाति के पंचों द्वारा सत्याग्रह में भाग लेनेके लिए प्रस्ताव करा दिये थे। जैसे सरकार का दमन बढ़ता जाता था वैसे-वैसे जनता में नया रंग जमता जा रहा था।

महाराज ने अपने विभाग में बाहर के बहुत ही थोड़े स्यंसेवक रखे थे। पर स्थानिक भइयों का साथ इन्हें प्रचुरमात्रा में मिलता था। सप्ताह में एक बार सरदार साहब इनके विभाग में हो हीं आते थे। महाराज कहते हैं कि उस समय उनसे एक ही दिन में तेरह-तेरह भाषण करने का मुझे स्मरण है। ऐसे सतत ध्यान से लोगों में बहुत अच्छी जागृति आने लगी।

प्रजा में अधिक जागृति आती देखकर सरकारने भी उग्र रूप धारण करना आरंभ किया। लोगों को डरानेके लिए सरकार ने पठाण रखे और जप्तियो पूरे वेग से आरंभ कर दीं। सरदारजी का आदेश था कि जप्ती अधिकारी के आने से पहले ही घर के किवाड़ वंद कर देना चाहिए। बंद घरों की जप्ती नहीं हो सकती। कितनी वार तो दो-दो दिन तक सिपाही और जप्ती अधिकारी घरों के चारों ओर घेरा डाले रखते थे। इस प्रकार लोग और उनके पशु घरों में ही बंदी बन जाते थे। अधिकारी लोग थक कर जप्ती उठा लेते। पर लोग एकसे दो नहीं होते थे। पठाणों की गंदी भाषा या असभ्य व्यवहार लोगों को अच्छा नहीं लगता था। पर ये अपनी पकड़ी हुई टेक के लिए " कुतर भुकन चाको भुकवा दे " मान कर अपने निश्चय पर अचल रहते थे।

महाराजके विभागमें जप्तियों का आरंभ सबके बादमें हुआ इस प्रकार का पहला दौरा 'अंचेली गांव पर हुआ। अंचेली बहुत छोटा गांव है। इसमें सात आठ घरोंकी ही बस्ती है। वहांके लोग कुछ ढीले थे। यही देखकर अधिकारियोंने वहींसे श्री गणेश किया। पठानोंने आकर भैंसे खोलीं। रस्सा खुला कि तुरत एक भैंस कूद उठी। उसे देखकर दूसरी भैंसे भी भड़क उठीं। पठान रस्सों को पकडे, पकडे, भैंसोंके साथ ही खिंचे चले जा रहे थे। कई एक नीचे गिरकर घिसटने लगे। पर भैंसें हाथ में नहीं रहीं। सभी भैंसें महुआ की ओर गायकवाड में भाग गई।

गांवमें कोई भी छोटा मोटा बनाव बना कि सरदार साहब वहां आये ही समझिए। वे अपनी विनोदी भाषा से गांवके लोगोंको हँसाते, बातें कराते और अंगीकृत निश्चय में अधिक दृढ़ बनाते थे। अधिकारियोंने देखा कि जनता जराभी टससे मस नहीं होती। इस लिए वे जप्ती के नियमोंका उल्लंघन करने लगे। रात–बिराते जप्तियां करने लगे। बाडें फांदकर और किवाड़ तोड़कर जप्तियां करने लगे। ऐसे सब प्रसगों पर लोगोंको योग्य दिग्दर्शन कराया जाता था।

धीरे धीरे बारडोलीका प्रश्न अधिक व्यापक स्वरूप पकड़ता जा रहा था। अन्य प्रान्तके लोग भी बारडोलीके वीर किसानोंको देखने के लिए बारडोली के गांवोंमें आने लगे। पर सहकार की मनोवृत्ति किंचित् भी ढीली नहीं होती थी। वह अधिकारियोंके

दिये निर्णय को ब्रह्मवाक्य या वेदवाक्य मानती थी। जांच समिति नियुक्त की जाय' जनता की इस मांगको टुकराती जाती थी। दिनों दिन वह नग्नरूपमें प्रगट होती जा रही थी। बारडोलीके किसान सरकारके भीषण स्वरूपके विरोधमें भी टिके रहे--यह देखकर लोग इनकी वीरता पर निछावर होते थे।

३४ महाराज पकड़े गये

ज्यों ज्यों सरकार का स्वरूप उग्र बनता जा रहा था त्यों त्यों प्रजा पक्षमें संगठन और सरकार साथका असहकार भी बढता जा रहा था। सरकारी काम पर जानेवाले अधिकारी को जब वाहन मिलना भी कठिन हो गया था तो फिर दूसरे सहकार की तो बात ही कहाँ रही। गांव गांव की जातियां और मंडल इस विषय में प्रस्ताव करते थे।

एक दिन महराज सरभोण आश्रम में बैठे बैठे चर्खा कात रहे थे। इतने में एक नवयुवकने आकर समाचार दिया कि बारडोली की छावनी में अभी कोई नहीं, सब गांवोंकी सभाओंमें गये हुए हैं सरकारी अधकिारी हमारी मोटर वेगार पर मांगते हैं और हमारे पंचने "सरकारी अधिकारियों की सहायता न करना ऐसा प्रस्ताव किया है, अब हमें क्या करना चहिये? डी-डी-सी अलमौला का सामान वालोड ले जाना है। इसके लिये मोटर माँगी है। यदि आप साथ चलें तो मुझे नकार कहने में सुविधा रहे। महाराजने कहा-- चलो, मैं साथ चलता हूँ--यह कहकर महाराज उसके साथ स्टेशन

पर पहुँचें। स्टेशन पर फौजदार खड़ा था। उसने मोटर वाले को बुलाया और सामान भरने का आदेश दिया। मोटरवालेने कहा कि मेरी मोटर में तो रविशंकर बैठे हैं आज उन्हें मैंने मोटर भाड़े पर देदी है; इसलिए आज तो कुछ नहीं हो सकेगा। फौजदार समझ गया कि यह इसका बहाना है। इसलिए फौजदारने उसका समनुज्ञा-पत्र(लायसन्स) खोस लिया। इस प्रकार मोटर खड़ खड़ानी पड़ी। इससे मोटर चालक को कुछ भी आकुलता नहीं हुई। उसने महाराज के पास आकर हँसते–हँसते कहा–चलो, हानि होती हो तो भले हो। जबतक लड़त चलेगी तबतक मोटर नहीं चलाऊँगा।

दूसरे दिन एक पारसी गृहस्थ की मोटर तथा उसके बिहारी मोटर चालक का समनुज्ञ पत्र (लायसन्स) भी इसी कारण छीन लिया गया। वह चालक भी इतने ही उत्साह में था।

इस प्रकार डी–डी–सी का सामान तीन दिन तक पड़ा रहा। अंतमें सिपाही चार गाड़ेवालों को वेगार पर पकड़ लाये इसी समय बारडोली के वनियों का 'महाजन वेगार' न करने का प्रस्ताव करना था। इसलिए महाराज वहीं थे। गाड़ेवाले को वेगार पर पकड़ लिया है यह बात जब महाराज के पास पहुँची तुरंत ये कचहरी की ओर चले। गाडे कचहरी के दरवाजे पर ही खुले खडे कर रखे थे। उनमें सामान भी भरा हुआ था। महाराज ने गाडेवालों के साथ बात–चीत की, देखा और जाना कि गाडेवाले की वेगार पर आने की बिलकुल इच्छा नहीं। इन्होंने

फौजदारसे गाडेवालों को वेगार में से मुक्त करने को कहा। पर वह क्यों सुनता ? इसलिये महाराज तो गाडेका जुआ उठाकर गाड़ा उलालने लगे। यह देखकर फौजदार बोला कि यदि गाड़ा खाली करना हो तो यहाँ नहीं कचहरी के चौगान में खाली करें। फिर भले गाडेवाले चले जायँ। इस प्रकार कहने में फौजदार का उद्देश गृहप्रवेश–धारा लगाने का था। पर यह धाँधली देखकर तहसील–दार मि० लाखियाने महाराज को कचहरी में वुलाया और सम–झाया कि आप व्यर्थ उपद्रव किस लिये करते हैं ? महाराज ने कहा इसमें उपद्रव का प्रश्न हीं कहां है ? ये गामडेवाले वेगार पर पकड़े गए हैं। वस, इन्हें छोड़ दीजिए। इतने में वहां जुगतरामभाई पंड्याजी आदि भी आ पहुँचे। महाराज अब कोई दूसरी-तीसरी बात न करके गाडेवाले के बैल खोलकर चलते बने। वादमें सिपाहियों ने दूसरे के वैल लाकर सामान से भरे गाडों को भेजा और महाराज को पकड़ने का निर्णय किया।

महाराज तो वहां का काम निपटा और झट अपने अड्डे पर (सरमोण) पहुँच गये। ये बैठे बैठे कात रहे थे, इतने में सिपाहियों से भरी एक मोटर आई। महाराज समझ गये कि यह मोटर मुझे पकड़ने आई है। पर इन्हें कुछ तैंयारी नहीं करनी थी। इतने में लोग भी इकटठे हो गये एक अनाविल मित्र को पुलिस पर बहुत गुस्सा आया और वह बोला कि देखता हूँ कौन रविशंकर को पकड़ता है ? महाराज ने उसे शांत किया और आप पुलिस की मोटर में बैठ कर वारडोली चले गये।

सरदार साहब बारडोली से बीस मील दूर सभा में गये हुए थे महाराज के पकड़े जानेका संदेश उन्हें वहीं मिला। वहां भाषण में उन्होंने इस बात का उल्लेख भी किया। रात को वे बारडोली आये महाराज तो बारडोली लोकअप में सोकर थकान दूर कर रहे थे इतने में स्वामी आनन्द इनसे मिलने के लिए आये। और कुछ चाहिए इसकी पूछ-ताछ की। महाराजने कहा—मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। तीसरे दिन महाराज अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किये गये।

अधिकारी—आपको जो तिथि दे दी जायगी उस दिन स्वयं कचहरी में उपस्थित होंगे?

महाराज—इसमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं।

अधिकारीने तिथि देकर इन्हें छोड़ दिया। सरदार साहब को इस प्रकार छूट जाना अच्छा नहीं लगा। पर उन्होंने कहा कि इस सप्ताह भरमें जितना आप गाँवों में घूम सकते हैं- उतना घूम डालें।

श्रीरामनारायण पाठक और महाराज छह दिनों में अपने परिचित सभी गाँवों में फिर गये। ये जहाँ-जहाँ गये वहीं-वहीं लोगों में नया उत्साह आया। लोगों ने इनका उमंगभरा स्वागत किया और क्या होनेवाला है इसकी लोग बाट जोहने लगे।

सप्ताह पूरा हो गया। महाराज कच-हरी में उपस्थित हुए। इन्हें कचहरी में बाँचने के लिए सरदार साहबने एक सारगर्भित निवेदन लिखकर दे दिया था। स्वामी आनन्द अहमदाबाद से

पूज्य महात्माजी का पत्र भी लेते आये थे। वह पत्र बाँचकर महाराज का दिल उस दिव्य पुरुष के आगे परोक्षता में भी झुक गया। जब अभियोग आरंभ हुआ तो सरदार साहब भी कचहरी में उपस्थित रहे थे। सिपाहियों के पास पुष्ट प्रमाण भी नहीं थे। एक ने कहा—सब सफेद टोपी पहनते हैं इसलिए पहचाने नहीं जाते। गाडेवाले से पूछा कि तुमसे गाड़ा ले जाने के लिए किसाने कहा था? गाड़ेवाले ने सरदार साहब की ओर अंगुली की। इसलिए सारी कचहरी खिड़खिड़ा कर हँस पड़ी। सरदार ने भी हँसते हँसते टकोर की—हाँ, हाँ मुझे ही पकड़ कर ले जाओ। न्याय का यह नाटक पूरा हुआ। सरकारी वकीलने कहा कि आरोपी को कठोर दंड होना चाहिए। यह सुनकर सरदार साहब बोले—आपने सुना नहीं? इस व्यक्तिने तो अपने निवेदन में ही अधिक दंडकी माँग की है। महाराज को साढ़े पाँच मास की कारावास दिया गया।

जिस दिन महाराज को सूरत ले जा रहे थे उसी दिन उत्तर विभाग के कमिशनर बारडोली उतरने वाले थे। स्टेशन पर सरदार साहब और लोग—समुदाय महाराज को विदा देने आये थे। सरदार से अलग होते समय महाराज को दुःख हो रहा था। महाराज सुनाते हैं कि "उस समय मेरी अँखों में से आँसू टपकने ही वाले थे; इसलिए मैंने दृष्टि आड़ी करके मन को वशमें किया। सरदार साहब के मन की स्थिति भी ऐसी ही थी। क्योंकि मुझे सौंपा गया विभाग अब किसी दूसरे को सौंपना पड़ेगा। पर वे

तो सरदार थे। ऐसी प्रत्येक कठिनता पर स्वमित्व जमा लेते थे।" सचमुच सरदार साहबने तो इस धर पकड़ के प्रसंग में से भी प्रजाजाग्रति का प्रवाह उलट पड़े, ऐसा प्रचारकार्य आरंभ कर दिया महाराज के स्थान पर उन्होंने डा० सुमंत मेहता और शारदा बहन को नियुक्त किया। सरदार साहब के पास इस स्थान की पूर्ति के लिए दूसरे अनेकों नाम आगये थे। पर उनकी इच्छा ऐसी थी जहाँ तक हो सके बहार से कम-से-कम व्यक्ति बुलाये जायँ।

३५—देखना, कहीं माफी न माँग न बैठना

सूरत की सब-जेल में से महाराज को साबरमती भेज दिया। वहाँ इन्हें मित्ररूप में भाई चिनाई मिल गये थे। आरम्भ में दोनों को साबरमती जेल की क्वारंटाइन में रखा गया। रुदेल गाँव का एक ब्राह्मण क्रिमिनल अपराध में पकड़ा जाकर जेलमें आया था। वह वहाँ की बीशी (रसोई) में से प्रति दिन सवेरे ही इन दोनों को ज्वार-बाजरी के दो-दो टिक्कड़ और दाल या साग दे जाता। इसके पाससे बोरसद के शंकर बारैया ने बात जान ली कि महाराज जेल में आये हैं। यह वाडर बना हुआ था। इसलिए इसे प्रतिदिन गेहूं की रोटियां मिलतीं। इसने उस ब्राह्मण के हाथ महाराज के लिए अपनी गेहूं की रोटियां भेजीं। पर महाराज ने ये वापस कर दीं और समझाया कि

जो हमें मिलती हैं यही ठीक हैं। थोडे दिनों में इन दोनों को क्वारंटा इनमेंसे बिलकुल अलग फांसी कोठड़ीमें भेजा गया। उसी रात वहां से थोड़ी दूर दस कोठरी में पहुँचा दिया गया। महाराजने सोचा –"यह जेल भी एक धर्मशाला जैसी ही है ; यहां भी थोडे थोडे समय पर स्थान बदलते रहते हैं।"

दस कोठड़ी में 'वडेली' का एक गरासिया बंदी था। वह महाराज को देखकर बोला "महाराज, आप यहां कैसे ?" महाराजने कहा –"हम भी आ पडे "; यह कहकर इन्होंने बारडोली–सत्याग्रह की बातें कह सुनाई। महाराज वहां के सब बंदियों को अधिक बातें सुना सकें, इसके पहले तो वहांसे सब बंदियों को बडे 'चक्कर' में ले गये। अकेले महराज को दसकोठड़ीमें रखा गया। दूसरे दिन सवेरे सुपरिण्टैण्डैण्ट मि० लाफा रौंद पर आये। महाराजने उसके पास अपना चश्मा मँगा देने की माँग की। उसने जेलर को नोंट करने के लिए सूचित किया। टप–टप करता हुआ वह जलूस–सा सारा टोला बाहर चला गया। थोड़ी देरके बाद बालंद (नाई) आया उसने उस्तरे से महाराज का सिर सफा चट बना डाला। नाई चोटी काटने के लिए भी कहता था। महाराजने चोटी काटने की ना कहकर चोटी मुट्ठी में पकड़ रखी। उस नाई बंदीने चोटी की जड़ में उस्तरा फेरकर चोटी अलग कर दी। बालोंका गुच्छा महाराज की मुट्ठी में ही रह गया। महाराज सुनाते हैं कि इससे मुझे बहुत दुःख हुआ, चोटी के बाल फेंक देना भी मुझे अच्छा नहीं लग रहा था।

आठ दिन के बाद महाराज की मुखाकृति बनी। इनका काम निश्चत हुआ। महाराजको चक्की दी गई। छोटे चक्कर नंबर २ में इन्हें रखा गया। इसी बोर्ड में झांसीवाले परमानंद सुच्चासिंह आदि थे। परमानन्द कोठड़ी में बंद था। पर कोई राजकीय बंदी आया है—इसका पता उसे चल गया था। सोलह वर्ष की अवस्था थी जब वह षड्यंत्र के अभियाग में पकड़ा गया था। पच्चीस वर्ष का कारावास हुआ था। १८—२० वर्ष तो उसने जेल की कोठड़ियों में ही निकाले थे उसका शरीर सूख गया था, पर मुख मुरझाया हुआ नहीं था। महाराज सुनाते हैं "जब मेरी उसके साथ पहली भेंट हुई तो उसने हँसते हँसते नमस्कार किया। इतने वर्षों के कारावास के बाद भी उसका उत्साह, आवेश और हास्य देखकर अच्छों अच्छों को भी प्रेरणा मिलती थी। सामन्य बंदियों के साथ उसका संबंध इतना अच्छा था कि प्रत्येक बंदी उसे आदर की दृष्टि से ही देखता था। उसके त्याग, भावना और चारित्र्य पर मैं प्रसन्न हो गया था।"

महाराज को इनकी कोठड़ी में १९ सेर अनाज पीसने के लिये दिया जाता था। पूरे पाँच सप्ताहों तक यही क्रम चला। भाई चिनाई का शरीर कोमल था तो भी उन्हें भी इतना ही पीसने को दिया जाता था। दोनों की कोठड़ियाँ एक बैरक के दोनों छोरों पर अलग—अलग रखी गई थीं। एक ही वाडर और एक ही लाइन में रहने पर भी इन्हें परस्पर मिलने नहीं दिया जाता। महाराज का वाडर 'पामोल' का एक पाटण वाड़िया था। पर वह सिपाहियों से बहुत डरा करता था। इसलिए वह इन दोनों को मिलने नहीं देता

था फिर भी अन्य प्रकार से वह अपनी भावना प्रगट किया करता था। एक समय ११ औंस की रोटियां मिलती थीं। पर १९ सेर पीसने वाले को ये पर्याप्त नहीं थीं। इस जेलमें अधिक मिलने की आशा भी नहीं थी। भाई चिनाई से पुरा पीसा भी नहीं जता था। इसलिए इन्हें प्रतिदिन सहाब के पास प्रस्तुत किया जाता था। प्रस्तुत करने में ही कुछ समय निकल जाता था जिससे दूसरे दिन आज की अपेक्षा भी कम पीसा जाता था। साहब प्रतिदिन चेतावनी देता था पर महाराज के मनमें इसका बहुत दुःख रहा करता था। इनका मन पीस आने को करता पर जाने ही कौन देता था। एक दिन महाराज अपना १९ सेर पीसना पीसकर चुपचाप चिनाई की कोठड़ी में घुस गये और साथ पिसाने लगे। ठीक उसी दिन ऐसा बना कि श्रीडाह्याभाई देरासरी अहमदावाद से जेलका निरीक्षण करने आये थे। वे जेल-समिति के सदस्य थे। और एक दिन बंदियों को धार्मिक उपदेश देने भी आते थे। महाराज जेल में आये हैं—यह जानकर उनका मन महाराज से मिलने के लिए किया। जब जमादार के साथ वे महाराज की कोठड़ी पर पहुँचे वहाँ कोई नहीं था। ढूँढने पर महाराज चिनाई की कोठड़ी में पिसाते हुए मिल गये। इससे सिपाही तो इनपर बहुत चिढ़ा गया किंतु अतिथि के समक्ष कुछ बोला नहीं। एक लँगोटी में महाराज को देखकर भाई देरासरी को कैसा लगा, यह तो भगवान् जानें। पर महाराज उन्हें देखते ही कुछ समय पहले दिवंगत हुए उनके पुत्र जालम भाई के विषय में आश्वासन के दो शब्द कहने लगे। भाई देरासरी

की ममता जाग उठी और उनकी आँखों में से आँसू टपकने लगे। उन्होंने भाई चिनाईको भी पहचाना। वहाँसे अलग होने से पहले पूछा आपको कुछ कष्ट तो नहीं? इसके उत्तर में महारा बोले कि और तो कुछ कष्ट नहीं पर इस चिनाई भाई से पीसा नहीं जाता। यदि इनका पीसने का काम बदल दिया जाय तो अच्छा हो। दूसरे ही दिन भाई चिनाई की चक्की बन्द हो गई। महाराज को इससे बहुत आनन्द हुआ। चक्की बंद होने के साथ-साथ इनकी बदली भी बड़े चक्कर में हो गई जिससे ये महाराज से अलग पड़ गये।

महाराज प्रतिदिन अपना पीसने का काम पूरा करते हैं और भली भाँति करके दिन काटते हैं। प्रति सप्ताह सुपरिण्टैण्डैण्ट रौंद पर आते पर महाराज तो अपना काम उस समय भी किये ही जाते। न इनकी कोई शिकायत (परीवाद) होती और न कोई दूसरी बातचीत। एक दिन सुपरिण्टैण्डैण्ट ने स्वयं महाराज की आचरण-पंजी माँगी और उसमें चक्की के स्थान पर 'नाड़ा-पट्टी' की टिप्पणी कर गये। यह जानकर वहाँ का वोडर खुश खुश हो गया। महाराज सुनाते हैं कि उस दिस के रौंद के बाद भी मैं चक्की पीसने गया, पर चक्की चलने की ही 'ना' कह रही थी। जैसे गाड़ी देखकर पाँव भारी हो जाते हैं वैसे ही नाड़ा-पट्टी का टिप्पण देखकर ऐसा हुआ होगा। शेष रहा पीसना वोर्डरने ले लिया। दूसरे दिनसे महाराज नाड़ा-पट्टी बुनने लगे। चार ही दिनों में ये दो बजेसे पहले ही अपना नाड़ा-पट्टी

का काम पूरा करने लगे। इन दिनों भाई दिनकर मेहता तथा छगनलाल पटेल भी महाराज के साथी बने थे। भाई दिनकर को सादी सजा थी।

महाराज सवेरे चार बजे उठ जाते, उपनिषदों के मंत्र बोलते, प्रार्थना करते और दातन करने के बाद सौ बैठकें निकालते। इतना हो जाने तक कोठड़ी के किवाड़ खुल जाते। महाराज अपना काम पर बैठने का स्थान बुहार लेते। इतने में राब आ जाती। राब पीते ही ये काम पर पिल पड़ते। ग्यारह बजे रसोई के समय ये काम से छूटते। जीमने के आधाघंटा बाद ही फिर काम में जुट जाते। काम पूरा करके बाँचने बैठते। शेष समय में बंदियों के साथ मिलते-जुलते भी थे। इससे कई एक इन्हें चाहने लगे। एक दिन एक बंदी [महाराज के पहचान वाला] धोबी स्थान पर जाकर महाराजका पहिरन रंगकाट डालकर दूध-सा बना लाया। उसने महाराज के प्रेमसे ऐसा किया था, पर महाराज को इससे बहुत दुःख हुआ। क्योंकि इसे तो ये चोरी मानते थे। कई-बार बंदी महाराज को रविवारके दिन गुड़ और चूरमा देने आते, पर महाराज बहुत ही प्रेम पूर्वक उन्हें वापस भेजते थे।

डाह्याभाई देरासरी के धार्मिक भाषण के समय सब बंदियों को जाने देते, पर महाराज के वहाँ जाने पर प्रतिबंध था। इस निमित्त से ही सब बंदियों को मिलने का अवसर मिल जाता, न जाने जल-अधिकारियों को महाराज में कौनसी भयंकरता दिखाई दी जिससे इन्हें इस लाभसे वंचित रखते।

एक दिन सुपरिण्टैण्डैण्ट ने महाराज को कार्यालय में बुलाकर, आपके साथ कितने व्यक्ति हैं—आदि की सामान्य पूछ-ताछ की। जब ये वापस आये तो इनके वोर्डर ने इनसे पूछा, आपके पाससे माफी तो नहीं मँगवाते ? देखना, कहीं माफी-वाफी न माँग बैठना।

महाराज को एक क्रिमिनल बंदी में ऐसा स्वाभिमान देखकर बहुत आनन्द हुआ। महाराज इस समय बाहर क्या चलता होगा, या नहीं? ऐसी कुछ कल्पना भी नहीं करते थे और न किसी प्रकार की पूछ-ताछ ही करते थे। इन्होंने अपने-आपको बाहर की दूनियां से अलग कर रखा था। इसलिए ये जेल की दुनियां में ही मग्न रहते थे। आपने भागमें आया काम करते थे और खाली समयमें अभ्यास करते थे। यह महाराज की आध्यात्मिक वृत्ति का एक लक्षण था।

३६—कावीठे का खोड़िया

एक दिन हौज (पानी के छोटे कुण्ड) के नाले के मुख के पास झुककर एक बंदी दूसरे वाडर में से महाराज को बुला रहा था। पर महाराज ने इस प्रकार छिपकर बातें करने से नकार किया। दो दिन के बाद वह महारज के पावों पड़ा। महाराजने उसे उठाया तो पहचाना कि यह तो देरडे वाला खोड़िया है।

जब महाराज कठाणे रहते थे तब एक समय इनके पास समाचार आया था कि कावींठे का पाठणवाड़िया खोयड़िया आस-पास लूट-मार कर रहा है। उसके कुछ दिनों बाद एक व्यक्तिने आकर कहा,—महाराज, आपसे कुछ काम पड़ गया है। महाराज बोले, बताओ क्या काम है? आनेवालेने कहा-मेरा एक साला है, इस पर बहुत भारी आरोप आगया है। महाराजने पूछा—वह कहाँ का है और उसका नाम क्या है? उसने कहा-है तो वह कावींठे का और उसका नाम खोड़संग है।

महाराज :—'कावींठे का खोड़िया' नामसे जो प्रसिद्ध है वही है न?

आनेवाला—हाँ, वही, उसे माफी दिलाओ न?

महाराज—माफी कैसे दिलावें? वह तो लूट—मार करता-फिरता है।

आनेवाला—महाराज, उसकी भूल तो छोटी—सी थी। पर वह इससे छिपता—फिरता रहा और अंत में खोटे मार्ग पर चढ़ गया जबसे उसकी हाजरी में शून्य लगने लगा तभी से छिपता—फिरता है, आप करें तो कुछ जरूर हो जाय।

महाराज—होगा या नहीं—यह तो नहीं कहा जा सकता। पर पुलिस—कमिश्नर से मिल देखूंगा।

आनेवाला बहुत खुश हुआ और बोला, आप इतना कर दें तो भगवान् ही भूमि पर उतर आये। उसके—स्त्री—बच्चे सब तड़फड़ा रहे हैं।

महाराज बड़ौदे जाकर पुलिस–कमिशनरसे मिले और बोले–यदि क्षमा–प्रदान करें तो मैं स्वयं खोड़िये को प्रस्तुत करूं। उन्होंने कहा–वह तो लूट–मार करता है, उसे कैसे छोड़ा जा सकता है? महाराज बोले, उसे समझाकर सुधारेंगे। पुलिस-कमिशनर ने कहा–आप चिंता न करें, मेरे पास बंदूक है बहुत कुकर्म करेगा तो इससे उड़ा दूंगा। महाराज दो मिनट तक तो कुछ नहीं बोले, फिर ये कहने लगे–बावरदेवा को आपने सातवें वर्ष पकड़ा है। सात वर्ष तक उसने लोगों की दुर्गति की। इसका क्या परिणाम? इससे तो यही अच्छा है कि वह अभी से प्रस्तुत हो जाय और इस मार्ग से हट जाय। महाराज की इस बात में उन्हें कुछ तथ्य दिखाई दिया। अंतमें थोड़ा दंड देकर उसे छोड़ने के लिय सम्मत हो गये। इतना निश्चित हो जाने के बाद महाराज बड़ौदे से खडोल गये। वहाँ जाकर उस खोड़िये के बहनोई को बुलाकर खोड़िये को प्रस्तुत करने के लिए कहा। उसने कहा, वह गाँव में तो नहीं आवेगा, पर रात को गाँव के दामन में आवेगा वहाँ आपको ले जाऊँगा।

महाराजने कहा बहुत अच्छा। इन्होंने दूसरे किसी के साथ कुछ बात नहीं की थी। बहुत रात तक ये गाँव की एक खाट पर बैठे-बैठे बुलाकर ले जानेवाले की बाट देखते रहे। पर इन्हें कोई बुलाने ही नहीं आया। इससे इन्हें रिस चढ़ गई। दूसरे दिन सवेरे ही ये बोरसद के रास्ते पड़ गये। थोड़ी दूर गये होंगे कि इनके पीछे उस खोड़िये का बहनोई दौड़ता-दौड़ता

आया और सेठ बोरसद की शाला के पास इनसे मिल सका। वह महाराज को बुलाने आया था। महाराज बोले—अब मैं नहीं जाऊँगा। जब उसे ही कुछ जरूरत नहीं तो मैं क्यों व्यर्थ टांगे तुड़ाऊँ? वह गिड़—गिड़कर बोला—बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा—वह पास के पामोल गाँव में आया है और आप से मिलना चाहता है। महाराज वहाँ जाने को सम्मत हो गये। खा-पीकर दुपहरे ये दोनों पामोल पहुँचे।

दोनों को दूरसे आते देखकर वृक्ष पर चढ़ी हुई एक स्त्री ने कुछ संकेत किया। महाराज को बुलाकर लाने वाले ने वृक्ष के नीचे एक खाट बिछा दी, उस पर महाराज को बैठाकर स्वयं वह खोड़िये को जगाकर ले आया।

महाराज—भाई! किस लिए लूटें करते हो?

खोड़िया—कौन करता है?

महाराज—अलारसे में से दूसरे की स्त्री को भगाकर ले आया। यह क्या? बोल, तू माफी चाहता है? उपस्थित होना पड़ेगा। थोड़ा दंड तो होगा पर छूट जायगा। फिरसे इस धंधे में न पड़ना हो तो मेरे साथ चल।

बहुत समझाने—बुझाने के बाद खोड़िये ने दूसरे दिन कावंठे में आकर मिलने का वचन दिया और बाहर शाला के ओटे पर बाट देखने के लिए कहा।

महाराज दूसरे दिन निश्चित किये ओटे पर जाकर बैठ गये। वहाँ से आने जाने लोग महाराज से पूछने लगे, 'यहाँ क्यों बैठे

हैं चलिए गाँव में। महाराज बोले—एक भाई की बाट देखता हूँ। बहुत देर तक बाट देखने पर भी कोई नहीं आया। इसलिए महाराज खोड़िये के घर गये और गली के लोगों से पूछने लगे-यहाँ खोड़िया है? घरकी स्त्रियों ने कहा, मूआ खोड़िया, यहाँ खोड़िया कहाँ? पास पड़े हुए एक मंजे पर महाराज बैठ गये। थोड़ी देर बाद "अमुक पाटणावाड़िये के यहाँ मैं आया था" यह खबर खोड़िये को पहुँचाने के लिए कह कर महाराज तो उठ चले।

बात एसी बनी कि 'ढूंढाकूए' का मुखी सरकार से विशेष मिलता,जुलता था। यह खबर खोड़िये को मिली होगी। उसने खोड़िये से कहा, धौली टोपी-बालों पर विश्वास न करना। यदि तू उस नापेवाले डाकू को पकड़ावे तो तुझे पारितोषिक दिलाऊँ। ऐसा लालच देकर उसने खोड़िये को डि० पो० सुपरिण्टैण्डैण्ट के पास प्रस्तुत कर दिया। सुपरिण्टैण्डैण्ट ने इसे बचन दिया क यदि तू नापावाले को पकड़ा देगा तो तेरे अपराध क्षमा कर दिये जायँगे। खोड़िये को एक बंदूक दी गई। वह बंदूक लेकर नापावाले को पकड़ाने के बहाने लूट—मार करता फिरने लगा। ढूंढा कुएँ के मुखीने इसके सिर पर १८) रूपये का एक साफा बाँधा था।

सन् १९२५ के दिसंबर में श्रीदरबार साहब तथा मंडली को वन्य भोजन के लिए बुलाया गया था। मंडली में महाराज भी थे। इस समय एक समाचार आया कि पामोल के एक पाटीदार के

लड़के को डाकू उठा कर ले गये हैं और वे रुपये माँगते हैं। महाराज बोल उठे कि इसमें वह खोड़िया ही होना चाहिए। महाराज वहाँसे निकल कर खोड़िये से मिलकर उस लड़के को छुड़ाने के लिए जाने का विचार ही कर रहे थे। इतने में दूसरी खबर मिली लड़के को छोड़ दिया है। इस घटना के बाद तो महाराज का मन उस खोड़िये को रास्ते पर लाने के लिए छटपटाने लगा। इन्होंने ढूँढ़ निकाला कि कावीठावाले खोड़िये के साथ एक दूसरा देदरड़ा का खोड़िया भी भगौड़ा बना हुआ है। इसलिए वहाँ से ये सीधे पहुँचे देदरड़े। वहाँ खोड़िये के बापसे मिले और पूछा—तुम्हारा छोकरा कहाँ हैं?

बाप—कहीं गया होगा।

महाराज—कहीं गया नहीं।' पर मरने को है। कावीठावाले खोड़िये के साथ घूमता है। देखा है न! बाबरदेवा का घर तक भी नहीं बच सका। वह जिस वृक्ष के नीचे बैठता था उस वृक्ष की जड़ें भी सरकार खोदने लगी है। तुम्हें बुढ़ापे में जेल जाना है? इस प्रकार महाराजने बूढ़े को झिड़की भी दी और समझाया कि यदि अधिक विपत्ति में न पड़ना हो तो इसे पुलिसमें प्रस्तुत करो। इस आशय की बात करके महाराज बोरसद छावनी में चले गये।

दूसरे दिन सवेरे ही देदरडेवाले खोड़िये को लेकर उसका बाप महाराज के पास पहुँचा और कहने लगा—यह लड़का आपको सौंपता हूँ। जो करना हो करें। महाराजने इसे भी समझाया

और बताया कि यदि तू प्रस्तुत होगा तो दंड तो होगा; पर थोड़ा होगा। यदि प्रस्तुत नहीं होगा तो लंबी पाश (फंदा) होती जायगी। वह प्रस्तुत होने को सम्मत हो गया। इसलिए महाराज उसे लेकर बोरसद–फौजदार के पास गये।

महाराज—आप देदड़े के खोड़िये को पहचानते हैं?

फौजदार—नहीं; पर मुझे उसे पकड़ना है। पामोल की लूट में उसका नाम है।

महाराज—यह वही खोड़िया है। मैंने इसे समझाया और यह स्वयं प्रस्तुत हो रहा है। कृपा रखना! फौजदारने उसे पकड़ कर लोक-अप में ठोक दिया। महाराज ने जाने से पहले खोड़िये को मिलने के लिए बुलाया। वह बोला, महाराज मुझ अकेले को ही प्रस्तुत कर रहे हैं; पर कावीठावाला खोड़िया यहाँ से एक कोस दूर वासणा में है; उसे भी समझाकर लावें? कहें तो मैं साथ आऊँ।

महाराज ने यह बात फौजदार से कही कि यदि उसे पकडना हो तो इसे छोडना पडेगा!

फौजदार—नाम लिख लेने पर छोड़ा नहीं जा सकता।

महाराज—तो आप उसे अवश्य पकड लेंगे? महराज वहां बोरसद छावनी में कार्यकर्ताओं के एक संमेलन में गये। सायंकाल फिर ये फौजदार से मिले और उसे समझाया। इसलिए उसने खोड़िया महाराज को सौंप दिया और साथमें यह भी कहा कि यदि यह भाग गया तो मुझे घर बैठना पड़ेगा। मुझे निवृत्ति-

वेतन (पैन्शन) मिलनेवाला है केवल आपके विश्वास पर ही इसे छोड़ता हूँ। महाराज खोडिये को लेकर अंधेरी रातमें चलने लगे। खोडिये से इनका बहुत संबंध तो था नहीं, पर आत्मश्रद्धा से इन्होंने यह काम उठा लिया था। इनके मनमें एकवार यह संशय भी हुआ था कि कहीं मैं अपनी शक्ति से बाहर साहस तो नहीं कर रहा? किंतु कार्य का वेग इतना अधिक था कि यह संशय भी उसीमें वह गया।

वासणा आया। उसने महाराज को गांवके समीप बैठा दिया। आप खेतमें ढूँढ़ने गया। थोडी देरमें वापस आकर समाचार दिया कि वह तो मेरे यहां देदरडे चला गया है। दोनो ही देदरडे के रास्ते पड़े। देदरड़े में महाराज एक व्यक्ति के यहां बैठ गये और खोड़िया अपने घर पता लगा आया कि वह खेतमें है। महाराजने इससे खेतमें जा आनेको कहा। वहांसे आकर इसने कहा, वह तो वहां भी नहीं। वहांसे चला गया; कहें तो कावींठे हो आऊँ?

महाराज—तेरी इच्छा।

खोड़िया—यदि कावींठे में भी न मिला तो क्या करूं।

महाराज— अपने घर जाकर सो जाना। उसका काम फिर हो जायगा।

वह भी थक गया था और महाराज भी थक गये थे। इन दोनोंने रात देदरड़े में निकाली। वहुत सवेरे ही वह तो घर

से आकर महाराज के सामने खड़ा हो गया और बोला चलें, प्रस्तुत कर दें।

महाराज उसे लेकर बोरसद गये। फौजदार से सारी बात कह सुनाई। उसने कहा, मरे, वह नहीं आया जो, यह तो आ ही गया। खोड़िये को लोकअपमें बंद कर दिया। अभियोग चला, सात वर्षका कारावास हुआ। महाराजने इससे कहा था कि तीन-एक वर्षका दंड होगा। पर हो गया सात वर्ष का।

वही खोड़िया आज महाराज की कोठड़ी के आगे इनके पाओं पड़ा था। महाराजने उसे बहुत स्नेह से बुलाया और समाचार पूछा। बाद में बोले मैंने तो तुझसे तीन वर्षका दंड होगा, यह कहा था; पर हो गया सात वर्षका। इससे मुझ पर रुष्ट तो नहीं हुआ न? वह बोला—ना, महाराज ऐसा क्यों बोलते हैं? वह कावीठावाला खोड़िया बादमें पकड़ा गया था। उसे २१ वर्षका दंड हुआ था। उसके परिमाण में इसे यह दंड अल्प लगता था और महाराज का उपकार मान रहा था। इन्होंने इसे समय पर प्रस्तुत कर दिया था। इसके साथ एक शंकर भी पकड़ा गया था। उसे भी सात वर्षका कारावास हुआ था। जब महाराज जेलमें आये थे तो गेहूँकी रोटियां भेजनेवाला वही शंकर वोर्डर बना हुआ था।

वह कावीठावाला खोड़िया महाराज के मनमें से निकला नहीं था। उसे हाथमें से छटका देखकर महाराजने बटादरे की पाटणवाडिया--परिषदसे एक प्रस्ताव कराया था कि कावीठेके

लोगोंको इस महीनेमें खोड़िये का प्रस्तुत करना चाहिए और जो कोई पाटणवाटिया उसे रोटी देगा तो वह जाती से बाहर निकाल दिया जायगा ।

इस प्रकार खोड़िये पर चारो ओरसे नाकाबंदी हो गई । एक दिन महाराज कासींद्रे के फौजदार के साथ बातें कर रहे थे । उसी समय समाचार मिला कि खोडिया पकडा गया । फौजदार वहांसे पेटलाद पहुँचा और महाराज कावींठ चले गये । वहां जाकर महाराज को विदित हुआ कि और भी कावींठे के दो-चार व्यक्ति जेल में बंद कर दिये गये हैं । उसे पकडने का प्रसंग इस पकार बना कि एक दिन कावीठा गाँवमे एक पाटीदार के यहां भागवत-सप्ताह हो रहा था । सुनने के लिए लोग इकटठे हुए थे । इसी समय एक पाटणवाडिये का नवयुवक लडका बाहर किवाड़ के पास बैठा था । उसकी दृष्टि एक भंगी पर पडी जो बीडियों के बण्डल और मोतीचूर के लड्डू लिये जा रहा था । इससे उसको संदेह हो गया । उसने यह बात अपने बापसे कही । एक व्यक्ति पासके नीम पर चढ़कर देखने लगा कि वह भंगी किस ओर जाता है । वह भंगी समीप के ज्वार के खेतमें घुस गया । इतना निश्चय कर लेने पर वृक्ष पर चढ़नेवालेने लोगों को इकट्ठा किया । वहां एक सिपाही रहता था, उसे भी बुला लिया गया । टोला बनाकर ज्वारके खेत की ओर चले । "मुझे पकडने के लिए लोग टोला बनाकर चढ़ आये" यह खबर खोड़िये को भी लग गई । इसलिए वह ज्वारके खेतमें से भाग

निकला । कई एक नवयुवकोंने उसका पीछा किया इनमें मोती चुर के लड्डू देखनेवाला वह युवक भी था । वह खोड़िये का चचेरा भाई था । सिपाही की तो थोड़ी दूर पर ही साँस फूल गई । वह युवक संतोकपुरे की सीमा तक पहुँचते-पहुँचते प्रायः ऊपर ही जा चढ़ा था । सारा टोला पीछे रह गया था । इस अकेले युवक को पीछा करते देखकर खोडियेने इसके सामने बंदूक ताकी । युवक कपित्थ की आड़ में हो गया । बंदूक चली नहीं युवकने अनुमान किया कि खोड़िये के पास कारतूस नहीं । साहस करके वह खोड़िये की ओर छूटा और उसे जा झपटा । थोड़ी देरमें पीछे आ रहा टोला भी आ पहुँचा । खोड़िये को पकड़कर पेटलाद फौजदार के पास पहुँचा दिया । वहाँ खोड़ियेने ऐसा लिखाया कि कुछ दिन पहले मैंने जो शिमरड़ा गाँव की पाटीदार स्त्री की स्वर्णकंठी निकाली थी वह मुझे पकड़ने वाले इस युवक के यहां ही है । इससे युवक और युवक के बाप को भी फौज़दारने जेल में ठूंस दिया ।

यह सारी वास्तविकता जानकर महाराज पेटलाद गये और फौजदार को इससे परिचित किया । भार-पूर्वक यह भी कहा कि जिस युवक को संमान-पूर्वक पारितोषिक देना चाहिए था उसे आपने जेल में दे दिया है । फौजदारने खोड़िये के अतिरिक्त सबको छोड़ दिया ।

महाराज पेटलाद जेलमें इस खोड़िये से भी मिले और बोले, क्यों खोड़संग, अब पकड़े गये या नहीं ? जब मैंने कहा था यदि

तभी उपस्थित हो जाता तो ऐसा न होता। उस जेठाभाईने साफा बाँधा था वह तुझे छुड़ाने के लिए आया? पर एक–आध महीने में ही वह जेल तोड़ कर भाग गया। किंतु उसका भाग्य अनुकूल नहीं था। इसलिए एक–आध कोस भागा होगा, इतने में उसे पकड़ लिया गया। उसे खूब मारा गया। दूसरे अपराधों के बदले में उसे २१ वर्ष का कारावास हुआ। भाग निकलने के कारण छह मास और बढ़ा दिये गये। इसके बाद ब्रिटिश सीमाके अपराधों के बदले में दूसरा १४ वर्ष का दंड हुआ था। वह भी साबरमती जेलमें ही था। महाराजने उसे एवं सुच्चासिंह को भलामण (सिफा-रिश) करके चक्की के काममेंसे नये कारखाने में दरियां बुनने के काम में प्रविष्ट कराया। इस प्रकार उसको चक्की तो छूटी, पर एक दिन करघे का लक्कड़ उसके पाओं पर पड़ा। वह पक गया। इससे उसे धनुर्वात हो गया। वह दंड पूरा किये बिना ही इस दुनिया में से चल बसा।

एक दिन महाराज राव पीकर अपना नाड़ा-पट्टी का काम आरंभ कर रहे थे। इतने में वोर्डर ने आकर पुकारा–रवि-शंकर शिवराम कौन है? चलो तुम छूट गये, बिस्तरा ले लो" इसप्रकार अचानक छूट जाने की महाराज को कल्पना भी न थी। यहाँ के साथियों से मिल लेने की इनकी इच्छा थी, पर जेलमें ऐसी ऐसी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं।

बारडोली–सत्याग्रह के संबंध में पकड़े गये ८–१० व्यक्ति

थे। ये सब आर्डरली बोर्ड में इकट्ठे किये गये। इनसे कहा गया कि तुम्हें छोड़ देने के लिए सरकारी आदेश आ गया है, पर आई. जी. पी. का आदेश अभीतक हमें नहीं मिला। आजकी डाकमें वह आना ही चाहिए। तबतक हम तुम्हें बाहर नहीं निकाल सकते। सब लगभग तीन बजे तक वहाँ बैठे रहे। जेलके अनुभवों की आपसमें बातें कीं। इतने में बोर्डरने आकर कहा—चलो, तैयार हो जाओ, तुम्हारे लिए आदेश आ गया है। सब जेलमें से छूटकर साबरमती आश्रम में गये। वहाँ गांधीजी का तार आया था कि जब सब छूटकर आवें तुरंत पहली गाड़ीमें इन्हें बारडोली भेज देना।

३७—रानीपरज जातिमें

सरकारी दमन—चक्र और अत्याचार होने पर भी बारडोली की जनता झुकी नहीं। इसलिए बारडोली का प्रश्न विराट् हो गया। प्रांत—प्रांत के नेता पूछताछ करने लगे। यह प्रश्न मुंबई धारासभा, बड़ी धारासभा और ठेठ ब्रिटिश-पार्लमेन्ट तक पहुँचा था। अंतमें मुंबई—गवर्नर साहबने समाधान करके मूँछ ऊँची रखी। जनता जो चाहती थी वही जाँच—समिति मिली। खालसा हुई जमीनें और जप्त हुआ माल वापस मिला। सरकारी पटवारी आदिने सत्याग्रह के समय त्याग पत्र दे दिये थे। वे सब फिरसे कामपर चढ़ गये। बंदी छोड़ दिये गये। जाँच के अंतमें यह भी सिद्ध किया गया कि अधिकारियों की ओरसे की गई कर—वृद्धि सर्वथा अनुचित है। इस लड़तमें जनता को बहुत कष्ट उठाने पड़े। पर जनता

समझ गई कि अन्यायके विरोधमें ब्रिटिश सरकार जैसी सत्ताके वि-पक्षमें भी सत्याग्रह से लोहा लिया जा सकता है। और जनता पर लादा हुआ अन्याय दूर किया जा सकता है। इस लड़त से जनता में एक प्रकार की योग्यता बढ़ी। इतना ही नहीं, पर देशभरमें इस लड़त का अच्छा प्रभाव पड़ा।

महाराज आदि जब बारडोली स्टेशन पर उतरे, स्वयं गांधीजी इनका स्वागत करने आये थे। इससे इनके आनंदका पार न रहा। बारडोली में इनका भावभीना स्वागत किया गया। उसके अनन्तर वालोड, बाजीपरा, सरभोग आदि में जहाँ-जहाँ इन्हें ले जाया गया वहाँ वहाँ लोगोंने इन्हें उत्साह पूर्वक हाथों पर उठा लिया। गाँव गांवसे ५०-१०० की भेंटें अर्पित हुईं और नारियलों से तो बोरियां भर गईं।

सरभोण में एक हँसी हुई कि महाराज जबसे जेलमें गये थे तबसे एक अनाविल मित्रने मद्य पीना छोड़ दिया था। महाराज को आये हुए सुनकर वह उमंग सहित मिलने आया। और महाराज को भेंटते-भेंटते बोला रविशंकर, जिस दिन से तू गया था, उसी दिनसे पीना छोड़ दिया था। पर आज तो आनन्द में एक प्याली पीकर आया हूँ। महाराजने हँसते-हँसते उत्तर दिया कि यदि मुझे ऐसा पता होता तो अभी कुछ दिन मैं और न आता। थोड़ा समय बारडोली में रहकर महाराजने ऐसे मधुर संबंध बना लिये थे।

बारडोली सत्याग्रह के बहुत से प्रभाव पड़े थे। उनमें से एक वहां की रानीपरज जाति की जागृति है। सूरत जिले तथा

आसपास के प्रदेशों की संख्या मिलाकर इस जाति की बस्ती चार लाख है। पर यह भोली-भाली जनता इतनी अधिक कुचल दी गई है कि यह कभी उठ सकेगी इसमें भी आशंका थी। श्री चुनीभाई मेहता और जुगतराम दवे जैसे दीक्षित सेवक सन् १९२१ से इस जाति में जुट गये थे। चुनीभाईने चर्खा प्रचारित किया और जुगतरामभाईने आश्रम स्थापित करके उनकी सर्वांगीग शिक्षाकी योजना की। धीरे-धीरे इस जातिमें नई चेतनता आने लगी। पहले इस जाति को कालीपरज कहा जाता था। पर गांधीजीने इसका 'रानीपरज' यथार्थ नामकरण किया। आज यह नाम सर्वत्र प्रचलित हो चुका है।

एक समय सरदार वल्लभभाई, महाराज आदि बैठे थे। वहां आकर एक रानीपरज भाईने परिवाद (शिकायत) किया कि मैं मद्य नहीं पीता इसलिए सूबा साहबने पारसी के घरमें बुलाकर मुझे मारा। यह सुनकर सरदारने महाराज की ओर दृष्टि डाली। महाराजने कहा, नवसारी के वर्तमान सूबा और नायब सूबा दोनों अच्छे हैं, इस कारण से तो वे नहीं मार सकते।

देवकी ऊनई की परिषद् मे से सरदार साहब और महाराज वापस आ रहे थे। उसी समय सूबे तथा सरदारकी मोटरों की भेंट हो गई। मोटर खड़ा कर सरदार साहब सूबे तथा पुलिस नायब सूबे से मिले। बातचीत में उस रानीपरज भाई की बात भी छेड़ दी। सूबा साहबने कहा—आपके पास आई बात बराबर नहीं लगती। पर यदि आप रविशंकर महाराज को हमारे गायकवाड़ी

विभागमें भेजें तो बहुत अच्छा हो। दूसरे स्वयंसेवक तो लड़ा मारते हैं।

इस समय मद्य—ताड़ी बंद कराने की एक लहर उठी थी। लोग मद्य के ठेकों पर पिकेटिंग (चौकी) करते जाते। इससे पारसी लोगोंके ठेकोंकी आय घट गई थी और ये व्याकुल हो उठे थे। रानीपरज परिषद्में ऊनई गांवमें सरदार साहबने बहुत तेजस्वी भाषण किया था। उन्होंने इस जाति को संबोधित करके कहा था कि तुम सिंह की गुफामें रहने वाले, ताड़की चोटी पर चढ़नेवाले और प्रकृति माता की गोदमें सोने वाले शूरवीर हो। तुम इन ठेके चलानेवाले पारसियों से क्यों डरते हो? आज मैं तुम्हें अहिंसा सिखाने नहीं आया हूँ। भयभीत हुओं को मैं अहिंसा क्या सिखाऊं? राज्य का नियम (विधान) कहता है कि आत्मरक्षा के लिए सामने डट जाओ। प्राकृतिक नियम है कि कष्टदेने वाले के अधीन मत हो, पर प्रतीकार करो। यदि तुम पर कोई हाथ उठाये तो उसका हाथ काट डालो। यदि तुम्हारी स्त्री पर कोई कुदृष्टि करे तो उसकी आँख निकाल डालो। इस सभामें इन्होंने ठेकेदारों को भी चेतावनी दी कि तुम गरीब लोगों को बलात् मद्य—ताड़ी पिला पिलाकर चूस रहे हो। पर यह कभी न भूलना कि यह मूल स्थान रानीपरज का है।

इस भाषणसे वहां के ठेकवाले पारसियों में सनसनी फैल गई। मुंबई के 'जामे जमशेद' पत्रने खूब 'हो—हा' की और एक

जाँचआयोग नियुक्त कराया। इस आयोगमें बहेरामजी नामक एक एम्. ए. का विद्यार्थी भी था। उसने देखा कि रानीपरज जाति को पीड़ित करने में कुछ कमी नहीं रखी गई। यह वृतांत उसने मुंबई में अपनी जातिमें भी पहुँचाया और इस जाँच के परिणाम स्वरूप रानीपरज जातिके विषय में एक निबंध लिखकर एम्. ए. की उपाधि भी प्राप्त की।

बारडोली लड़त के कारण रानीपरज जाति में जागृति का पूर आ गया। ब्रिटिश तथा गायकवाडी दोनो प्रदेशों के रानीपरज लोगों के मनमें यह बात बस गई थी कि ताड़ी—मद्य को लतने ही हमारा सत्यानाश कर रखा है।

बड़ौदेमें रानीपरज जातिके लिए एक छात्रावास बनाया गया था। इससे रानीपरजके कुछ विद्यार्थियों की अक्षरज्ञान की भूख शांत हो गई थी। श्री गोविंदभाई—हाथीभाई बड़ौदा—राज्यमें नायब दीवान थे। उन्होंने भी इस जाति के विषय में कुछ रस लिया था। रानीपरज की स्त्रियां गले में भारी पत्थर के हार पहना करती थीं। उन्होंने वह प्रथा दूर करने का प्रयास किया था। परन्तु इस सत्याग्रह की लड़त के बाद इस जाति के नवयुवक कुछ करने के लिए छट-पटा रहे थे। उन्हें मार्ग–दर्शन की आवश्यकता थी। सरदार के भाषणोंने उनमें नई अस्मिता पैदा की थी। सरदारके भाषण सुनने के लिए लोग ३०–४० मील चलकर भी आया करते और साथमें अपना

पाथेय भी बाँध कर लाते थे। उस समय के उनके उत्साह के सामने उच्च वर्णके स्वयंसेवक भी फीके पड़ जाते थे। ऐसा महाराज का कहना है।

पारसी ठेकेवालों के ऊहापोह एवं संपर्क के परिणाम स्वरूप बड़ौदा-राज्य ने एक अध्यादेश निकाला कि चौकी करने वाले को ताड़के वृक्षके नीचे नहीं जाना चाहिए और ठेकेसे अमुक दूरी पर खड़े होकर ही चौकी (पिकेटिंग) करनी चाहिए। इस अध्यादेश के अनुसार सोनगढ़, महुवा, व्यारा आदि गांवों में से २५—३० रानीपरज स्वयंसेवकों को पकड़ा गया।

व्यारा तालुके के कई-एक लफंगे पारसियोंने रानीपरज जाति को पीड़ित करने के लिए एक घात गढ़ी। रानीपरज प्रदेश में सामान्यत ऐसी चाल है कि ८—१० गाँवोंके बीच सप्ताह में एक—आध छोटी मंडी भरी जाती है। जिन लोगों को अपना माल बेचना होता है वे वहाँ आते हैं और खरीदने वाले भी आते हैं। प्रायः जहाँ ऐसी मंडी भरती थी उसके पास ही किसी वृक्ष के नीचे पारसी लोग भी अपना ताड़ी-मद्य का ठेका खोल लेते थे। पासमें पानी के लिए एक-आध कूआं भी खुदवा रखते थे। लोग पानी पीने या वृक्षकी छाया में बैठने आते तो उनके लिए ढोलक और नाच की व्यवस्था भी की होती। ऐसी सब व्यवस्था व्यारे के ठेके वालोंने भी कर रखी थी। साथ-साथ उन्होंने एक रानीपरज की स्त्रीको सिखा रखा था कि

तू दो आने लेकर शराब खरीदने आना, जब कोई तुझे खरीदने से रोके तो तू खाली कुल्हड़ी फोड़कर रोने लग जाना—बादमें हम सब देख लेंगे। उस स्रीने केवल दो आनों के लिए यह सब नाटक किया। पारसी नवयुवक इतना ही चाहते थे। वे लाठियां लेकर चौकी करनेवाले और न करनेवाले सब पर टूट पड़े। रानीपरज जाति पारसी लोगों इतनी दब चुकी थी कि सौ-रानीपरज लोग भी एक पारसी से डरते थे। लाठियां पड़ने लगीं—इसलिए पुकारने लगे "भागो भागो, पारसी मारते हैं" सब लोग भागने लगे।

पर इसी जाति का एक थोड़ा—पढ़ा लिखा युवक कुछ दिन पहले सरदार का भाषण सुन आया था। उसका खून खौला और सबको भागते देखकर उसने ललकारा 'भागते क्यों हो? मारो पारसियोंको! इतना कहकर उसने एक पारसी के हाथ में से लाठी छीन ली और वह उसीको ठोकने लगा। यह देखकर जो भाग रहे थे वे भी खड़े हो गये और उस अकेले के साथ पारसियों पर पिल पड़े। पारसी घबराकर भागते हुए छप्परों में जा छिपे। सारा पासा ही बदल गया।

बादमें पारसियोंने पुलिस से संपर्क साधकर उस समय जो थे और जो नहीं थे ऐसे कितनों को जेलमें ठुंसवा दिया। अब प्रजामें नया बल आ गया था। जेलमें जाते हुए वे डरे नहीं। उसके अनन्तर एक रानीपरज–परिषद में इन लोगों ने ऐसा प्रस्ताव भी किया था कि यदि बड़ौदा सरकार ताड़ी-मद्य

वन्द कर दे तो लोग ब्रिटिश सीमा में ताड़ी-मद्य पीने न जायँ इसके लिए हम चौकी बिठावेंगे।

यह परिस्थिति देखकर महाराज के मनमें आया—यदि इस जाति में काम करने को मिले तो अच्छा हो।

३८ महुवा सोनगढकी ओर

नवसारी के सूवा साहबने तो महाराज की माँग की ही थी। इतने में महुवा की ओर हटवाड़े (मंडी) की घटना घटी। इससे सरदार साहव भी महाराजको वहाँ भेजने के लिए सम्मत हो गये। उन्होंने महाराज से कहा—आपको वहाँ लंबे समय तक रहना पड़ेगा; यह वात ध्यान में रखना। महाराज-भी जाने से पहले वड़ौदे जाकर अपने मित्रकल्प पुलिस कमिश्नर साहव से भी मिल आये और उन्होंने उनके साथ चलती हुइ वातचीत में यह भी प्रकट कर दिया कि मैं अव महुवा की ओर जा रहा हूँ। वहाँ के लोगों को ताड़ी-मद्य न पीनी चाहिए' यह समझाऊंगा। वहाँ सूवा साहव का अध्यादेश (आर्डिनेन्स) है; इसलिए संभव है मुझे पकड़ भी लें। यदि मैं-पकड़ा गया तो जेलमें मिलने के लिए अवश्य आइएगा। इस भलामण के साथ-साथ महाराजने यह भी कहा कि महाराजा साहव कितने अच्छे हैं, उन्होंने कैसे कैसे सुधार किये हैं। पर यह मद्य का पाप नहीं निकाला। कमिशनर साहव वोले—"राज्यको भी लोभ तो है ही न!" फिर भी यदि आप, लोगों को मद्य

न पीने का उपदेश देंगे तो इ..में कुछ अपराध नहीं होगा और इस विषय पर आप भाषण भी करेंगे तो भी आपको कोई नहीं पकड़ेगा ।

जब महाराज उठे तो उन्होंने इनके कन्धे पर हाथ रख कर कहा कि आप जायँ, आप पर भगवान् का हाथ है और आपको कुछ होगा भी नहीं ।

महाराज जब ब्रिटिश सीमा छोड़कर गायकवाड़ी प्रदेशमें काम करने गये थे तो पंड्याजी भी थोड़ी दूर तक इनके साथ गये थे । नदी आनेपर वापस हुए । उस समय उनकी आँखों-में प्रेमके आँसू थे ।

इस प्रकार महाराज रानीपरज प्रदेश में पहुँचे । इनकी पहली भेंट एक मंडीमें हुई । मद्यके ठेकेके आगे ए.. मंजे पर इस विभाग का फौजदार बैठा था । महाराज वहां जाकर उसी के मंजे पर एक ओर बैठ गये । पासमें टोले के रूपमें इकट्ठे हुए लोगों को अपनी वेदनाभरी भाषा में समझाने लगे कि मद्य पीने से क्या क्या हानियां होती हैं । इनकी बातचीत पूरी हो जाने पर फौजदारने गन्ने का रस मँगवाया । महाराज बोले —बिना पैसा का रस मैं नहीं पी सकता । फौजदार बोला—पैसे मैं दे दूँगा । महाराजने कहा, क्षमा कीजिए मुझे इसकी आवश्यकता नहीं ।

वहांसे चलकर आये महुवे । वहां के अधिकारी से मिलकर हटवाडे के अभियोग में पकड़े हुए सब को जमानत पर छुड़ाया ।

रात को वहाँ एक खुली भर करके दूसरे दिन ये 'व्यारा' जा निकले। इन्होंने सुन रखा था कि व्यारे के फौजदार को वहां के ठेकेवाले पारसियों ने अपने हाथ पर कर रखा है, जिससे वे अपढ़ और गरीब रानीपरज लोगों पर अपनी तानाशाही चला रहे हैं। फौजदार भी मद्य में सराबोर रहता था। व्यारे में एक मेला भरा हुआ था, ऐन समय पर महाराज वहां पहुँचे। इस अवसरसे लाभ उठाकर महाराजने वहां एक भाषण दिया। इसमें कहा कि इस विभाग में रानीपरज जाति पर जो अत्यंत त्रास हो रहा है उसके तथ्य हमारे पास पहुँचते हैं। वह त्रास किस किस प्रकार का है? वह स्वयंसेवकों, सिपाहियों या ठेके वाले पारसियों की ओरसे है? यह सब जांच करने के लिए मैं आया हूँ। गाँव गाँव घूम–घूमकर यह जांच मैं स्वयं करूँगा और जाँच पूरी होने पर इसका विवरण दूंगा।

महाराज वहाँ के गोपालजी वकील के यहाँ उतरे थे। वे वकील रानीपरज जाति के सच्चे साथी थे। सायंकाल महाराज के उतारे पर खोज हुई–'रविशंकर यहीं उतरे हैं?' थोड़ी देर में तो पुलिस कमिशनरने इस विभाग की जाँच के लिए भेजे गये एक सी. आई. डी. अधिकारी तथा वही फौजदार दोनों अंदर आये। गोपालजी वकीलने महाराजको फौजदार साहब का परिचय दिया। दूसरे सी. आई. डी. अधिकारी ने भी कहा कि मुझे भी रावबहादुर ने इस विभागमें जाँच के लिए भेजा है। आप जहाँ जहाँ जायँ मुझे साथ

लेते जायँ हम दोनों साथ ही घूमेंगे। महाराजने कहा—बहुत अच्छा। दोनो अधिकारी आभार मानकर बिदा हुए।

दूसरे दिनसे ही उस अधिकारी के साथ महाराज घूमने लगे। सारा व्यारा तालुका घूम मारा। फौजदार साहब ताड़-से सीधे हो गये। सी. आइ. डी. अधिकारी ने भी सच्ची वस्तुस्थिति का अभ्यास करके विवरण दिया। यात्रा के समय महाराजने रानीपरज प्रदेश में चलते हुए खादी केन्द्र भी इसे दिखाये थे। इसका विवरण रानीपरज जाति के लिए बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ।

महाराज को व्यारे में गोपालजी वकील मिल गये थे। पर महुवे में उन जमानत पर छोड़े हुए लोगों के लिए कोई भावनाशील वकील नहीं मिलता था। इसलिए वे बड़ोदे गये। वहाँ के प्रसिद्ध बारिस्टर (प्राड्वाक) देशपांडे सहाबसे मिले। उन्होंने पहले ही कह रखा था कि मेरे योग्य कोई काम—काज हो तो कहिएगा। महाराजनें यह छोटा-सा काम बताया; इस के लिए भी उन्होंने आने की उद्यतता दिखाई और कहा अंतिम अवधि (मुद्दत) पर मुझे खबर दीजिएगा मैं उपस्थित हो जाऊँगा।

वहाँ के अधिकारी के पास अभियोग चल रहा था। महाराजने उनसे वकील करने के लिए अवधि माँगी। पर उन्होंने अवधि दी नहीं और अभियोग चलाया। इससे महाराज को बहुत दुःख हुआ। क्योंकि देशपांडे साहब को खबर न दे सके थे। अवधि न मिलनेसे ठेकेवाले पारसी बाँसों उछले। जब निर्णय प्रगट हुआ तो

देखकर सब हक्के-बक्के रह गये। उन्होंने प्रत्येक रानीपरज को निर्दोष ठहराया था और पारसियों के बर्ताव की बहुत कटु टीका की थी। यह सुनकर सब को अचरज हुआ। महाराज ने निर्णय पत्र की प्रति माँगी तो उन्होंने कहा प्रति ब्रति नहीं मिलेगी। आप समाचार पत्रों में छपाना चाहते हैं न? अंतमें मर्यादा में रहकर छापने की सूचना के साथ उन्होंने प्रति देने का आदेश किया। महाराज सुनाते हैं कि ये मजिस्ट्रेट बहुत ही सहृदय थे पर ऊपर से अत्यन्त दबदबा (गेबदाब) रखते थे। उनके हृदय में गरीबों की प्रति प्रेम भरा हुआ था।

इस निर्णयसे रानीपरज लोगों के उत्साह और आनंद की तो बात ही क्या की जाय? व्यारे के अभियोगमें भी सब निर्दोष छूट गये। वहाँ के न्यायाधीशने भी ठेकेवाले पारसियों तथा सिपाहियों की टीका की थी। कष्ट पड़ने पर भी रानीपरज कार्यकर्ताओं का इस निर्णय से उत्साह और तेज बढ़ा। ऐसी पद-लित जाति को कुछ सहायता पहुँची–इस विचारसे महाराज को भी आनंद हुआ।

इन दिनों में ही सोनगढ़ समीपके बाजपुर गाँवके रानीपरज लोगों को कुछ ठेकेवाले पारसियोंने बहुत पीटा था। इस ओर के कार्यकर्ता शंकरभाईने यह समाचार महाराज को पहुँचाया। इसलिए महाराज सोनगढ़ जा निकले। इस समय प्रिन्स प्रताप-सिंहराव वहाँके जंगल में सिंह का आखेट (शिकार) करने आये

थे। वे अपने साथ हाथी भी लाये थे। वहां के रानीपरज लोगों से मिलने पर महाराज को विदित हुआ कि चार–चार आने दैनिक देकर इन लोगों को प्राणान्तक काम में क्ले जाया गया था। महाराजने प्रतापसिंहरावसे साक्षात् मिलने का विचार किया।

पर जब ये सोनगढ़ पहुँचे तो इन्हें दामनमें ही एक दूसरा दृश्य दिखाई दिया। मार्गमें २०–२५ गाड़ों की कतार लगी खड़ी थी। महाराजने पूछा—भाइयो! तुम गाड़े रोककर क्यों खड़े हो? उत्तर मिला कि हमें तीन दिनोंसे बेगार पर पकड़ रखा है; न अपने खाने का ठिकाना और न बैलों के चारे का ठिकाना। कुछ काम तो है नहीं, व्यर्थ बैठा रखा। दूसरेने हां–में–हां मिलाकर कहा—अजी, जब कोई काम नहीं मिला तो अब अफ़सर लोग अपने घरों के लिए रेत मँगाने लगे हैं।

यह बात सुनने के बाद तो महाराज प्रतापसिंहरावसे मिलने के लिए छटपटाने लगे। महाराज का उतारा एक डाक्टर के यहाँ था। उसके पास से विदित हुआ कि रेत चिटनवीसने मँगाई होगी। चिटनवीस का घर सामने ही था। डाक्टर और उसकी आपस में जान पहचान थी। इसलिए डाक्टरने उसे बुलाया। थोड़ी इधर उधर की बातें करने पर महाराजने कहना आरंभ किया कि इस प्रकार गरीब लोगोंको बेगार पर पकड़ना और उनसे घर के काम मुफ्त कराना निरा अन्याय है। सारी बात सुन लेने पर भी चिटनवीस चुप रहा। (उसकी पत्नी भी सुन रही थी)। वह बोल उठी कि मैं कहती नहीं थी, ये धोली टोपीवाले घूमते फिरते हैं। भाई, एक

गाड़ा रेत मँगाई है। इस पड़ौसवालेने खूब मँगाई है यह कहकर तहसीलदार के घरकी ओर अंगुली की। यह बात चल ही रही थी। इसी समय तहसीलदार साहब बाहर से घरमें घुसते हुए दिखाई दिये। इसलिए महाराजने कहा—चलो हम ही उनसे मिलें। तहसीलदार के बूट चौकीदार निकाल रहा था। इतने में महाराज आदि वहाँ जा पहुँचे।

साहबने प्रश्न किया—कैसे आना हुआ? महाराज बोले—आपसे काम है।

साहब—क्या काम है?

महाराज—आप बैठें तो कहूँ।

बड़े कर्मचारीने महाराज का परिचय दिया और सब बैठ गये। महाराजने पूछा कि वे गाड़ेवाले किसलिए बुलाये गये हैं।

साहब—महाराजा साहब आये हैं।

महाराज—उनकी ओरसे इन्हें बुलाने का आदेश है? आदेश हो भी तो इनके खाने-पीने की सुविधा देखनी चाहिए या नहीं? इतने गाड़ों की आवश्यकता ही क्या है?

साहब—कैसे पता चले कि कितने चाहिए?

महाराज—मैं प्रताप सिंहराव से मिलना चाहता हूँ और यह बात उनके कानों डालना चाहता हूँ; वे तो यहाँ हाथी भी लाये हैं। उन्होंने इनका रेलगाड़ी का भाड़ा भी भरा होगा। क्या वे गरीब गाड़ेवालों की वृत्ति के लिए 'ना' कहते हैं?

साहब—ये तो हरामखोर पटवारी बुला लाये हैं। इतने अधिक गाड़ों की क्या आवश्यकता थी? यह कहकर उसने दूसरों के सिर दोष मढ़ा।

महाराज—इन्हें नियमानुसार जितने पैसे बैठते हों उतने दे दें, चाहे पटवारियों ने ही उन्हें क्यों न बुलाया हो। पटवारी भी आपके आदेशानुसार ही काम करते हैं।

साहब—इन्हें तो बेगार पर बुलाया गया है, पैसे कैसे दे सकते हैं?

महाराज—मुझे बेगार कराने का विधान दिखाइए।

साहब—वह तो कचहरी में होता है।

महाराज—कचहरी में से मँगवाकर दिखाइए; आपको तो जीभ चलानी है और कुछ नहीं करना।

इतनी मत्था-पच्चीके बाद उसने कुढ़ते हुए मनसे पटवारी को बुलाया, धमकाया और तीन दिन का सीधा देने एवं सरकारी घासमेंसे घास देने का आदेश किया।

सब कुछ हो जाने के बाद महाराज बोले आप तो ठंडी छाया में बैठे-बैठे आदेश दे देते हैं, पर इन लोगों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है यह जानते हैं? तीन दिन इन गाड़ेवालोंने कितने कष्ट में निकाले होंगे? साथ साथ महाराजने दूसरी बात भी छेड़ी कि आपके यहाँ रानीपरज लोगों का अभियोग चल रहा है। कितने समयसे आप अवधि डालते रहते हैं। उससे अच्छा है कि आप कह दें अभी अभियोग नहीं

चलेगा। उन बेचारों को घरके काम-धंधे छोड़कर यहां तक टांगे तुड़ाने तो न आना पड़े। तहसीलदारने कहा अच्छा, मैं देखूँगा।

इसके बाद वह अभियोग दूसरी अवधि तक चला और सब निर्दोष छूट गये।

३९ फिर खेड़े जिलेमें

सन् १९२९ में महाराज वापस खेड़े जिले में आये। बारडोली की लड़त के बाद खेड़े जिलेमें कृषिकर की नये सिरेसे आंकनी होनेवाली थी, वह स्थगित कर दी गई। पर इस वर्ष महेमदाबाद और मातर तालुके में शीत कालिक कृषि की बहुत क्षति हुई थी। फिर भी सरकार पूरा कर लेना चाहती थी। मा तालुका कुछ वर्षों से घिसता ही चला आ रहा था। इसलिए लोग कर भरने में असमर्थ थे। इस कारण सरदार साहबने पं होंके तथा महाराज को वहाँ की स्थिति की जाँच करने भेजा। ड्या जी

महाराज और पंड्याजीने सामान्य जाँच वर्तमान खेड़े जिले के कलेकटर मिस्टर मास्टर से मि के। फिर ये संदेश पहुँचाया और बताया कि इस वर्ष की। सरदार का (सौंफ तथा कपासमें) कीड़ा लग गया है तकालिक कृषि में गई। इसलिए कृषिकर स्थगित रखिए। जिससे फसल निष्फल इसके विरोध में जनता को आंदो। यदि ऐसा न होगा तो लन उठाना पड़ेगा। कलेक्टरने कहा कि वह हम देख लेंगे।

महाराज आदि जिस समय मातर तालुके में घूमे थे; उस समय गुजरात-विद्यापीठ की ओरसे श्री जे. सी. कुमारप्पा तथा वहांके ग्रामसेवक-विद्यालय के विद्यार्थी जन भी इस तालुके की आर्थिक जाँच कर रहे थे। उनके मुखसे भी इन्होंने किसानों के दुःख की कहानी सुनी। तालुके के लोग सहकारी मंडलियों के ऋण में डूब चुके थे। इस स्थिति में इनके लिए कर भरना कठिनतर काम था। लिंबासी के आगेवान श्री ईश्वरभाई मातर तालुके के गाँव-गाँव महाराज के साथ घूमे थे। महेमदाबाद तालुके में भी इसी प्रकार जाँच की गई। वहाँ इनके साथ प्रभुदास ठक्कर घूमे थे। उन्हें भी विश्वास हुआ कि लोग कर भरने में सर्वथा असमर्थ हैं।

महाराज और पंडचाजीने अपना विवरण तैयार करके सरदार साहब तथा जिला क्लेक्टर के पास भेज दिया। गांधीजी को भी परिस्थिति से अवगत किया गया।

इस विषय में सरदार साहब उत्तर विभागके कमिशनर से बाद में मिले। कमिशनर की सूचनासे स्वयं क्लैक्टर गावों

अहमदा... रने निकला। महाराज भी उनके साथ-साथ घूमने लगे।

में जाँच ...

...चा गाँव में क्लेक्टर साहबने गाँव लोगों को इकट्ठा

अकल... (उपज) के विषय में पूछताछ करना आरंभ

किया और फसल... पास में ही बैठे थे। उत्तर देनेवाले भाई की

किया। महाराज भी ... यह देखकर साहब को संदेह हुआ कि

दृष्टि महाराजकी ओर गई। ... के अनुसार ही उत्तर देता है।

यह व्यक्ति महाराजकी सम्मति

इससे उस व्यक्ति से उसने पूछा कि तुम्हें रविशंकर की ओर देखना चाहिए या मेरी ओर ? तुम से ये प्रश्न पूछते हैं या मैं ? "आपकी यह टीका मेरे लिए अपमानजनक है; यह कहकर महाराज वहाँसे उठ खड़े हुए। फिर सरदार से मिले। यह बात कमिशनरमें तक पहुँची। कमिशनर की ओरसे क्लेक्टर को सूचना मिली कि ऐसा झूठा संदेह नहीं रखना चाहिए। क्लैक्टरने महाराज को पुनः बुलाया और उस बनाव के लिए लज्जा प्रदर्शित की। इसके अनंतर जाँच के समय महाराज क्लेक्टरको मोटर में बैठकर साथ–साथ घूमने लगे।

अंतमें विशेष अधिकारी श्री भट्टने इस वर्ष का कर स्थगित करने के उपरांत मातर और महेमदाबाद ताल्लुके के कृषिकर में सदा के लिए २५ प्रतिशत कमी करने की भलामण (सिफारिश) की थी। पर इसके बाहर आने से पहले ही देशव्यापी लड़त सामने आती दिखाई दी। इसी समय में सरदार साहबने भरूच (भड़ौच) में एक भाषण किया था। उसमें से इस लड़त की भनक सुनाई दी थी। सरकारको भी सरदार साहब का भाषण खटका था। पर बारडोलीकी लड़त के बाद जनता में सरकार के सामने लड़ने की आकांक्षा जागी थी। नवयुवक पूर्ण स्वतंत्रता के लिए छटपटा रहे थे।

४० उत्तर गुजरातके लिए माँग।

महाराज एक बार किंखलोड़ में अपने यजमानों से मिलने गये थे। वहाँ वड़ौदाराज्य के पुलिस कमिशनर की ओर से

एक सवार आया। उसने महाराज के हाथ में एक चिट्ठी दी। उसमें लिखा था कि चिट्ठी देखते ही तुरंत मिलने आइए। महाराज तुरंत वड़ौदा पहुँचे और पुलिस कमिशनर से मिले। उनके पास महेसाणा प्रांत के सूबे का सात पृष्ठ का एक लंबा विवरण आया था। वह उन्होंने महाराज के सामने रखा। महाराज बोले —मैं कहाँ अंग्रेजी जानता हूँ?

उत्तर गुजरात में वावोल नामक एक सारा गाँव किसी ठाकरडेने जला डाला था। उसका वह विवरण था। कमिशनर साहबने कहा कि आप महेसाणा प्रांत में जायँ। यहाँ तो बहुत काम हुआ, पर वहाँ तो बिलकुल अँधेर है। आपको वहाँ के काम के लिए चाहिए तो मैं पाँच हजार रुपये दे देता हूँ। महाराजने उत्तर दिया कि मुझसे इतने बड़े प्रदेशमें काम नहीं हो सकेगा। साहबने कहा—आवश्यकता पडे तो साथ में दूसरा कोई व्यक्ति रखें।

महाराज—सरदार का आदेश मिल जाय तो मैं वहाँ जा सकूं।

कमिशनर साहब—क्या मेरा संबंध आपके साथ कुछ कम है?

महाराज—आप तो हैं ही; पर सरदार का संबन्ध कुछ और प्रकार का है। अन्तिम उत्तर मैं फिर दूंगा—ऐसा कहकर महाराज वहाँ से विदा हो गये। अनन्तर महाराज सरदार साहबसे मिले।

सरदार बोले कि हमारे सिर पर जल्दी या कुछ विलंब से

बड़ी लड़ाई आ रही है। दूसरे; उस अपरिचित प्रान्त में आपकी परिचिति भी नहीं। वहाँ किस प्रकार काम हो सकेगा ?

महाराज बोले कि जहाँ परिचय न हो वहाँ जाने पर वह हो ही जाता है। हाँ, पाँच–दस वर्ष मुझे वहाँ से बुलाना नहीं चाहिए। तभी वहाँ का काम कुछ ठिकाने लगेगा।

सरदार साहबने कहा–यह लड़त तो थोड़े समय में आई ही समझें ?

महाराजने ऐसा विचार किया था कि सूरतवाले छगनलाल पटेलको इस विभाग में काम करने के लिए नियुक्त करना चाहिए। इसलिए ये उसे लेकर उत्तर गुजरात में वड़नगर के पासके एक छवलिया गाँवमें गये। वह गाँव पक्का चोर गाँव गिना जाता था। उस अपरिचित और चोरगाँव नामसे कुख्यात गाँवमें भी महाराज का भाव पूछनेवाला एक व्यक्ति मिल ही गया। उसके यहाँ जाकर महाराजने खिचड़ी बनाई और दोनोंने आरोगी।

उसी दिन इस गांव में एक स्त्री कूएँमें गिरकर मर गई थी। पुलिस के आनेसे पहले गांव के लोग–उसके पैर से रस्सी उलझ गई और वह कूएँमें जा पड़ी, ऐसी बात गढ़ रहे थे।

महाराज बोले कि ऐसी सच्ची-झूठी बातें बनाने की अपेक्षा साफ–साफ कह दो–'घर में बोलचाल हो गई और वह रूठ कर कूए में जा कूदी' जब अधिकारी आवेगा तो मैं भी उपस्थित रहूंगा। किंतु महाराज की बात लोगों के गले नहीं उतरी।

फौजदार आया। महाराज भी चौरेमें गये। वह महाराज को पहचानता नहीं था। महाराजने तो जो बना था वह सच-सच फौजदार से कह दिया। उसने पूछा—आप कहांसे आ रहे हैं? महाराजने उत्तर दिया—चरोत्तर में से (खेड़े जिलेके चारूतर विभाग को चरोत्तर कहते हैं। चारू और सारू शब्द समानार्थक हैं। सारु=अच्छा)। फौजदार किसलिए आये हैं?
महाराज—गाँव देखने केलिए।

महाराजके उत्तर से उसे कुछ अचरज तो हुआ। वह बोला—आप इन लोगों को पहचानते हैं? पक्के चोर हैं। बीचमें एक जन बोल उठा कि साहब, आपके कहे बिना कभी हम चोरी करने गये हैं? अन्तमें आकस्मिक दुर्घटना के नामसे यह अभियोग निपटा दिया गया।

इस प्रसंग से महाराजने सोचा कि यह प्रदेश भी रहने जैसा तो है ही। आना हो तो लम्बे समय की तैयारी करके ही आना चाहिए। किन्तु इसकेलिए अनुकूल संयोग नहीं थे। इसलिए उस समय तो इन्होंने यह विचार छोड़ दिया—

४१ सरदार रास में से पकड़े गये।

सरदारका भरूच (भड़ोच) का भाषण बाँचने के बाद महाराज सोचते थे कि अब जब चाहे लड़ाई छिड़ जायगी। इससे पहले एक बार सरदार साहब कांठाविभाग में आ जायँ और यहां के लोगों से दो शब्द कह जायं तो बहुत अच्छा

रहे। इसके अनुसार ही श्री आशाभाई ने सरदार साहब की अनुमति मँगाकर कनकपुरा गांवमें एक विशाल सभा योजित की। सरकार तो इसी ताक में थी। उस समय कलेक्टर का पडाव बोरसद में था। वह चाहता था कि सरदार का भाषण न होने दूं।

महाराज और पंड्याजी इन दिनों महेमदाबाद में रहते थे। सरदार साहब एक रात इनके साथ व्यतीत करके अगले दिन पंड्याजी के साथ कांठाविभाग की सभामें संमिलित होने को निकले। वह ७ मार्च १९३० का दिन था। रास्ते में रास गांव पड़ता था। वहीं इनके भोजन की व्यवस्था की गई थी। भोजनके बाद तुरन्त कनकपुरे पहुँचना था। रासके कार्यकर्ता श्री आशाभाई ने सरदार साहब से विनति की—आप रास के लोगों से दो शब्द न कहते जाइएगा ? सरदार साहब को भी प्रतीत हो रहा था कि कुछ नई—जूनी जरूर होगी। फिर भी आशाभाई का आग्रह देखकर इन्होंने कहा—लोग तैयार हों तो बैठाओ। एक-आध घंटे तक कनकपुरे पहुँच जायँगे न ? आशाभाई बोले अवश्य।

तुरन्त रासमें नगाड़ा पिटा और वड़के नीचे सारा गांव इकट्ठा हो गया। पुलिसने प्रबन्ध कनकपुरे में किया था। वहाँ आस-पासके आठ-दस गांव इकट्ठे हुए थे। रासकी यह सभा तो अचानक योजित हो गई। फिर भी समाचार मिलते ही

पुलिस तथा दहेवाण का ठाकुर मोटरें दौड़ाते रास की सभामें आ पहुँचे ! इनके साथ मैजिस्ट्रेट भी था। सभा का काम आरंभ होने से पहले ही मैजिस्ट्रेटने स्वयं सरदार साहब के हाथ में नोटिस दिया। नोटिस देते समय उसका हाथ काँप रहा था। नोटिस में लिखा था कि आप भाषण न करें। किन्तु सरदार साहबने कहा कि मैं तो भाषण अवश्य करूँगा।

इसके ये बाद लोगों को सम्बोधित करके कहने लगे—मुझे आप लोगों के साथ बातें न करने का नोटिस दिया गया है। यह कैसे हो सकता है ? मैं आप लोगों के साथ बात न करूं ? मुझे पकड़ लिया जाय तो आप घबराइएगा नहीं, पूर्ण शांति रखिएगा। मेरा विचार तो गांधीजी के जेल जाने के बाद सत्याग्रह करने का था। पर लक्ष्मी टीका करने आवे तो क्या मुंह धोने के लिए जाया जाता है ? मुझे और कुछ नहीं कहना है। जैसे गांधीजी कहें वैसे ही चलना। सरदार साहब के इसके आगे बोलने से पहले ही पुलिस अधिकारीने सिपाहियों से परेड कराई और लोगों में पुलिस का अस्तित्व सिद्ध किया। पुलिस अधिकारीने सरदार को बन्दी घोषित किया। इस प्रकार रास गांव की कोख में से सरदार साहब को पकड़ा गया। इससे रासके नर-नारियों के हृदय घायल हो गये। इन्होंने संकल्प किया कि जो कुछ सरकार को करना हो करे। पर जब तक लड़त चलेगी तबतक पीछे पाँव नहीं देंगे। बादमें जब 'नाकर' की लड़ाई

छिड़ी तो उसमें रास सबसे आगे रहा। सरदार साहब को वहां से बोरसद ले जाया गया। उसी दिन अभियोग चलाकर तीन मास का कारावास सुना दिया गया।

यह समाचार महाराजने महेमदावाद सुना और सुनकर इन्हें दुःख भी हुआ। एवं आनन्द भी। सरदार पकड़े गये इससे दुःख हुआ और लड़ाई आ गई इससे आनन्द हुआ।

सरदार साहब के पकड़े जाने के दूसरे ही दिन साबर-मती की रेतीमें एक विशाल सभा भरी गई। गांधीजी की अध्य-क्षता में जनताने सरदार साहब को अभिनंदन दिया। गांधीजी ने कहा कि हमें सरदार के पगचिन्हों पर चलना है। इस घटना से गुजरात के वातावरण में उष्मता आई।

मातर और महेमदावाद तालुके क जाँच का काम अभी चल ही रहा था। महाराज आदि घर-घर में जाकर आंकडे इकट्ठे कर रहे थे। दोनों तालुके ऋणसे दब चुके थे। जिले भर के किसानों की स्थिति प्रायः समान ही थी। महाराजने इनकी वास्तविकता गांधीजी के सामने रखी थी। गांधीजी इसका शाश्वतिक सुलझाव खोज रहे थे। इनके मनमें 'दांडी-यात्रा' का विचार स्फुरित हुआ था। महाराज को भी प्रतीत हुआ कि इस थिगली मारने की अपेक्षा अच्छी लड़त ही उठनी चाहिए। महाराज और पंड्याजी अब गांधीजी के पास हीआ गये थे। गांधीजी नमक-सत्याग्रह का विचार करते थे। यह देखकर पंड्याजीने महाराजको धरासणा जाँच करने के लिए

भेजा। महाराजने वहाँ जाकर नमक के बड़े-बड़े पहाड़ देखे। वहाँ जानेके लिए प्रतिबंध था। पर महाराज तो ठेठ तक पहुँच गये। नमक किस प्रकार बनाते हैं वह देखा। वहाँ के कर्मचारियों को क्या पारिश्रमिक मिलता है, इसकी जाँच की। खान-संबंधी दूसरे बहुतसे तथ्य प्राप्त करके इन्होंने गांधीजी से निवेदित किये। स्व० महादेवभाईने भी इससे पहले जितने तथ्य प्राप्त कर सकते थे उतने प्राप्त कर लिये थे। सबके साथ गुप्तगु [गुप्ता गौः=वाणी यस्मिन् कर्मणि तत्] परामर्श करने के बाद गांधीजीने 'दांडीयात्रा' करने का निर्णय प्रगट किया। उस समय स्व० मोतीला नेहरू, स्व० प्रभाशंकर पट्टणी और मरहुम अब्बास साहब तैयबजी भी वहाँ आ पहुँचे थे। दिन-पर-दिन वातावरण में उत्साह का संचार होता जा रहा था। जहाँ-तहाँ ऐसी दंतकथाएँ चल रही थीं कि अब गांधीजी को पकड़ेंगे।

सरदार सहाब के पकड़े जाने के बाद आश्रम की प्रार्थना में नागरिक लोग इतने आने लगे थे जिससे प्रार्थना-स्थान छोटा पड़ने लगा। प्रतिदिन प्रार्थना में गांधीजी के मुखमें से ऐसी लोकोत्तर वाणी झरती थी जिससे जनता में नया-नया चेतन उँडेला जा रहा था। ठीक अंतिम दिनों में तो जन-समूह के कारण प्रार्थना-सभा का स्थान नदीकी रेतीमें ही व्यवस्थित किया गया। किसी महाभिनिष्क्रमण का उपक्रम हो रहा हो-ऐसे ये दिन थे।

४२ ये पुण्य दृश्य

सन् १२ मार्च १९३० के दिन गांधीजी साबरमती-आश्रम में से एक लंम्बे प्रस्थान का उपक्रम करनेवाले थे। यह पदाति-प्रस्थान (पैदल-यात्रा) गुजरात को चीरता हुआ दांडीतट पर पहुँचने वाला था। वहाँ समुद्रतट पर सत्याग्रह की नींव डाली जानेवाली थी। उसके बाद ही देशभर में सत्याग्रह—आंदोलन का आरंभ होना था। स्वतंत्रता—संग्रामके लिए नवयुवक एक वर्ष से धमाचौकड़ी मचा रहे थे। युवक-परिषदें सभा-मंचों पर सिंहगर्जना कर रही थी। परन्तु गांधीजी आज तक उन्हें रोकते रहे थे। आज वही गांधीजी स्वतंत्रता—संग्राम का नेतृत्व ले रहे थे। लाहौर-महासभा की पूर्ण-स्वतंत्रता के आदेशने देशभर में एक नया ही वातावरण पैदा किया था। गांधीजी के एक-एक शब्द में से मानो ज्वालाएँ निकल रही थीं। दांडीयात्रा के पहले दिन के सायंकाल हजारों की संख्या में साबरमती की बालुका पर इस संत पुरुष ने कहा था कि आश्रम में यह मेरा अंतिम भाषण है। जब स्व-राज्य मिलेगा तभी वापस आऊँगा। तबतक मैं इस स्थान का त्याग करता हूँ।

इन दिनों की प्रार्थनाओं के दृश्य बहुत भव्य थे। नगरमें से सैंकड़ों मनुष्य रातको साबरमती आश्रम में आते थे। अंतिम दिन प्रार्थना पूरी हो जाने पर भी लोग वहां से खिसके नहीं। सबके मनमें आशंका थी कि आज रातको गांधीजी को सरकार

पकड़ ले जायगी। लोग नदी की रेती में ही पड़े रहे। पर गांधीजी तो चाहे कैसी भी किंवदंतियां चल रही हों, उन्हीं में अपना काम करते चले जाते थे। अस्सी आश्रमवासियों को अपने साथ चलने में इन्होंने स्वीकृति दी। उनके लिए कठोर नियम बना डाले। ये सैनिक भी अपने-अपने मस्तक काट कर देने की उद्यतता के साथ गांधीजी की टुकड़ी में संमिलित हुए। दूसरे अच्छे-अच्छे इस टुकड़ी में भरती होने के लिए आये पर किसीको अनुमति नहीं मिली। गांधीजीने इतना ही कहा कि मैं सबको अवसर देनेवाला हूँ। थोड़ी देर धैर्य रखिए। रात बीत गई और सवेरा हो गया, पर गांधीजी को किसीने पकड़ा नहीं।

ता. १२ को सवेरे आश्रम के बाहर सार्वजनिक मार्ग पर कंधे पर झोला लटका कर एक सैनिक ढबसे गांधीजी खड़े हो गये। इनके पीछे हाथमें तंबूरा लेकर पंडित खरे और इनके पीछे दूसरे ७८ सैनिक सुसज्जित थे। पूज्य कस्तूरबाने अपने शुभ हाथसे गांधीजी तथा अन्य सैनिकों के मस्तक पर कुंकुम अक्षत से तिलक किया। रामनाम की धुन आरंभ हुई। सारा वातावरण पवित्र गंभीर और पुण्य-स्मरणीय था। 'महात्मा गांधीकी जय' 'भारतमाता की जय' के जय-घोष में इन यात्रियों को बिदा दी गई। सारा अहमदाबाद इस समय साबरमती-आश्रम के मार्ग पर उमड़ पड़ा था। जब यह ऐतिहासिक यात्रा आरंभ हुई तो आश्रम से लेकर एलिसब्रिज तक टुकड़ी के दोनों ओर मानव-

समुदाय के बिना दूसरा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। इन आंखों में कुछ और ही उत्साह दिखाई देता था। गांधीजी के पग-पग पर नई शक्ति जाग्रत हो रही थी। सेठ श्री अंबालाल-सराभाई गांधीजी के लिए एक बढ़िया घोड़ा भेंट लाये थे। गांधीजी उस पर चढ़नेवाले तो नहीं थे। किंतु प्रेमभरे आग्रह के वश होकर उसे भी साथमें ले लिया गया था। कैलिको मिलके आगे इनका स्वागत किया गया। यह दृश्य ही ऐसा था कि इसे देखते ही लोगों में अनूठेभाव और अनूठी प्रेरणाएँ जागृत होती थीं।

गांधीजी की टुकड़ी के किसी गाँवमें पहुँचने से पहले पूर्व–प्रबंध के लिए गुजरात–विद्यापीठ की ओरसे दस–दस स्वयं-सेवकों की दो अरुण टुकड़ियां निकल चुकी थीं। महाराज भी इन टुकड़ियोंके साथ पहले से ही पहुँच गये थे। गांधीजी और इनकी टुकड़ी के आने से पहले इनका योग्य स्वागत हो एवं लोगोंमें लड़त के लिए उद्यतता आवे ऐसी समझ देते–देते ये व्यवस्था करते थे।

असलाली, बारेजा, नवागाम, वासणा, नड़ियाद आदि मार्ग में आनेवाले सब गाँवों में आस–पास के बीस–बीस, पच्चीस-पच्चीस गांवों के लोग इकट्ठे हो जाते थे। गांधीजी के मुख में से झरती हुई वीरवाणी को सुनकर उनके मनमें कई–एक संकल्प दृढ़ होते थे। इस पदातिप्रस्थान के पग–पग पर प्रजामें नया बल बढ़ रहा था। नवयुवकों का मन मस्तक दे देने को करता था।

किसानों में समय आने पर मर–मिटने की भावना आ रही थी। सरकारी नंबरदार पटवारियों का सरकारके साथ के अपवित्र संबंधमें से हाथ खींचने को मन करता था। इस प्रस्थान के समय गांधीजी का कामभार तो बढ़ता ही चला जाता था।

नड़ियादमें गांधीजी की टुकड़ी को संतराममन्दिर की धर्मशाला में उतारा दिया गया। गांधीजी रातको मन्दिर की आकाशी में सो रहे थे। आधी रातमें वे एकाएक जाग उठे और कुछ लिखने बैठे। उस समय वहां लालटेन नहीं थी। महादेवभाई बहुत रात तक जागे थे और सो रहे थे। इसलिए गांधीजीने उन्हें जगाया नहीं। किन्तु चांद के उजाले में ही लिखने लग पड़े। इतने में महादेवभाई जाग उठे और लालटेन सुलगाई। महाराज सुनाते हैं कि जब समय मिले उनका लिखना चलता ही रहता था। इस पर से आप कल्पना करें कि बापू के हृदय में उस समय कैसे–कैसे भाव उठते होंगे।

नड़ियाद से बोरियावी और बोरियावी से आणन्द। यहां इन्हें चरोतरशिक्षण–समिति के भवन में उतारा गया। यहां की खुली सभामें गांधीजीने श्री मोतीभाई अमीन की प्रवृत्तियोंका बहुत बखान किया। यहां एक दिन विश्राम लेने के लिए रुके। दूसरे दिन टुकड़ी नापे होती हुई बोरसद पहुँची। बोरसद के हाईस्कूल में इन्हें उतारा दिया गया। यहां की खुली सभामें गाँव–गाँव का मानव–समुदाय उलट पड़ा था। यात्रामें ज्यों–ज्यों एक–एक

गाँव आगे बढ़ते जाते थे त्यों–त्यों गांधीजी के मुखमें से तेज की चिनगारियां निकलती थीं। यहां इन्होंने कहा था कि इस साम्राज्य का अंत करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। यदि मैं जीवित न रहा तो मेरे विचार इसका अंत कर देंगे। इस समय के इनके भाषण तो मृतकों में भी प्राण–संचार कर रहे थे। ज्यों–ज्यों दिन बीतते जा रहे थे त्यों–त्यों गुजरात एवं सारे देशमें तेज और जागृति की नई–नई लहरें उठ रही थीं पर सरकार इन्हें पकड़ती नहीं थी। बोरसद से रास होकर ये कनकपुरे आये। यहां के राजपूत लोगों के समक्ष इन्होंने निर्भयता का महत्त्व, लोकधर्म और बहिष्कार की अहिंसक शक्ति के विचार रखे। इसी सभामें इन्होंने इस दांडी–यात्रा का मर्म भी समझाया। यहां पर खेड़े जिले की सीमा समाप्त होती है। मही नदी को लांघकर भरूच जिले में प्रविष्ट होते हैं। खेड़े जिले के सब कार्यकर्ता एवं अन्य जनसमुदाय मही नदी के टीलों पर गांधीजी को विदाई देने के लिए हजारों की संख्या में खड़ा था।

महाराज इस समय का वर्णन करते हुए सुनाते हैं कि यह रातका समय था। नदी में पानी उतरने लग पड़ा था। बदलपुर के एक भक्तहृदय सज्जन रघनाथजीने गांधीजी को नदीपार उतारने के लिए ४०० रुपयों में एक नौका खरीदी थी और दूसरी नौकाएँ भी मँगाई थीं। रात का यह दृश्य अनुपम था। एक ओर टेकरों पर हजारों लोग खड़े थे। किनारे पर मसालों और धूनियों

का प्रकाश हो रहा था। पानी में भाँति-भाँति के प्रतिबिंब पाड़ती हुई तीन नौकाएँ नदी पार कर रही थीं। जैसे राम-चंद्रजीने वन जाते समय गंगा पार की थी; वैसा ही यह धीर-गंभीर प्रसंग था। रघनाथभाई का भाव भी रामायण में वर्णित गुह नाविक का-सा ही था।

गांधीजीकी नौका में इतने अधिक लोग बैठ गये थे कि दुर्घटना हो जाने का पूरा-पूरा भय था। पर भगवान्‌की कृपासे सब कुशलता-पूर्वक पार उतर गये। नदी का पानी जिस समय तक सोचा था उससे भी बहुत पहले उतर गया। जिससे नदीका लगभग दो मील का पाट तो कीचड़ खूंदते हुए पैदल लांघना पड़ा।

गांधीजी उस दिन सात कोस तो चले ही थे। सारे दिन के कार्यक्रमों और पैदल-यात्राके बाद दो-मील कीचड़-खूंदना इनके शरीर के लिए बहुत अधिक कहा जा सकता है। फिर भी साथियों के कंधे पर बैठ जाने की विनति इन्होंने मान्य नहीं रखी। अपने अंगीकृत संकल्पानुसार कीचड़ खूंदते-खूंदते रात के ग्यारह बजे कारेली की रेतीली भूमि में पहुँचे। इसी मार्ग से रातके बारह बजे पंडित जवाहर लाल नेहरू आनेवाले थे। उन्हें लिवा लाने के लिए महाराज आई हुई नौका में ही वापस चले गये। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था त्यों-त्यों नदीका पानी उतर रहा था और कीचड़ खूंदने का पाट बढ़ता जा रहा था। जवाहरलाल नेहरू जैसों

को ऐसा कीचड़ खूंदना जीवन में कब मिला होगा ? उन्हें धोती ऊँची उठाकर चलने की टेव ही कहाँ ? इसलिए घुटनों तक पानी में ही उनकी धोती भीगती जा रही थी। उन्होंने चलते-चलते पूछा— "महात्माजी कितनी दूर हैं ?" महाराज बोले—सामने प्रकाश दिखाई देता है वहाँ।

अपनी मोटर उन्होंने कनकपुरे के टेकरे पर खड़ी कराई थी। और वे गांधीजी से मिलकर तुरंत वापस आने की धारणा रखते थे। पर तीन मील का कीचड़ खूंदकर जब पड़ाव पर पहुँचे तो रात के दो बज गये थे। गांधीजी सो गये थे। जवाहर के आने पर जाग उठे। सवेरे के चार बजे की प्रार्थना की घंटी बजी; तबतक ये युवक और बूढ़ा, जन्य-जनक की भाँति पास-पास बैठ कर न जाने क्या-क्या बातें करते रहे होंगे ?

प्रार्थना के बाद कलेवा करके यात्रा तो नित्य के नियमानुसार आगे बढ़ी। खेडे जिले के कार्यकर्ताओं ने बापूकी आज्ञा ली। बापू और उनकी मंडली अब भरूच जिलेके कार्यकर्ताओं को सौंप दी गई। जवाहरलालजी बहुत थक गये थे। इसलिए जिस रास्ते से आये थे उससे न लौटकर वे सीधे भरूच गये और महाराज उनका संदेश तथा चिट्ठी लेकर जहाँ वह मोटर खड़ी थी वहाँ की ओर चल पड़े।

४३ नमक सत्याग्रह

यात्रा के दिनों बोरसद और महेमदाबाद तालुकों में पर-

स्पर मुखीपन से त्यागपत्र देने की प्रतियोगिता (स्पर्धा) चल रही थी। इसमें बोरसद तालुका नंबर मार गया। किंतु पटवारियों के त्यागपत्र देने में महेमदाबादने पहल की। महेमदाबाद तालुके के अब कुछ ही गाँव ऐसे रह गये थे; जहाँ के मुखियोंने त्यागपत्र नहीं दिये थे। महाराज गाँव-गाँव घूम-घूम कर गांधीजी का संदेश फैलाते थे। इनकी सहायता के लिए भाई प्रभुदास और गोपालदास दो जन थे।

छठी अप्रैल को गांधीजीने दांडीतट पर एक मुट्ठी नमक उठाया। इसके साथ ही देशभर में नमक पर का नियमन भंग हुआ समझा गया। देशके कोने-कोने में नमक-सत्याग्रह आरंभ हो गया। जहाँ समुद्र या खाड़ी थी वहाँ नमक बनाने की क्यारियां बनाई गईं। जहाँ खारी भूमि थी वहाँ से मनोंभर खारी मिट्टी बुहार ले आये। जहाँ ऐसी कोई सुविधा नहीं थी वहां समुद्र का पानी उबालकर खुल्लम-खुल्ला बाजारों में नमक बनाया गया। सरकारने भी यह आह्वान (ललकार) सहन कर लिया। उसने गांधीजी या उनकी टुकड़ी का एक भी व्यक्ति पकड़ा नहीं। किंतु देशभर में दमनचक्र चल पड़े। लाठियां चलीं, हड्डियां टूटीं, मस्तक फूटे और हथकड़ियां लगीं।

लसुंद्रा महेमदाबादसे २० मील दूर है। महाराज, स्व. फूलचंदभाई और स्व. गोकुलदास बापू पहले से ही वहां की खारी-भूमि देख आये थे। लसुंद्रा जाकर नमक-सत्याग्रह करने का

इनका कार्यक्रम वन चुका था। पच्चीस–पच्चीस की चार टुकडियाँ लसुंद्रा, कठलाल, कठाणा और हलधरवास में सज्जित कर रखी थीं। पहले दिनकी पहली टुकड़ी महाराजकी नायकता में निकलनेवाली थी। श्री छोटालाल व्यास भी अपनी एक टुकडी लेकर उमरेठ से आ पहुँचे थे। सबने मिलकर यह निश्चित किया कि आगेवान (नायक) नमक न बनावे मार्ग दर्शन करने के लिए पीछे रहे। पर इसमें महाराजने एक पणबंध किया कि यदि लाठी–प्रहार हो तो उस समय वह पीछे न रहे। इन का यह पणबंध सबने स्वीकारा। राष्ट्रियगीत गाती हुई पहली टुकड़ी आगे बढ़ी। उस समय महाराज पास के एक टेकरे पर खड़े खडे सब देख रहे थे। थोडी देर के बाद फौजदार तथा पुलिस इन्सपैक्टर इनके समीप आये। दूसरे किसीका नाम तक न लेकर उन्होंने इन्हें ही बंदी घोषित किया। स्वयंसेवक और सिपाहियों में पारस्परिक नमक की छीना–झपटी चल रही थी। यह दृश्य देखने के लिए आस-पास के गांवों में से हजारों लोग आये थे। एक स्वयंसेवक के पास से नमक खोसने के लिए एक सिपाही को इसके साथ मल्लयुद्ध करना पड़ा। वह स्वयंसेवक धरती पर जा पड़ा पर हाथ में का नमक नहीं छोडा। एक स्वयंसेवक ऊँचे–ऊँचे पुकार रहा था कि चाहे टुकडे–टुकडे कर दो; पर मैं पीछे हटने का नहीं। वातावरण ऐसे रंगमें आ गया था कि ज्यों–ज्यों छीना-झपटी बढ़ती जाती थी त्यों–त्यों स्वयंसेवकों का उत्साह भी बढ़ता

जाता था। जहाँ--तहाँ 'वन्दे मातरम्' और 'महात्मा गांधीजी की जय' के घोष सुनाई दे रहे थे।

महाराज को पकड़ कर पुलिस के तंबू के पास ले गये थे। इनकी देखभालके लिए छोटालाल व्यास गये तो इन्हें भी बंदी घोषित कर दिया गया। नमक तो दूसरोंने भी लिया था, पर किसी को पकडा नहीं गया। महाराज को यहांसे महेनदावाद ले गये और दो वर्ष का कारावास एवं २००रुपये दंड हुआ। यदि दण्ड न भरें तो तीन महीनेका अधिक कारावास किया गया। वहांसे इन्हें साबरमती ले गये। इनके पहुँचने से पहले ही बदलपुरमें नमक सत्याग्रह करते हुए श्री दरबार साहब तथा स्व. गोकलदास बापू को भी पकड़ कर वहां पहुँचा दिया गया था। रास के आशाभाई को भी पकड़ कर ले आये थे। किन्तु इन पर चोरी का आरोप लगाया गया था।

बात यह थी कि जबसे सरदार साहब को रास में से पकड़ा था तबसे उस गांवने यह गांठ बांध ली थी—"सरकारी तंत्र के साथ किसी प्रकार का भी संबध न रखेंगे।" वहां के मुखी, पटवारी, चौकीदार, आदि सबके त्यागपत्र आ गये थे। गांव में कोई भी सरकारी अधिकारी आवे तो उसे पानी तक नहीं पूछते थे। इसलिए बोरसद के दो मुसलमानों को चाकीदार बनाकर वहां नियुक्त किया गया था। उन्हें भी अपने खाने के लिए बोरसद से लाना पड़ता था। एक समय डी. डी. सी. रास में आनेवाले थे। गांव में बसाये हुओं ने सरकारी अधिकारियों को कुछ सहायता न कर-

ने का प्रस्ताव किया था। साहब के लिए चौरे में पानी के घडे चाहिए थे पर दे कौन ? एक बहरी कुम्हारिनने इस असहकार का ढंढोरा नहीं सुना था। उसके यहां से चौकीदार जाकर घड़े ले आया। आशाभाई को यह विदित हुआ कि तुरन्त उस कुम्हारिन के पास पहुँचे। स्त्रीने कहा यदि ऐसा निश्चित हुआ है तो मैं घड़े नहीं दूंगी। चलो, चौरेमें से वापस ले आते हैं। स्त्रीको साथ ले जाकर आशाभाई चौरेमें पडे हुए घड़ों को वापस उठा लाये।

इस समय के डी. डी. सी. स्व. दुर्लभजीभाई थे। बादमें जिन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था और जो आजीवन राष्ट्रकार्य में जुटे रहे थे। उन्होंने आशाभाई को बुलाकर पूछा, 'बताओ, महात्माजीने 'नवजीवन' में कहां लिखा है कि अधिकारीओं को पानी भी न पिलाना ?'

आशाभाईने उत्तर दिया मैं यह कुछ नहीं समझता। मैं तो इतना ही समझता हूँ कि हम जिस सरकारको निकालना चाहते हैं। जो उस सरकार के खंभे बनकर बैठे हुए हैं। उन्हें हम किसलिए सहकार दें! गांधीजीने ऐसा तो कहा ही है कि अधिकारी के रूप में कोई हमारा साथ नहीं ले सकता। हां, कोई रुग्ण हो तो उसकी सेवा-शुश्रूषा करना दूसरी बात है और अधिकारी अपने अधिकार से हमसे सहकार माँगे यह भिन्न बात है। रासका वातावरण इतना कठोर बन गया था कि आरंभ के तीन

महीनों में तो ब्रिटिश राज्य वहां से उखड़ चुका ही प्रतीत होता था। अंत में आशाभाई पर घड़े चोरने की धारा लगाकर ढाई वर्ष का कारावास दुर्लभजीभाई ने किया था। बादमें कारावास घटाकर छह मास का कर दिया गया था।

महाराज सुनाते हैं—जब मैं साबरमती में पहुँचा तो सरदार साहब भी वहीं थे। आरंभ में तीन–चार दिन तक उन्हें खाली डब्बोंवाली कोठड़ी में चौबीसों घंटे बंद रखा था। जैसा सामान्य अपराधी बन्दियों को भोजन दिया जाता है वैसा ही भोजन इन्हें दिया गया था। किसी के साथ इनकी भेंट नहीं होने दी जाती थी। पहले ही दिन जब इनके सामने जेलके टिक्कड़ रखे गये तो यह देखकर वहां के भावलु नामक वोर्डरकी आंखोंमें से आंसू टपक पड़े उसने अपने भाग की गेहूँ की रोटियां देने का आग्रह किया। पर सरदार साहबने वे नहीं लीं और हँसते–हँसते कहा, तू घबराता है किसलिए? तीन महीने तो मैं भूखा ही निकाल सकता हूँ। सारा दिन ये अपनी कोठड़ी में बैठे–बैठे कातते रहते थे। इनकी कोठड़ी के सीखचों पर जाली जड़ दी गई थी। पर ये तो मानो किवाड़ों पर जाली है ही नहीं ऐसा समझ कर बैठते थे। चार एक दिनोंके बाद सरकार को अपनी भूल का ध्यान आया और सरदार साहब को विशिष्ट श्रेणी में रखा गया। इन्हें वहांसे बदल कर ओर्डरली बाड़े में ले गये। थोड़े दिनों के बाद हम सबको भी सरदार साहबवाले बाड़े में ले जाया गया। वहां भी दिनभर सर-

दार साहब काता ही करते थे। प्रातः सायं की प्रार्थना में ये सम्मिलित होते थे। हम इस ओडॅरली वासको 'वल्लभाश्रम' कहते थे। हम सब को बी. श्रेणी में चढ़ा दिया गया था। इसलिए वल्लभाश्रम में हमारे दिन सानन्द बीतते थे। हमको कच्चा सीधा दिया जाता और हम स्वयं भोजन बना लेते थे। १५–२० दिन ऐसा चला। एक दिन हम रात को प्रार्थना कर रहे थे। इतने में जेल-सुपरिण्टैण्टैण्ट आया और उसने कहा कि आप ३५ व्यक्तियों की बदली होनेवाली है। इसलिए तैयार हो जायँ। इस आदेश को आधा घंटा भी न होने पाया था कि हमें वहां से उठाया, पन्द्रह को यरोडा जेलमें पटका और हम बीसको नासिक जेलमें दे मारा। सरदार साहब फिर साबरमती जेलमें अकेले ही रह गये।

फोकटमैन का दुर्दशा

दूसरे सब कारावासों से नासिक का कारावास भिन्न प्रकार का था। अभी-अभी नये ढंगसे बनाया गया था। सारे कारावास में गटर (गंदा पानी जानेका नल) डाला हुआ था। विदेशी ढंग की फ्लशकी टट्टियां और पेशाबघर बने हुए थे। वहां का जल वायु तो स्वास्थ्य-प्रद था ही।

कारावास के पिछवाडे पर महाराज आदि का रेलका डब्बा लाया गया और सब वंदियों को नई कारा में प्रविष्ट किया गया। कारा के सुपरिण्टैण्डेण्ट मि० भंडारी तथा जेलर मि० केटलीने पहले से ही इन नवागन्तुक वंदियों के लिए कारा की को-

ठड़ियां झाड़–बुहार कर साफ–सुथरी बनवा रखी थीं। प्रत्येक कोठड़ी में एक–एक गदेला, बिस्तरा, पुस्तक की घोड़ी, थाली, कटोरी, प्याला, और लोटा रखा हुआ था। इस यार्ड (बाड़े) में ३० तीस कोठड़ियां थीं। इसलिए सारे का सारा बाड़ा नये बंदियों के लिए रोका गया था।

महाराज सुनाते हैं–' इस नई कारा का ठाठ–बाट देखकर मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ की इस बार सरकारने हमें अतिथियों के रूपमें बुलाया है। यहां भी हमने कच्चा सीधा लेकर रसोई अपने हाथ से बनाने का निश्चय किया था। श्री छोटालाल व्यास हमारी पाकशाला के व्यवस्थापक बने। हम प्रत्येक को प्रतिदिन आध–आधसेर दूध, पांच–पांच तोला घी, तैल, साग, गेहूँका आटा आदि ' बी ' श्रेणी का भोजन दिया जाता था। इसमें से घरकी-सी रसोई बनाई जाती थी।

महाराज अवस्थामें सब साथियों से बड़े थे और पहले कारा में आ गये थे। इसलिए बन्दी विषयक कोई भी बात जब कारा–सुपरिण्टेण्डेण्ट के साथ करनी होती तो इन्हें आगे कर देते आरंभ में सुपरिण्टेण्डेण्टने जब कष्ट–बष्ट की पूछ-ताछ की तो निम्न लिखित बातचीत हुई।

सुपरि० आप सब लोगों के क्षौर के लिए क्या व्यवस्था की जाय?

महाराज० कोई अच्छा नाई नियमित आया करे–ऐसी व्यवस्था कीजिए।

सुपरी०—अच्छा, पर नाई कब आवे ?

महाराज—प्रतिरविवार भेज दीजिएगा। सुपरिण्टैण्डैण्टने कहा—बहुत अच्छा।

उसने तुरंत जेलर को इस प्रकारकी व्यवस्था की सूचना कर दी।

महाराजने कारा—कार्यालय से आकर साथियों को क्षौर की व्यवस्था का हर्ष-कारक समाचार सुनाया। पर साथी तो यह सुनकर हर्ष के स्थान पर बिगड़ उठे।

एकसाथी—आप सप्ताह में एकबार क्षौर की व्यवस्था कर आये, यह कैसे होगा ? हमें तो प्रतिदिन क्षौर करना चाहिए।

यह सुनकर महाराज को अचंभा हुआ। पहले तो महाराज को ऐसा लगा कि ये सब नवयुवक मेरी ग्राम्यता की खिल्ली उड़ाते हैं। पर जब वेडछी—आश्रम वाले श्री चिमनभाई भी "तीसरे दिन तो क्षौर होना ही चाहिए" ऐसे कहने लगे तब महाराजने सोचा की सुपरिण्टैण्डेण्ट से दुबारा मिलना चाहिए। महाराज फिर उसके पास गये।

महाराज—मेरे साथियों को सप्ताह पर क्षौर कराना बहुत लंबा पड़ता है।

सुपरि०—जब आप कहें तब नाई आ जाया करेगा।

महाराज—तो सप्ताह में दो बार आ जाया करे।

सुपरि०—अच्छा, ऐसा ही हो जायगा।

महाराजने अपनी यह नई निवेदिति साथियों के सामने रखी। पर इससे भी इन्हें संतोष नहीं हुआ।

एकसाथी—महाराज, आप गामडे में सप्ताह में एकबार क्षौर कराते हैं। इसलिए आपकी समझमें हमारी कठिनता नहीं आ सकती।

दूसरा साथी—इस सबकी अपेक्षा तो हमारे विस्तरों में का क्षौर सामान निकलवा दीजिए, सब मत्थापच्ची मिट जायगी।

महाराज—आप सबके पास क्षौर संभार है?

महाराज को अचरज हुआ। पर वार–वार अवधि बदलने की अपेक्षा यह अंतिम सूचना ही इन्हें अधिक उचित लगी और इन्होंने यह व्यवस्था भी करा दी।

केश-प्रसाधन का भी कुछ ऐसा ही विनोदी प्रकरण बना।

सुपरिण्टैण्डैण्ट के पास केश-प्रसाधन की निवेदिति पहुँची। इसलिए उसने महाराज से पूछा कि वाल-सँवारने के लिए कैसी व्यवस्था की जाय?

महाराज—नगरमें से सीसम के कंघे मँगवायेंगे तो चलेगा।

सुपरिण्टैण्डैण्टने महाराज के कथनानुसार सीसम के कंघे मँगवा दिये। जब महाराजने ये कंघे अपने साथियों के हाथपर रखे तो इन्होंने ये चिढ़ कर फैंक दिये और कहा, इनसे वाल सँवारे जाते होंगे?

महाराज—हमारे यहां की स्त्रियों के लंबे-लंबे बाल इनसे सँवारे जाते हैं, पर आपके टूंके हैं इसलिए कैसे सँवारे जायँ?

अंतमें कंघे भी इनके बिस्तरोंमें से निकालना निश्चय हुआ।

कंघे निकालने के लिए इन्हें बिस्तरे दिये गये। इन्होंने तो बिस्तरों में से चपलें, चमचे, टुथब्रश, दंतमंजन आदि सब (मदारी की भांति) निकाल लिये। महाराज तो यह सब देखते ही रह गये।

महाराज कहते हैं कि ये मेरे साथी मुझे सब प्रकार से मान देते थे। पर ऐसे विषयों में मैं इन्हें पागल-सा प्रतीत होता हूँगा। मैंने कारा-अधिकारियोंसे कुछ काम मांगा। इसलिए उन्होंने हमें सूत सुलझाने का काम सौंपा। पर यह काम भी मेरे साथियों को नहीं रुचा। कई एक छोटे मित्र तो धागों से गेंदें ही मढ़ने लगे। बादमें हमने बुनने का काम मांगा, सौ—एक गज बुनने के अनंतर वह कपड़े बुनने का साधन भी लौटा देना पड़ा। इतना अच्छा था कि हम सबको अपने—अपने चर्खें रखने दे दिये जाते थे। संधि हो गई, सब छूट गये। दस मास तक हम सबने अपना—अपना सूत काता।

इन साथियोंने कार—अधिकारियों के साथ बात-चीत करने के लिए महाराज को "स्पोक्समैन" (प्रवक्ता) नियुक्त किया था। पर ये कहते हैं कि "कारा का स्पोक्समैन न तो इन साथियों को संतुष्ट कर सकता है और नहीं कारा—अधिकारियों को। इसलिए मैं तो उसे 'फोकटमैन' (व्यर्थका) ही समझता हूँ।"

कुछ महीनों के बाद नरहरिभाई आदि राजकीय बंदियों की साबरमती से एक दूसरी टुकड़ी आई। इनसे विदित हुआ कि सरकारने राजकीय बंदियों में भी भेदभाव खड़ा करने के लिए ए. बी. और सी. ये तीन वर्ग कर दिये। इसके विरोधमें साबरमती जेलमें वल्लभभाईने मांग की कि यदि सब बंदियों के साथ समानता का वर्ताव न किया जाय तो मुझे सी. श्रेणी का भोजन लेने की छूट मिलनी चाहिए। दो दिन के उपवास बाद इन्हें सी. श्रेणी का भोजन लेने की छूट मिली थी। इनके बाद दूसरे सब बंदी भी सी. श्रेणी का भोजन लेने लग गये थे।

इस टुकड़ी से यह समाचार प्राप्त करने के अनंतर नासिक के बंदियोंने भी सी. श्रेणी का भोजन लेना आरंभ कर दिया था। वाइसराय लॉर्ड अरविन और महात्मा गांधीजी का जब समझौता हुआ और सबको छोड़ दिया गया तब तक यह चलता ही रहा।

४५ रास गाँव को अभिनंदन

जब संधि हो गई कार्यकर्ता छूट–छूटकर बाहर आने लगे। उस समय लोगों में बहुत उत्साह था। संधि के साथ–साथ ये बातें भी आई कि खालसा हुई जमीनें वापस मिल जायँगी, चौकीदार, नंबरदार, पटवारी आदि जिन सरकारी कर्मचारियोंने अपने त्यागपत्र दे दिये हैं, उन्हें फिरसे काम पर ले लिया जायगा और चालू अभियोग स्थगित कर दिये जायँगे। इससे लोगोंके उत्साहमें वृद्धि हुई। पर यह सब झूठा पड़ते देखकर लोगोंमें निराशा

आने लगी। जब आशाभाई अपना छ मासका कारावास भुगत कर बाहर आये थे तब रास गाँवके लोगों पर दमनके कड़े कोड़े पड़ रहे थे। पुलिस का टोला रास पर घेरा डालकर जप्तियां करेगा—यह समाचार इन्हें विदित हुआ। इन्होंने लोगों से स्थानान्तर कराया और खेतोंमें तंबू डलवाये। पहले दिन तो सारे गाँवने ही स्थानान्तर कर दिया था। पर दूसरे दिन घोषणा की गई कि जो लोग 'नाकर' में सम्मिलित नहीं हुए उन्हें कुछ नहीं कहा जायगा। तब कहीं दो-तीन दिन के बाद किसानों को छोड़कर दूसरे कुछ परिवार लौट आये थे।

स्थानान्तर करते समय लोगोंने अपने भूषण-गहने तो सुरक्षित कर दिये थे। पर 'दूसरी चीजें जब जरूरत पड़ेगी ले जायँगे' ऐसा मानकर भरे-भराये घर छोड़कर स्थानान्तर किया था। पुलिस टोला बहुत चिढ़ गया था। उसने आशा-भाई को पकड़ने के लिए खूब हाथ-पांवों मारे, पर ये हाथमें नहीं आये। बादमें तो यदि गायकवाड़ी प्रदेशमें से रास का कोई भी किसान ब्रिटिश सीमामें आवे तो उसकी खूब पूजा करनी चाहिए—यह आदेश मिल चुका था और इस काम के लिए सीमा स्थान पर विशिष्ट पुलिस नियुक्त की गई थी।

दूसरी ओरसे सिपाही जन लोगोंके सूने घरों को लूटने लगे। आशाभाई—वल्लभभाई नामके एक किसान के ६४. रूपयों के कर के स्थान पर २३०० का माल नीलाम कर दिया। घरकी बखा-रियों का अन्न तीन-तीन चार-चार आने मनके भाव उड़ा दिया

गया । दूसरी जो चोरी-छिपी लूट चली उसका तो कुछ अनुमान ही नहीं हो सकता । खेतोंकी खड़ी उपज सरकार काट कर ले जाने लगी। किसान भी अपने खेतोंमें से रातोरात गाड़े भर-भर कर अपना माल ढोते थे। इस प्रकार माल ढोते समय तुलसी भाई नामक एक भावना शील किसान गाड़ेके नीचे कुचला गया।

स्थानान्तर के समय के दुःख असह्य थे । पर्याप्त अन्न और साधन होने पर भी किसान अन्नहीन और साधनहीन बन गये थे । सब स्थानान्तर के तंबुओं में पड़े हुए थे। उसी समय बरसात आई । जिन खेतोंमें तंबू ताने हुए थे उन्हीं खेतों में से होकर बरसाती जल–प्रवाह का मार्ग गया था। ऐन इसी अवसर पर वहां एक बहनको प्रसूति हुई । उस समयके दुख की बात ही क्या करें ? पर इन दिनों स्थानान्तरितों के दुःखमें भाग बँटाने के लिए श्री आशाभाई ४॥ साढेचार महीनों तक साथ ही रहे । इन्होंने तंबुओंमें पींजनियां और चर्खे चालू करा दिये थे एवं ऐसे दुःखमें भी हँसकर दिन निकालने की कला सिखा दी थी । इसलिए स्थानान्तरितोंने दुःखके ये दिन भी शांति पूर्वक व्यतीत किये ।

संधि हो गई, इसलिए स्थानान्तरितोंको भी वापस गांवमें लाने चाहिए । इनके घर तो उजड़ गये थे। घरकी थाली या रस्सी तक भी शेष नहीं बची थी । ये सब वापस आये । इनके मनमें हर्ष था या दुःख यह जानना अत्यंत कठिन था ।

गांवमें प्रवेश करने से पहले रास वासियोंने हठ पकड़ा कि

महात्माजी हमारे गांवमें पहले पग रखें तभी हम गांवमें जा
गांधीजी उस समय वहां पहुँच सकें ऐसी स्थितिमें नहीं थे।
में श्री मोरारजीभाई, सरहद के गांधी अब्दुल गफ्फारखां तथा दूसरे नेताओंके साथ वहुत ही धूम—धाम पूर्वक रासवासियोंने रासगाम (रास धाम) में प्रवेश किया। जब लोग गांवमें आ रहे थे तो इनके गाड़ोंपर चर्खे शोभा दे रहे थे। लोगोंने वहुत कष्ट उठाये थे। पर इनके चेहरों पर से प्रसन्नता टपके पड़ती थी।

तीन—एक दिनोंके वाद गांधीजी रास गांवमें आये। यहां के तालावमें एक विशाल सभा हुई। उस समय इन्होंने लोगों को आश्वासन दिया और अभिनन्दन दिया। इन्होंने यह भी कहा कि रविशंकर को अब रासमें रहना चाहिए। तब से महाराज रास में रहने लगे। रास गांवके लोगों को भी इससे वहुत सहारा मिला।

संधि तो हो गई, पर संधिकी धाराओं का पालन सरकार झटपट करना नहीं चाहती थी। इसलिए गांधीजीने इस विषय में खूब लिखा-पढ़ी की। वहुत ही दौड़—धूप चल रही थी। उस समय अकेले रास गांव की ही २४०० एकड़ जमीन खालसा हुई थी। इसमें से ३५० एकड़ तो वेंच भी दी गई थी। जो वेची नहीं गई थी वह जमीन तो किसानों को वापस मिल गई। पर जो वेची जा चुकी थी वह जमीन भी क्रेताको समझाकर वापस दिलाने का सरकारने वचन दिया था। उसका पालन नहीं हो रहा था। जमीन खरीदनेवाले वारैया लोगोंमें से कुछ लोग

वापस देनेके लिए सहमत हुए, पर दूसरोंने उन्हें रोक दिया। दहेवाणके ठाकुरने जमीन वापस दे दी; पर 'कठोर' के खुमानसिंहने खूब चक्कर मरवाने पर भी नहीं दी। संधि के समय लोगोंके मनमें रोष और दुःख दोनों थे। किन्तु उनकी सहिष्णुता अद्भुत थी और वे परिश्रमी भी वैसे ही थे। हजारों की हानि होने पर भी यह वर्ष तो इन्होंने खींच ही निकाला।

सरकारी अधिकारी संधि होनेके बाद शेष कर प्राप्त करना चाहते थे। पर लोगोंके घर लूट-खसूट लिये गये थे। इसलिए कर भरने को कोई उद्यत नहीं था। इसीके लिए गांधीजी को पन्द्रह दिन तक बोरसदमें रहना पड़ा। इन्होंने रास गांवकी ओरसे कर पेटे केवल ५०० रूपये भरवाये। बाकी सब कर स्थगित कर दिया गया। इस प्रसंगके बाद साधारण शांति स्थापित हुई थी। इतनेमें एक अतर्कित घटना घटी।

४६—वड़दले का कलंक धोया गया

जब सन् १९३० का स्वतन्त्रता-युद्ध चल रहा था तो उस समय वड़दले के मुखी ने मुखीपद छोड़ दिया था। वहीं के एक पाटणवाड़िये ने वह स्वीकार कर लिया था। उसे समझाने के लिए उसी की जाति के लोग इकट्ठे हुए थे। गाँव के आगेवानों ने इस जाति के पंच के साथ अच्छा वर्ताव नहीं किया था। इस कारण पंच बिखर गया और पाटीदार पाटणवाड़ियों में भेदभाव की खाई खुद गई। इसी का परिणाम

यह निकला कि नीलाम हुई जमीनें रखने के लिए पाटणवाड़िया उद्यत हो गये। जब यह सब बना तब महाराज कारावास में थे।

यह बनाव बनने के कुछ समय बाद ही गाँव के पाटीदार मुखी की हत्या हो गई। शत्रुता के कारण गाँव के ही पाटणवाड़ियों ने यह हत्या की थी। हत्या धर्मज की सीमा में हुई थी। इसलिए मृतक के शव को वहीं के चौरे में ले जाया गया। मरने से पहले मुखी को कुछ-कुछ भान था और वह दो-तीन नाम लिखाकर परलोक सिधार गया।

बाद में गाँव के एक गृहस्थ ने मुखीपद लेनेवाले तथा जमीनें रखनेवालों के नये चार नाम और लिखवा दिये। इस पर विधिपूर्वक अभियोग चला। महाराज छूटने के बाद इस गाँव में गये तब सारी वास्तविकता इन्हें मिली। इन्होंने विचारा कि वे चारों जन हत्या के विषय में सर्वथा निर्दोष हैं। उन्हें इस प्रकार झूठे अभियोग में फँसे देखकर महाराज को दुःख हुआ। दो वर्ष पहले उस गृहस्थ ने ऐसे ही दो निर्दोष भाइयों को सात-सात वर्ष का दण्ड दिलाया था। चौमासे की बाढ़ में वहाँ के पाटणवाड़ियों के घर गिर गये थे। उन्हें दी जानेवाली सहायता के पैसे पेटलाद के नारायणभाई सेठ के पास रखे थे। ये पैसे चुकाने के लिए महाराज वड़दले गए थे। तब इसी गृहस्थ ने कहा था कि "ये तो दुष्ट लोग हैं; इन्हें सहायता पहुँचाने से

क्या लाभ ?" महाराज ने इसे उत्तर दिया था—"जो अपराधी है उसे दण्ड भले ही हो और जो अपराधी नहीं उसकी सहायता क्यों न की जाय ?" महाराज का ऐसा उत्तर इसे रुचा नहीं और यह बड़बड़ाने लगा। इस समय भी गाँव में आकर महाराज को जाँच करते हुए देखकर इस व्यक्ति ने न कहने योग्य शब्द महाराज के प्रति कहे थे। पर महाराज के मन में दृढ़ता से ठस गया था कि यह निरा अन्याय हो रहा है और निर्दोष लोगों को इसमें से बचाना ही चाहिए।

गांधीजी इन दिनों बोरसद में थे। महाराज इनसे मिले और इन्होंने सारा वृतांत गांधीजी को कह सुनाया। विशेष बात यह भी कही कि "ये लोग इस अपराध में सर्वथा निर्दोष हैं; इन्होंने सत्याग्रहियों की जमीनें रखी हैं और एक ने तो सत्याग्रही का छोड़ा मुखीपद भी ग्रहण कर लिया है। इनकी सहायता की जा सकती है ?" गांधीजी ने कहा—चाहे कैसा भी हो जो निर्दोष है उसकी सहायता करनी ही चाहिए।

पर कोर्ट का निर्णय उलटा ही आया। मुखीपद ग्रहीता निर्दोष को प्राणदण्ड और हत्यारे को तथा अन्य पांच जनों को देश-निर्वासन का दण्ड हुआ। जिस दिन यह निर्णय बाहर आया उस दिन उस गृहस्थ ने गुड़ बाँटा। "पर निर्दोष को प्राणदण्ड नहीं मिलना चाहिए, तुमसे जितनी सहायता हो सकती है उतनी करो और सत्याग्रहियों की जमीन वापस दिला सको तो वह

भी दिलाओ" गांधीजी के इन शब्दों ने महाराज का खाना-पीना भुला दिया।

दण्ड घोषित होने के दूसरे ही दिन महाराज वड़ौदे जेल में गये और वहाँ दण्डित हुए लोगों से मिले। इन्होंने उन्हें जमीन रखने के कारण फटकारा और निरापराध होने पर भी अपराधी सिद्ध किये जाने के विषय में खेद प्रदर्शित किया। थोड़ा समझाने के बाद जमीन रखनेवाले ने जेल-सुपरिण्टैण्डैण्ट के समक्ष जमीन वापस दे डालने का लिखित वचन दे दिया एवं महात्माजी के नाम एक लिखित संदेश भेजा कि "हमने देशकी पवित्र लड़त के विरुद्ध होकर भूल की। इसलिए हम क्षमा माँगते हैं और आशा करते हैं आप हम पर किसी प्रकार अन्य-भाव नहीं रखेंगे।" इनसे विदा होकर महाराज ने इनकी विचा-रार्थ प्रार्थना (अपील) नोंधाई। श्रीझाटकिया वकील की सहायता से इस अभियोग में ये सातों ही निरपराध सिद्ध होकर छूट गये।

कारण यह था कि मृत्यु-जाँच-पत्रक धर्मज के मुखी-समक्ष भारा गया था। उसमें बाद के बढ़ाये गये चारों नाम सँकरे लिखे हुए थे और उसकी प्रतिलिपि करते समय वे पहले लिखे गये थे। इसी कारण से अभियोग झूठा है यह सिद्ध हो गया था। ये भाई निर्दोष छूट गये इससे महाराज के हर्ष का पार ही नहीं रहा। क्योंकि इनके साथ हुए अन्याय से महाराज का हृदय सुलग उठा था। इन्हें छुड़ाने के लिए महाराज ने दिन-

रात एक कर दिया था। कड़कती धूप में ये कोसों-पर-कोसों चले थे। वकीलों से मिले, साक्षियों से मिले, अधिकारियों से मिले, कैसे भी क्यों न हो पर ये निरपराध लोगों की निरपराधता सिद्ध करना चाहते थे। सचमुच जब ये लोग निरपराध सिद्ध हुए तो महाराज उमंगभरे दौड़े-दौड़े फिर इनसे जेल में मिलने गये। जेल-सुपरिण्टैण्डैण्ट ने इन्हें कार्यालय में बुलाया और इनसे जब कहा गया कि तुम निरपराध सिद्ध हुए तो ये अवाक् रह गये। एक जन तो खड़ा-खड़ा ताल की भांति महाराज के चरणों पर गिर पड़ा। इसके आँखों में हर्ष के आँसू थे। महाराज ने कहा—सत्य का भगवान् साथी है।

इन्हें छोड़ने का आदेश आया। यह शुभ समाचार देने-वाले भाई ने महाराज से कुछ पाने की इच्छा रखी थी और महाजन ने भी सोचा कि इसे प्रसन्न करूँ। जेब में हाथ डाला तो केवल एक आना निकला वही उसके हाथ पर रखा; पर उसने लिया नहीं। महाराज सुनाते हैं "इससे उसे संतोष हुआ या नहीं वही जाने; पर मुझे तो बिलकुल नहीं हुआ। मैंने इस निमित्त से पराक्रमता प्राप्त की।

जब सातों ही जेल से बाहर आये तो महाराज ने इनसे पूछा—तुम्हें प्रतीत होता है ? मनुष्य जब जन्म लेता है तो पूर्व-जन्म का वैर भूल जाता है। तुम भी पुराना वैर न रखना। इन्होंने भी हामी भर दी। महाराज पर इनकी अटल श्रद्धा बैठ

गई थी। इन्हें ऐसा ही प्रतीत हो रहा था—महाराज ने ही हमें छुड़ाया है।

रात को महाराज इन्हें अपने मित्र स्व० वेलचन्दभाई बैंकर के यहाँ ले गये थे। दूसरे दिन सवेरे इन्हें गांधीजी के दर्शन कराने के लिए बोरसद ले गये थे। गांधीजी ने इन्हें सदाचारी बनने की सीख दी और आशीर्वाद दिया। इसी दिन सायंकाल महाराज इन्हें इनके घर पहुँचा आये और इनके कुटुम्बी भी महाराज के चरणों में पड़े।

उस गृहस्थ को स्वाभाविक महाराज के प्रति द्वेष हो गया। वह थोड़े वर्षों तक टिका भी। पर महाराज ने अपने इस मनोभाव के लिए सदैव संतोष का अनुभव किया है।

गांधीजी ने भी महाराज से कहा था कि यदि मृत्युदण्ड नियत रहा तो मैं महाराजा साहब से पत्र लिखकर दयाकी याचना करूँगा। महाराज मानते हैं कि इनके आशीर्वाद से ही ऐसा सुखद समाधान हुआ।

उस गृहस्थने इन निरपराध छूटे हुओं के विरोध में फिर अपील की। पुनः अभियोग चला। इन अभियुक्तों की ओर से बैरिस्टर देशपांडे साहब खड़े हुए थे। इसमें भी ये निर्दोष सिद्ध हुए।

इसके बाद महाराज गांधीजी के कथनानुसार रास में ही स्थिर हो गये। वहां की जमीन वापस कराना और गांवलोगों

को दूसरी सहायता पहुँचाना इनका मुख्य काम था। इन दिनों रासमें ३०० तीन सौ चर्खे और घर-घर पींजनियां चलती थीं। कता हुआ सूत आसपास के गांवों में बुनाया जाता था।

०—०

४७. रासका सर्वनाश

संधिके नियमानुसार अभी तक रास की जमीन किसानों को वापस नहीं मिली थी। त्यागपत्र देनेवाला मुखी और चौकीदार काम पर नहीं चढ़ाये गये थे। इतने में गांधीजी का राउण्ड-टेबल कान्फ्रेंन्स (गोलमेज परिषद) में जाना हुआ वहां जाकर आपने देख लिया कि कान्फ्रेंन्स में से कुछ सार नहीं निकलेगा। वहां दिये गये आपके भाषण राजनीतिसे पूर्ण तथा मूल भूत विषयों को स्पष्ट करनेवाले होने पर भी छल कपट से रहित सरल और तेजस्वी थे। सरकार की मनोवृत्ति शुद्ध नहीं थी। यह तो संधिकालिक इसके झुकाव और बर्ताव से ही कुछ-कुछ विदित होने लगा था। पर इस कान्फ्रेंन्स में तो यह दीपक की भांति स्पष्ट दिखाई देने लग पड़ा।

गांधीजी के मुम्बई पहुँचने से पहले ही पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा श्रीशेरवाणी को युक्त प्रान्तमें से पकड़ लिया गया। जब गांधीजी मुम्बई के तट पर उतरे तो लोगोंने आपका भव्य स्वागत किया। इसी रात को आपको तथा दूसरे नेताओं को एक ही साथ पकड़ लिया गया। कांग्रेसकी सभी समितियां अवैध

ठहराई गई और अध्यादेश (आडिनेन्स) का राज्य चालू हुआ। जनता पर यह अतर्कित छापा मारा गया। कुछ दिन तो जनता को यह विदित ही नहीं हुआ कि क्या करना चाहिए। इस अस्पष्टता में से ही स्पष्टता आई। सन १९३० की भांति फिर देशभरमें सत्याग्रह आंदोलन चल पड़ा। हजारों लोग जेलों में गये। दंड, लाठी-प्रहार, जप्तीराज्य और दूसरे अत्याचारोंका पार नहीं रहा।

रासमें से महाराज तथा आशाभाई को झड़प लिया गया था। लड़ाई आ रही है इसकी भनक महाराज को पहले ही पड़ गई थी। इसीलिए पकड़ने से कुछ पहले आशाभाईने रासके लोगोंको इकट्ठे किया था। इस समय इन्होंने कहा था—देखो लड़त आ रही है। इसमें सम्मिलित होना हम सबका कर्तव्य है। सरकारने हमें दिया वचन पालन नहीं किया। दूसरे यह लड़त भी हम स्वयं उठाने नहीं गये, पर इसीने हम पर थोपी है। तो भी ❀ 'ना कर' की लड़त में संमिलित होनेसे पहले हजार बार विचार कर लेना चाहिए। आपने इस लड़त में आनेवाले कष्टों का अनुभव तो कर ही लिया है। जिसकी अंत तक टिकने और मर मिटने की तैयारी हो वही इसमें संमिलित हो। हँसना और खाँड़—फाँकना दोनों एक साथ नहीं बन सकते। लड़त में भाग लेने वालों को अपनी धन—संम्पत्ति खोनी है यह पहले ही ध्यानमें रख लेना चाहिए और जिसकी सब कुछ सह

❀ 'ना कर' कर न भरना।

लेने की सज्जता हो वह इसमें निस्संदेह भाग ले सकता है।

इस सभामें लोगोंने प्रस्ताव किया कि हम कर नहीं भरेंगे। महाराज ने कहा—इस वर्ष सन १९३० की भांति स्थानान्तर भी नहीं करना। चाहे कैसे भी अत्याचार हों, वे गांव मे ही रहकर सहने होंगे—यह न भूलना चाहिए। पर लोग एक से दो नहीं हुए। महाराज के पकड़े जाने के साथ ही रास की लड़त का भी श्रीगणेश हो गया।

संधिकाल में लोगों को अपनी खोई हुई जमीन वापस नहीं मिली। इस लिए इनके दिन बहुत ही कठिनाई में गये। इन्हें कुछ अवलंब देने के लिए महाराज और अशाभाईने ५० मन रुई लाकर चर्खे चालू करा दिये थे। सस्ता बीज प्राप्त हो सके इसके लिए एक दूकान भी खोल दी गई थी। जैसे–तैसे इनका गाड़ा ढकेलने लगे। ऐसा होने पर भी वे लोग दूसरी लड़त में संमिलित हो गये—ऐसी थी रास गांव की उमंग।

महाराज को बँदी करके दो महीनों तक साबरमती जेलमें रखा गया। इसके बाद खेडे लाकर इन्हें सूचना दी गई और इन्हें छोड़ दिया गया। इस सूचना में इस आशय का लेख था कि "आप महेमदावाद की सीमा न छोड़ें और प्रतिदिन खेड़े उपस्थिति लगाने आवें। ऐसे विचित्र और अशिष्ट आदेश का पालन तो करना ही नहीं था। सरकार

तो इन्हें दंड देने के लिए कोई न कोई वहाना ढूँढ़ रही थी। वह उसे मिल ही गया। इसलिए सरकारने सूंचना का उल्लंघन करने के कारण महाराज को नौ मास का कारवास और ५०) रुपये दंड किया यदि दण्ड न भरें तो दो मास का अधिक निर्णीत हुआ।

दूसरी ओर रास गांव को पीड़ित करनेमें सरकारने कुछ बाकी नहीं उठा रखा—लालच दिये, भय दिखाये और अत्याचार ढाहे। पर लोग अडिग रहे। अंतमें तहसीलदार गांव में आकर एक-एक खातेवाले को बुलाने लगा और कहने लगा कि अधिक नहीं तो चार आने कर तो भर दीजिए। पर लोगोंने यह भी नहीं माना। इसलिए जो कर भरने की ना कहता था उसे ही जेलमें ढकेल दिया जाता था। इस प्रकार रासके १८०किसानों को जेल में ठूस दिया गया ; पर लोगोंने कर नहीं भरा। अकेले रास गांवके किसानों पर सरकारने १८,०००) रुपयों का दंड किया और दंड प्राप्त करने के लिए जप्तीके नामसे छूटे चलने पर भी लोग अटल रहे।

जब सरकार इस प्रकार त्रास नीति में सफल न हो सकी तो इसने भेद—नीति का मार्ग पकड़ा। रास और चिखोद्रा गांवका पारस्परिक निकट का गाढ़ संबंध है। इस चिखोद्रा गाँवमें तमाखू के बड़े-बड़े व्यापारी हैं। वे सरकारी अधिकारियों के साथ उठते—बैठते भी हैं। इस अवसर से लाभ-उठाकर अधिकारियोंने वहाँ के ग्यारह धनाढ्य व्यक्तियों को

पकड़ा और उनसे कहा कि आप रास को विनष्ट न होने दें। उन्हें समझा-बुझाकर कर भरवादें। अभी ५०००) पाँच हजार भर जायँ और शेष धन बाद में भरादें तो हम सब प्रकार का पीड़न बंद कर दें। उन भाइयोंने पाँच हजार की थाती रख दी। पर जब रासके लोगों को इस वात का पता चला तो इनके तन-बदन में आग लग गई। रासके लोगोंने उनके सामने सत्याग्रह किया। रुपये भरनेवालों के घरोंमें जाकर अनशन व्रत आरंभ किया। वे सगे–संबंधी कड़क्की (उभयतः पाशारज्जु) में फँस गये। रासके लोगोंने उनसे कहा कि आप हम पर क्यों दया कर रहे हैं? कृपा कीजिए आपने तो अपनी नाक कटा डाली (कर भर दिया) अब हमारी नाक कटानी है?

अंतमें उन्होंने कर न भरने का वचन दिया। ठहराव के अनुसार इन लोगों को वह धरोहर वापस मिलनी चाहिए। क्योंकि कुछ समाधान नहीं हो सका। पर इन ग्यारह व्यक्तियों को नोटिस दिया गया कि यदि आप रासका शेष कर नहीं भरेंगे तो 'आणंद' थाने में जाकर प्रतिदिन हाजरी भरावें। अंग्रेज सरकार की राजनीति की निर्लज्जता का इससे कोई दूसरा प्रमाण ढूंढने जाने की आवश्यकता नहीं। उन व्यक्तियोंने इसके विरोधमें अभियोग चलाया और अंतमें न्यस्त संपत्ति इन्हें वापस मिली।

यह उपाय विफल गया। इसलिए सरकारने दूसरा उपाय ढूंढ़ा। रासके दो चार आगेवान अपने अधिपत्र (वारंट) निकलनेसे

दूसरे गांव चले गये थे। सरकारने उनके साथ भांजगढ (तोड़–फोड़) चलाई कि यदी आप कर भर दें तो हम सन १९३०में अपरावर्तित रासकी भूमि वापस दिला देंगे और मुखी– चौकीदार को भी फिर काम पर चढ़ा देंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि इसका अंतिम निर्णय करने से पहले हमें अपने बिलासपुर जेलमें बैठे हुए आगेवानों की सम्मति लेनी चाहिए। सरकारने विशेष आदेश निकाल कर बिलासपुर जेलमें बन्दीकृत ८०–९० व्यक्तियों के साथ इन चारों व्यक्तियों को मिलने देने की व्यवस्था की। जेलमें इन सब भाइयों की एक सभा योजित हुई। इसमें बाहरसे आये व्यक्तियोंकी बातें सुनी गईं और उन पर चर्चा हुई। निर्णय हुआ कि रासका समाधान करना हो तो पहले यरोड़ा जेलका द्वार खटखटावें। हमारे सेनापति वहीं हैं। समाधान तो वे ही कर सकेंगे। इस प्रकार रास गांव अजेयगढ़ रहा। इस अंतिम दाव के बाद तो अधिकारी भी रास गांव की कर प्राप्ति से हाथ धो बैठे।

समाधान नहीं हुआ! इसलिए फिर दमनचक्र चलने लगे। रासमें ३०० खाते वाले हैं। उनकी २४०० चौबीससौ एकड़ भूमिमें से ३५० एकड़ तो सरकार के अधिकारमें ही थी। अब दूसरी १८०० एकड़ भूमि खालसा की गई। जिस वर्ष ये जमीनें खालसा की गई थी, उस वर्ष इतनी अच्छी उपज हुई थी कि गत दस वर्षोंमें ऐसी कभी नहीं हुई। ऐसी खड़ी उपजवाली जमीनों पर सरकारने अधिकार किया। खेतोंमें २५–२० स्थानों पर पुलिसके तंबू डलवाये और प्रत्येक किसान को खेतमें प्रविष्ट होने से निषि

कर दिया। अन्तमें यह दस लाख रुपयों की जमीन ५–५ और १० –१० रुपये एकड़ के भाव से खंभात, नागपुर, गोधरा, नड़ियाद, और अहमदाबादके मुसलमानों को बेच दी गई थी। रास गांव में से भी दो–चार यह जमीन लेनेवाले निकल पड़े थे।

जमीन चली जानेसे रासके किसान निराधार हो गये थे। इन के पास पशुओं को चराने के लिए घास तक नहीं रहा। इस कारण इन्हें पशु भी बेच डालने पड़े।

रास गांवकी जमीन नीलाम होनी है इस बातकी खबर पेटलादके सेठ चंदूभाईको पड़ी। उन्होंने महाराजसे कहा कि यदि आप कोई बांधा न उठावें तो मैं रासका कृषिकर भर दूं। लोग मुझ पर रुष्ट होंगे और अपयश गावेंगे यह मैं सब सह लूंगा एक बार सब भूमि अधिकार में ले लेता हूँ फिर जब वापस करने की आवश्यकता पड़ेगी तो तुरंत वापस दे दूंगा। यदि दूसरा कोई भूमि खरीद लेगा तो वापस करना कठिन हो जायगा और लोग तंग होंगे। दूसरे, यह बात आपको और मुझे छोड़ कर तीसरे के कान तक नहीं जाने दूंगा। उस सेठने बहुत बार सहायता कार्यों में भाग लिया है। इसलिये उसकी यह मांग शुभ भावनावाली और व्यवहार पूर्ण थी। उसने तथा उसके मिल–प्रबंधक हरिवल्लभदासने रास गाँवके लोगोंको दूसरी बहुत सहायता पहुँचाई थी। पर इस विषयमें महाराजने इन्हें स्पष्ट शब्दों में सुनाया कि यह अपनी लड़त दांवपेच या कूटनीति की नहीं, इसलिए अपने ऐसा नहीं कर सकते।

इस प्रकार रासके शूरवीर किसानोंने मार खाई, दुःख उठाये, अपमान सहे, और भूख झेली, पर गांवकी नाक रख ली। सारे गुजरात में रासका बलिदान प्रथम पंक्ति का था। सरकारी दमन और दीर्घकालिक कष्टों से प्रजा चूर–चूर हो गई थी। लगभग पौने लाख नर–नारियां जेलके सीखचोंमें बंद पड़ी थीं। छोटा हो या बड़ा प्रत्येक आगेवानको सरकार ढूंढ–ढूंढ कर पकड़ती थी। पर रास गांव ने अंत तक अपनी प्रतिष्ठा को धब्बा नहीं लगने दिया।

४८ रासमें सहायता कार्य

महाराज को दो मास अटकमें रखनेके बाद सूचना भंग के निमित्त से पुनः ग्यारह मासका कारावास दिया गया था। यह दंड भुगतकर ये बाहर आये तो लड़तका प्रवाह घटता जा रहा था। बापूजीने लड़त स्थगित करा दी थी। रासके किसानोंने सारी लड़तमें अपना पानी रखा था। पर इनके दुःखों का पार नहीं था। आशाभाई महाराज से पहले छूटकर आ गये थे। इन्होंने रासके लोगों को सहायता पहुँचाने का निर्णय किया था। किन्तु उनके विरुद्ध अधिपत्र (वारंट) तैयार ही था। इसलिए उनका रासमें पाव रखना आपत्ति से खाली नहीं था। फिर भी वे आसपासके गायकवाड़ी गांवोंमें रहकर सहायता पहुँचाने की व्यवस्था करने लगे। महाराज तो बाहर आकर दस–बारह दिन घूमे होंगे कि इन्हें फिर पकड़ कर पन्द्रह मासके लिए कारावास में डाल दिया गया।

आशाभाईने २५० मन रुई खरीदी । बारडोली से चर्खे और पींजनियां प्राप्त की । रासके लोगों को ये एक-एक रुपये चर्खा और एक-एक रुपये पींजनी देने लगे । पैसे-पैसे तकुवा और तांत भी दी गई । प्रतिव्यक्ति ३ तीन सेर रूई बाँट दी गई । थोड़े ही दिनोंमें घर-घर चर्खे चलने लगे । बूढ़े-बूढ़े लोग और छोटे-छोटे बालक भी चर्खा कातने लगे । नियम ऐसा किया गया कि जो तीन सेर रूई में से कातकर पौने तीन सेर सूत दे जायगा उसे फिर तीन सेर रूई दी जायगी । आया हुआ सूत बिना बुनाई लिये बुना दिया जायगा और थान पर स्वामित्व कातने वाले का होगा । इस प्रकार आशा-भाई ने अत्यंत कुशलता से रास के किसानों की सच्ची सहायता पहुँचाई । इन्होंने रासके दो-सौके आसपास व्यक्तियों को अहमदाबाद के मिलोंमें काम पर लगा दिया । ४० विद्यार्थियों को दूसरे गांवों के छात्रावासों में प्रविष्ट करा दिया । खादीमें आने वाली क्षतिपूर्ति महाराजके मित्र श्री बेलचंद सेठ करते थे । इस प्रकार डेढ़ वर्षमें रास गांवने २५० मन रूई कातकर उसकी खादी बुनाई । इन सब कामोंमें आशाभाई जेलमें बैठे हुए महा राज के पास से ही प्रेरणा और मार्गदर्शन बल प्राप्त करते थे । इनकी महाराज पर अनन्य श्रद्धा है ।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों संयोग अधिक बुरे आते गये । बादमें लड़तमें निराधार हुए व्यक्तियों को सहायता पहुँचाने के लिए गुजरात-सहायता-समिति नियुक्त की गई ।

उसकी ओरसे भी रास के किसानों को मासिक ढाई–तीन हजार रुपया मिलने लगा। इस सहायता सम्पत्तिमें से बड़ों को तीन और बारह वर्ष से नीचेवालों को डेढ़, मासिक सहायता मिलती थी। पर अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि इस प्रकार नगद रुपये बाँटकर सहायता पहुँचाने से सच्ची सहायता नहीं पहुँच सकती। इससे अंदर–अंदर क्लेश बढ़ता है और ऋणी किसानों के पास से उत्तमर्ण लोग रोकड़ रुपया छीन ले जाते हैं। सहायता लेने वालों में भी लोभवृत्ति घर कर लेती है और प्रसिद्ध फंडमें से अधिक से अधिक धन प्राप्त करने की हीन मनोवृत्ति जाग उठती है।

यह सहायता–कार्य चल ही रहा था। इतने में महाराज जेल से बाहर आये। इन्होंने भी देखा कि किसानों को रोकड़ (नगद) रुपया देनेकी अपेक्षा तो माल खरीदते समय जो ये मुँड़ जाते हैं उससे इन्हें बचाना ही सच्ची सहायता सिद्ध हो सकता है। इसी विचार से वहां की धर्मशालामें एक सस्ते अन्न की दूकान खोलना निश्चित हुआ। महाराजने गुजरात्त–सहायता-समिति से मिलकर दो-तीन मासका सहायता–धन एक साथ ले लिया। इसमें से प्रत्येक किसानको ८० अस्सी रुपयों की एक भैंस या बैल और ४० चालीस रुपयों के बिनौले या ग्वारा देनेकी योजना गढ़ी।

महाराज सुनाते हैं "सस्ते अनाज की दूकानमें पहले हमने बिनौलों के वैगन मँगवाये। उसके बाद ग्वारा, धान, बाजरी,

चने आदि मँगवाये । बादमें सूझा कि यदि तैल, गुड़, मूँगफली खजूर, खांड़ आदि आवश्यकीय सभी वस्तुएँ मँगवावें तो इन्हें अधिक सहायता मिल सकती है। इसलिए ये भी मँगवाये गए। पर इन सबके लिए तो मोटी धन-राशि चाहिए। हमने इसका एक उपाय ढूंढ़ निकाला। जो चीज हम मँगवाना चाहते थे उसकी आठ दिन पहले सूचना प्रगट कर देते थे कि जिसे जितनी चीज चाहिए वह उतनी चीजके नगद पैसे चुकता कर जाय। प्रत्येक चीज हम पड़ती के भावमें वेचते थे। हम माल भी इतना अधिक मँगवाते थे जिससे सामान्य व्यापारियों की अपेक्षा हमारी दूकान पर आधी या पौनी कीमत पर पड़ता। इस लिए लोग पहले से ही पैसे जमा कर जाते थे। इन पैसों से हमारा व्यवहार चलता था। दूकान आरंभ करने के लिए ५००० पांच हजार रुपये हमने बाहर से प्राप्त किये थे। उपर्युक्त उपाय हाथमें आ जानेके बाद इसमें से २५०० तो हमने लौटा ही दिये थे। इस दूकान से अकेले रासको ही नहीं दूसरे भी आस-पास के बहुत से गांवों को सहायता पहुँचने लगी और इस विभागके व्यापारियों का व्यापार तो प्रायः ठप ही हो गया।

लड़तमें किसानों के कृषिसाधन भी लुट चुके थे। इस लिए महाराजने कितने हल, पुष्कल पटेले [सुहागे] सैंकड़ों कुल्हाड़े, दातियां आदि कृषि-साधन मोटी संख्यामें तैयार कराये थे। जिससे ये किसानों को सस्ते-से-सस्ते पड़े थे। आशाभाई की छोटी चीज तो किसीकी दृष्टि पर ही नहीं चढ़ती। इन्होंने मालवे से झाडुओं

का वैगन, पंजाव से सन का वैगन, वलसाड़ से गुड़ के घड़ों का वेड़ा और आगरे से लालटेनकी चिमनियां दर्जनों मँगवाईं। इस दूकान पर प्रतिसप्ताह १५ मन तैलकी खपत होती थी। प्रतिदिन बिक्री ३००–४०० रुपये की होती थी। वाँस, वल्लियां सिमेण्ट आदि जीवनोपयोगी प्रायः सभी वस्तुएँ इस दूकान में मिल जाती थीं। भाव फट्ठी पर लिख कर टाँग दिये जाते थे। मालके रोकड़ पैसे लेकर पावती [रसीद] फाड़कर दी जाती थी। लोगोंको इस दूकान से वहुत नहीं तो ५०–६० हजार रुपये की सहायता अवश्य पहुँची होगी।

पर संसारमें अच्छे कामके भी विरोधी होते ही हैं। क्योंकि स्वार्थी लोगों के स्वार्थ पर ऐसे काम आघात पहुँचाते हैं। इस दूकान के विरोधमें वहांके व्यापारियों का तो रोप था ही वे इस दूकान के विरुद्ध प्रचार करनेका एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे। जहां दो वासन होते हैं वहाँ खड़खड़ाहट हो ही जाती है और जहां गांव होता है वहां किसी समय क्लेश भी हो ही जाता है। ऐसे क्लेश की आड़में इस वर्गने इस सस्ते अनाजकी दूकानके विरुद्ध एक नया भूत खड़ा किया। क्या पूज्य महात्माजी के विषयमें ऐसी झूठी वातें नहीं उड़ाई जाती थीं? जैसे इन्होंने तो अहमदावाद में अपने बड़े बड़े मिल वनवा लिये हैं आदी। फिर छोटी दूकान चलाने वाले के विरुद्ध झूठा प्रचार करने में क्या देर लगती है? किसीने कहा कि किसानों के नाम पर ये लोग अपने घर भर रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि श्री आशाभाई और इसके दूसरे दो साथी, श्री कोठारीराव नरसिंहराम जैसे कोर–कसर करनेवाले और प्रामाणिक कार्यकर्ता मिलने कठिन हैं, पर इन के संबंधमें भी लोगों में सच्ची झूठी बातें फैलाई गईं।

गांधीजी जेलसे छूट करके रासमें आये तो इनके पास इस प्रकारकी बातें रखी गईं। सरदारके साथ परामर्श करके महाराजने निर्णय किया कि जब लोगों को सहायताकी आवश्यकता थी तो इन्हें सहायता पहुँचाई गई। अब लोगों में दूकान के विषय में संदेह तथा भ्रांति पैदा हो गई है, इस लिए दूकान नहीं रखनी चाहिए। दूसरी एक ऐसी मान्यता भी लोगों में प्रसारित की गई की सहायता देकर रासके बलिदान का मूल्य घटाया जा रहा है।

दूकान में से पैसे खाने की बात तो एक ओर रही। जेब में से खा–खाकर समय–समय पर लड़तमें सम्मिलित होते रहने के कारण और लड़त न हो तो गृहकार्यकी उपेक्षा करके सार्वजनिक कामों में जुटे रहने के कारण श्री आशाभाई तो ऋणमें डूब चुके थे। फिर भी जनता के काम करने के लिए निकलने वालों को कैसी–कैसी कड़वी घूँटे गलेके तले उतारनी पड़ती हैं और जिनकी सेवा के लिए कटिबद्ध होते हैं उन्हीं की ओरसे कैसे–कैसे आरोप गालियां और रोष सहना पड़ता है––उसका श्री आशाभाई को तथा इनके कुटुंबको पूरा–पूरा अनुभव हो चुका था। 'साँच को आँच नहीं' इस कहा-

वत के अनुसार ये भी समाजकी कसौटी पर कसे जाने पर अंतमें शुद्ध कांचन सरीखे निकले।

ऐसे संयोगोंमें रासकी दूकान बंद हो गई। पर महाराज सुनाते हैं "इस दूकानके अनुभव पर मैं ऐसे निश्चय पर पहुँचा हूँ कि निःस्वार्थी और कुशल कार्यकर्त्ताओं द्वारा जनता के हित के लिए ऐसी दूकान चलाई जाय तो उससे सारे तालुके को लाभ पहुँचाया जा सकता है। व्यापारी मनमाना भाव लेकर गरीब किसानों को लूटते रहते हैं। इस पर ऐसी दूकान पर अंकुश आ जाता है। यदि सरकारी पद्धति से ऐसी दूकान चलाई जाय तो उससे संगठन, सहकार आदि दूसरे अनेक लाभ हो सकते हैं।

जब रास की दूकान बंद की गई तो सारा व्यय निकालकर डेढ़-सौ रुपये की आय हुई थी।

४९ उत्तर गुजरातमें प्रवेश

सुणसरमें निवास

सन् १९३०–३२ की लड़त के बाद पेटलाद कार्यकर्त्री श्री कंचनबहन की उद्योग-शालामें वहाके व्यायाम-मन्दिर की विद्यार्थिनियों को तैरना सिखाने के लिए थोड़े दिन महाराज पेटलाद ठहरे थे। एक दिन वहांके सर फौजदारने महाराज को बुलाया और बताया कि पुलिस–कमिशनर साहब आपको याद करते हैं। महाराज वड़ौदे जाकर कमिशनर साहब से मिले।

कमिशनर—आपको एक काम बताना है।

महाराज—कहिए, क्या है ?

कमिशनर—महेसाणे के पुलिस नायब, सूबा मेजर एकवी आपकी सहायता माँगते हैं। वहाँ अधिक बस्ती ठाकरड़ों की है। वे लोग बहुत उन्मार्गगामी हो चुके हैं। आप इस प्रदेश में जायँ और उन लोगों को सन्मार्ग पर लावें तो हम उनके नाम भी हाजरीमें से निकाल देंगे।

हाजरी निकल जाय यह बात तो महाराज को बहुत ही इष्ट थी। पर उन्होंने उत्तर दिया कि अभी तो मुझे अवकाश नहीं मिल सकेगा। विदा होते समय कमिशनर साहब इन्हें भाड़ा देने लगे। महाराजने लिया नहीं। उन्होंने पूछा—तो भाड़ा कहांसे लेंगे ? महाराज बोले—पेटलादमें जिनके यहां उतरा हूँ वे दे देंगे।

कमिशनर—एक-आध बार हमसे रेल भाड़ा नहीं लेंगे ?

महाराज—क्षमा कीजिए।

इस प्रसंग के बाद दो महीनों में ही महाराजको सिद्धपुर समिति की नींव डालने के लिए उत्तर-गुजरात में जाना पड़ा। उस समय मेजर एकवी से इनकी भेंट हुई। इस समय भी उन्होंने अपने यहां रुक जाने का आग्रह किया था। पर महाराजने उत्तर दिया कि इस विभागसे मैं बिलकुल अपरिचित हूँ। इसलिए एक-आध बार यह विभाग देख लेनेके बाद अंतिम निर्णय कर सकूगा। दूसरे, अब तो मैं रासके सहायता-कार्य में भी लगा हुआ हूँ।

सन् १९२५ में रास की दूकान बंध हुई और महाराज वहां के सहायता-कार्यमें से मुक्त हुए कि तुरंत ही इन्हें 'महेसाणा'

याद आया। ये सीधे जाकर एकवी से मिले। साहब यह जानकर प्रसन्न हो गया। उसने इन्हें 'सुणसर' जाने की सम्मति दी। वहां के ठाकरड़ा-मंडल में काम करने वाले श्री भाईशंकर को लेकर महाराज सुणसर की ओर चल पड़े। महेसाणे से सुणसर जानेके लिए पाटण के रस्ते धीणोज स्टेशन पर उतरना पड़ता है। धीणोजसे सुणासर चार मील है। सर फौजदारने इनसे सुणसर के गोपालजीभाई के यहां जाने को कहा। परंतु गांव में कोई गोपालजी का घर ही नहीं बताता था।

सुणसर में ३०० घर और २१०० जनसंख्या है। वहां की प्रायः सभी वस्ती ठाकर लोगों की है। गांव की ऐसी धाक जमी हुई थी कि आस-पास के गांवों के लोग यहां के लोगों से डरते थे। इनका धंधा-चोरीका गिना जाता था। सुणसर गांव वहुतही पेचील। है। इस निर्वाह-योग्य गाँव में वाहर से आकर दो पिंजारे बस गये थे। गांव में इन दोनोंनें दूकाने निकाली थीं। ठाकुर गाँवों में से सुणसर गाँव कुलीन माना जाता है। वहां के लोगों को घोड़े पर चढ़नेका वहुत शौक है। प्रत्येक घरमें एक-आध तलवार तो अवश्य होगी ही। वहां के सब घर छोटे-छोटे हैं और लोग भी गरीब स्थिति के हैं।

'किसके घर जायँ' ऐसा विचार करते करते महाराज और शंकरभाई वहाँ जा पहुँचे जहाँ चार-पांच व्यक्ति कुछ तोड़-फोड़ कर रहे थे। इस गाँव के किसी पर गाँव का पशु चुराने के अभियोग में यह तोड़-फोड़ चल रही थी। महाराजने उनको ओर

मुड़ कर पूछा– " गोपालजीका घर कौनसा है ? " उनमें से एक बोला–' कौनसा गोपालजी ? हमारे यहाँ तो बहुत गोपालजी हैं ।' महाराजने कहा जो आगेवान है वह । उत्तर मिला–यहां तो बहुत आगेवान हैं । महाराज बोले—हमें नायब सूबेने भेजा है उससे मिलना है । नायब सूबे का नाम सुनकर ये लोग चौंके । एक बूढ़ेने पूछा, ' आप कहांसे आ रहे हैं ? वह तो दूसरे गाँव गया है । दूसरे गाँवसे आये हुए एक पाटीदारने कहा—जो बोल रहा है यह उसीका बाप है । बूढेने फिर पूछा–' गोपालजीसे क्या काम है ? ' महाराजने उत्तर दिया– जब आ जायगा तब मिलेंगे ।

बूढ़ा खड़ा हुआ । महाराज भी इसके साथ–साथ चलने लगे । वह महाराज को अपने घर ले गया । पर घरमें परदा होने के कारण इन्हें एक ओर की कोठड़ी में बैठा दिया । पासमें बूढ़ा भी बैठ गया । महाराजने तकली कातते कातते उससे प्रश्न किया—आप क्या धंधा करते हैं ? बूढा बोला–' खेती करते हैं, क्या करें ! बुरा समय आ गया ; इस लिए लड़कों को खेती करनी पड़ रही है । हम तो कुछ खेती–वेती करते नहीं । ये कणबा (कामे–सेवक) खेती करते हैं । हम तो लाते हैं और खाते हैं । पर अब नया कायदा–क़ानून (विधि–विधान) चल पड़ा ; इस लिए लड़कों को कणबों की भाँति खेती करनी पड़ रही है ।

थोड़ी देरके बाद बूढ़ा गाँवके दो–चार दूसरे आगेवानों को बुला लाया । इनमें दलाजी नामक एक चतुर बूढ़ा भी था । उसने महाराज से कई–एक प्रश्न किये । महाराजने इनका सामान्य

उत्तर दिया। इससे उसे संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि यह मनुष्य यहां किस उद्देश्य से आया है? इसके आने में अवश्य कुछ दालमें काला है। महाराजने तो इतना ही कहा था "मैं गांव देखने आया हूँ"। थोड़ी इधर-उधर की बातों के बाद महाराजने पूछा "यहाँ हाजरी है?"

उत्तर—हाँ, पाँचसौ नाम हाजरी में हैं।

प्रश्न—ये कढ़ा डालें?

उत्तर—ये कढ़ाने के लिए तो हजार का पानी बना डाला। वकील खड़ा करके बड़ौदे तक लड़े। पर हाजरी नहीं निकली। एकबार तो पटवारी के द्वारा तहसीलदार को ४०० दिये तो भी नहीं निकली।

महाराज—पथ्य का पालन करें तो रोग मिट जाता है। हाजरी भी निकल सकती है। निकले कैसे ना?

उत्तर—नहीं निकल सकती। अब तो हम चोरी भी नहीं करते।

महाराज—मान लीजिए कि हाजरी नहीं निकली तो प्रयत्न करने में आपकी क्या हानि है? आपको कुछ खर्च नहीं करना पड़ेगा। मुझ जैसे को एक-आध सेर खिचड़ी दे देनी पड़ेगी खिचड़ी का नाम सुनकर उस गृहपति को विचार आया।

गृहपति—क्या आप खावेंगे?

महाराज—खाऊँगा तो अवश्य।

महाराज सवेरे दस बजे गाँवमें घुसे थे। ऊपर के जब

प्रश्नोत्तर हो रहे थे तब सायंकालके चार बजने वाले थे ।

महाराज खिचड़ी बनाने बैठे और वह गृहपति 'सबको इकट्ठे होना है' यह खबर देनेके लिए गाँवमें गया ।

रातको हाजरी भराने के बाद सब एक स्थल पर इकट्ठे हुए । महाराजने उन्हें चोरी आदि बुरे धंधे छोड़कर सदाचारी जीवन व्यतीत करने से होनेवाले लाभ बताये । बहुत रात हो जाने पर सब बिखर गये । पाँच–सात आगेवान वहीं बैठे रहे । इनमें से एक–दो भगत थे । उन्होंने तंबूरा लेकर भजन गाने आरंभ किये तो रात का एक बज गया । भजन हो जाने के बाद उस पर उनका विवेचन भी चलता । महाराज यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए ।

दूसरे दिन इनमें का एक खोड़ा भगत महाराज को अपने घर ले गया । महाराज उसके यहाँ बैठे थे । इतनेमें धीणोज का मुखी, पुलिस तथा दूसरे दस–बीस जन पग–चिह्न देखते देखते वहाँ आ पहुँचे । वे बोले कि हमारे यहां सेंध लगी है । उसकी पैड़ (पद पंक्ति) आपके यहां आई है । गत रात एक हजार की चोरी हुई है । सारे गाँवके नवयुवकों तथा बड़ों को पुलिस थानेमें ले गइे । उस भगत को भी जाना पड़ा । महाराज यहीं रुके रहे । सायंकाल इनमें से कई एक धीणोज से लौट आये । फिर महाराजने खिचड़ी बनाई जीमी और दूसरे दिन रासका ओर प्रस्तान किया ।

खुणसरमें आकर महाराजने जो कुछ देखा उस पर से इन पर पहली यह छाप पड़ी कि चोरी का धंधा इन लोगों की नस-नस

में व्याप गया है। इसके परिणाम स्वरूप उनकी विवेक–शक्ति भी नष्ट हो चुकी है। हाजरी की प्रथाने इन्हें सुधारने के स्थान पर अधिक शठ (ढोठ) बना दिया है। यदि उनमें काम करना हो तो हाजरी निकलवानी ही चाहिए। इस नये काममें पूर्णतया जुट जाने के लिए हां रास के अधूरे पड़े काम को पूरा करने रास पहुँचे और एक ही सप्ताहमें महाराज वापस सुणसर आ गये।

आने के बाद ये फिर नायब सूबे से मिले और इन्होंने काम करनेकी अपनी पद्धति के विषयमें भी थोड़ी चर्चा की। पुलिस नायब सूबेने कहा यदि आप यहीं काम करने के लिए रुक जायँगे तो हम सारे प्रांतमें से १०–१५ हजार नाम हाजरी में से निकाल देंगे। जो दूसरे दस–एक हजार नाम हाजरीमें बढ़ाने हैं उन्हें रोक देंगे। यह सुनकर महाराज को इस नये प्रदेश में काम करनेका लोभ जागा। सुणसर और उनके आसपास के बारह गाँवोंमें क्रिमिनल ट्राईब्ज–एक्ट लागू किया गया था। इस नियम के अनुसार पन्द्रह वर्ष से बड़ी अवस्था के सब व्यक्तियों को दिनमें दो बार हाजरी भरानी पड़ती थी। वहां की सारी जाति को अपराधी जाति माना गया था। दूसरे गाँवोंमें वंचकों पर का विधान लागू किया गया था। इस विधानके अनुसार जो अपराधी ठहरता है उसे ही हाजरी भरानी पड़ती है। इन बारह गाँवों में से तीन गाँव बलोच जाति के थे। और बाकी के नौ गाँव ठाकुरों के थे। बलोचों का मुख्य गाँव 'सहियद' था। मीरखां डाकू इसी

गाँव का था। यहां के लोग लूट—मार करने तथा सामान्य किसानों को दबाने में कुशल गिने जाते थे।

दो—तीन मास तक महाराज इस विभागमें फिरे। जिस प्रकार बोरसद और महीकांठा विभागमें घूम—घूम कर लोगों को समझाते रहते थे उसी प्रकार यहां भी समझाने लगे। ऐसे ज्ञान प्रचार तथा अधिकारियों के सहकार से उन बारह गाँवों को छोड़कर महेसाणा प्रांतके ३० वर्ष से ऊपरके प्रायः सभी नाम हाजरीमें से निकल गये। तीस वर्ष से नीचे के नाम भी धीरे—धीरे हाजरीमें से निकलते चले जा रहे थे। इस काम में महाराज को वहांके उदारात्मा एवं सुदक्ष पुलिस नायब सूबा मेजर एकवी का पूरा—पूरा सहकार मिलता था। एकबार इसने महाराज से कहा था कि सुणसर के लोग तेजस्वी हैं। इनकी चोरी—लूट छुड़ाइएगा, पर इनका तेजोहरण न होने दीजिएगा।

उन बारह गाँवोंके नाम हाजरीमें से नहीं निकले। इससे वे लोग हताश हो गये। महाराजने उनसे कहा कि आप लोगों पर क्रिमि. ट्रा. ऐक्ट लागू है, इसलिए आपके नाम निकलनेमें थोड़ी देर लगेगी। तबतक आप लोग धैर्य धारण करें। प्रायः सब अधिकारियों के मनमें यह ठस गया था कि सुणसर कभी सुधरेगा ही नहीं। पर मेजर एकवी तथा महाराज का मत इससें उलटा था।

एक दिन महाराज बड़ौदे के पुलिस कमिशनर से मिले और उनसे अपने अनुभवों की बातें कहने लगे। इसपरसे साहब

ने कहा कि आप घूमते रहते हैं । इसकी अपेक्षा यदि स्थिर हो जायँ तो अधिक अच्छा रहे । ऐसा करने से काम दिखाई देगा तथा लोगों में प्रतिष्ठा बढ़ेगी । अधिकारी भी आपसे सुगमता-पूर्वक हिल-मिल सकेंगे । महाराजको इनका विचार पसंद आया । इसके बाद ये सुणसर में स्थिर हो गये । आरम्भ में तो लोगों को ऐसा संशय भी हुआ कि ये सी. आई. ड़ी. (गुप्तचर-विभाग) के व्यक्ति हैं । महाराज का गांवमें रहना भी लोगोंको इष्ट नहीं था । इसलिए गांव की कोख में तालाब के पास एक पुरानी कोठड़ी थी, इसमें ही महाराज ने आसन जमा लिया । इससे गांव के लोगों के साथ बहुत ही कम संपर्क रहता था । तो भी कुछ-एक व्यक्ति कुतूहल-वश महाराज के पास आते थे । पर महाराज आवश्यकता से अधिक बातें नहीं करते थे । कभी कभी तो काम न होने पर झट विदा भी कर देते थे ।

जहाँ महाराज रहते थे वहाँ नहाने—धोने की कुछ सुविधा नहीं थी । तालाब का पानी सूख गया था । इसलिए लोग सवेरे-सवेरे कच्चे कूओं में से पानी भर लाते थे । महाराज पानी भरने के लिए विलंब से जाते थे । तब तक कच्ची कहारों का पानी गंदला हो जाता था । जिससे इन्हें पीने के लिए भी पानी का संकट उठाना पड़ता था । लोग भी ऐसे ही संकट भोग रहे थे । कपड़े मैले होने पर भी उन्हें धोने के लिए न पर्याप्त पानी मिलता था और न कपड़े धोनेके लिए पत्थर । इससे महाराज तो दिनभर केवल धोती में रहते थे । चार-एक

महीनों तक तो लोग महाराज की कोठड़ी में ज्वार का आटा और उड़द की दाल रख जाते थे। इसमें से महाराज रोटी दाल बनाकर खा लेते थे। एक समय खा लिया बस चौबीस घंटे की छुट्टी मिली। ये दूसरे गांव में जाते तो केवल सिटकनी लगाकर ही चले जाते थे। क्योंकि इनके पास चुराने जैसी कोई वस्तु ही नहीं थी। गांव के लोगों के घरो में ये कम जाते थे गांव के लोग ही काम पड़ने पर इनकी कोठड़ी पर आते थे और ये वहां बैठे–बैठे ही इनके प्रश्नों पर चर्चा किया करते थे।

५० अपरिचित प्रदेशकी कठिनताएँ

उत्तर गुजरातमें जाने के बाद महाराज के आरंभ के कुछ मास तो घूमने, परिचय बढ़ाने तथा हाजरी निकलवाने में ही चले गये।

इ। प्रकार घूमते–घूमते एक दिन ये सुणसरमें एक भगत के यहाँ रातभर रहे। उस भगतने इनसे भोजन बनाने के लिए कहा। महागजने अंगीकार नहीं किया, पर उसने अत्यंत आग्रह करके महाराज से दूध पीने के लिए 'हाँ' करा ली। वह भक्त उमंग-पूर्वक दूध दुहाने गया। दैववशात् उस दिन उसकी भैंस भड़क उठी और उसने दूध नहीं दिया। महाराज को इस बात का पता चल गया। इसलिए इन्होंने कहा "चिंता की कुछ बात नहीं। मुझे दूधकी आवश्यकता ही नहीं थी। तुम्हारे आग्रह के वशीभूत हो करके ही मैंने 'हाँ' कर दी थी।" वह व्यक्ति

दूसरे के यहां दूध लेने को जा रहा था। महाराजने उसे रोक दिया।

'महाराज आये हैं' यह जानकर उस भगत (भक्त) के यहां दूसरे व्यक्ति भी बैठने के लिए आये। वे सब उस भगत को नोचने लगे 'अरे, महाराज को कुछ खिलाया ही नहीं? और कुछ नहीं तो दूध तो पिलाना था! महाराज बोले—मुझे दूध पीना ही नहीं था। (उस भगतका बचाव करते हुए कहा) आज भैंसने भी दूध नहीं दिया। एक साथ दो-तीन जन बोल उठे, 'दूसरे किसीके यहांसे ले आना था; इतना भी तुमसे नहीं हो सका? यह सुनकर वह भगत लज्जित हो गया। पर इस सारे प्रसंग से महाराज को बहुत दुःख हुआ। इन्होंने अपने मनके साथ निश्चय कर लिया कि 'सुणसरमें एक वर्ष तक दूध नहीं पीना।' इन्होंने सोचा यदि मैंने दूध पीने की 'हाँ' की तभी तो इस बेचारे को इतना सुनना पड़ा। इसके बाद सात वर्ष तक महाराजने दूध नहीं पिया।

दूसरे दिन सवेरे ही ये हाजरी निकलवाने के लिए 'वीसनगर' की ओर चल पड़े। दुपहरे बारह बजे ये वीसनगर पहुँचे। एक परिचित के यहां गये; पर वह पर-गाँव गया हुआ था। उसका घर बंद पड़ा था। 'अब उतरें कहां? ये एक रामजी मन्दिरमें गये। मन्दिरके महन्तने कहा, अपरिचित लोगों को यहां ठहरने नहीं दिया जाता। महाराज वहांसे लौटे और लौटते—लौटते बोले कि यदि अपरिचित को यहां ठहरने नहीं

दिया जाता तो परिचित (गाँवका) यहां किस लिए आवेगा ? महन्तने उत्तर दिया—तुम्हें इससे क्या मतलब ? तुम अपना रास्ता पकड़ो। महाराज वहांसे चलते बने, पर चलते-चलते फिर सुना गये कि तू अधर्म कर रहा है।

इसके बाद महाराज इसी गाँवके एक प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध सद्गृहस्थके यहां गये। महाराज का वेश, शरीर पर की धूल तथा पसीना देखकर उसने पूछा 'कहांसे आ रहे हो ?' महाराजने उत्तर दिया, सुणसर से। उसने पूछा कैसे आना हुआ ? महाराज बोले हाजरी कढ़ानेके कामके लिए आया हूँ। अपने परिचित व्यक्तिके यहां मैं गया था। पर वह अन्य गाँव गया हुआ है; इस लिए मिला नहीं। उस व्यक्तिने उलटजाँच के रूपमें कहा 'पर इसमें तुम्हारा क्या मतलब है ?' पुलिस नायब सूबे से कहेंगे और हाजरी कढ़ा डालेंगे। अच्छा, तो तुम्हें ठहरना भी होगा न ? जाओ तुम प्रजा-मण्डल के मंत्री से मिलो। लो, मैं उसके नाम पत्र लिखकर दे देता हूँ। उसकी मनोवृत्ति तथा अपरिचित के साथ बात-चीत करने की पद्धति को देखकर महाराज को खेद हुआ कि क्या नगर के सभी लोग इतने विवेक-हीन होते होंगे ? उसने महाराज से घड़ीभर बैठ कर आराम करने के लिए भी नहीं कहा। पानी पिलाने और जिमाने की बात तो दूर रही। बातों-बातोंमें ही टरका दिया। उसका नाम नगर में बहुत प्रसिद्ध था। इससे महाराज को विशेष खेद हुआ। महाराजने उससे

कहा कि चिट्ठी की कुछ आवश्यकता नहीं। वह बोला—ठीक, तो सिरनामा (पता) लेते जाओ; पर महाराज का मन इस समय ऐसा अस्वस्थ (क्षुब्ध) बन गया था कि इन्होंने कहा—ऐसे ही ढूँढ़ लूंगा। बादमें महाराजका उस व्यक्ति के साथ घनिष्ट परिचय हो गया था। महाराज सुनाते हैं कि जब यह प्रसंग उसे याद आता तब उसकी आँखें झुक जातीं।

वहाँ से निकलकर महाराज महादेव के मंदिर में गये। वहाँ की अपवित्रता (कूड़ाकचड़ा) देखकर वहाँ उतरने को महाराज का मन ही नहीं किया। उस मन्दिर से थोड़ी दूर एक धर्मशाला थी महाराज वहाँ गये। धर्मशाला के रखवालेने कहा कि आइए, रहिए। महाराज बोले मुझे नहाना है। रखवालेने कहा—यदि गरम पानी से नहाना हो तो इस सामने के देरासर [जैन मन्दिर] में मिलेगा और ठंडे पानी से नहाना हो तो वह यहीं है। उसकी बातचीत और आव-भगत देखकर महाराज गद्-गद हो गये। महाराजने नहाने के लिए कपड़े उतारे और इनके कन्धे पर जनेऊ दिखाई दिया। रखवालेने पूछा—आप कौन हैं? महाराजने कहा—ब्राह्मण। यह शब्द सुनकर उसने कहा तब तो आप यहां नहीं रह सकते। जाइए-जाइए, कहीं दूसरे स्थान में ठहरिए। यह तो केवल जैन लोगों के उतरने के लिए स्थान है। महाराज बोले—मैं इस धर्मशाला के सभी नियमों का पालन करूंगा। किंतु रखवाला उससे मस नहीं हुआ और बोला—आप अपनी ब्रह्मणों की धर्मशाला में जायँ।

महाराज सुनाते ह—जब उस गृहस्थ के घरसे निकला था तो मुझे खेद, क्षोभ और क्रोध हुआ था। पर इस समय मुझे हँसी आई। वहाँ से निकलते ही महाराज ने निश्चय किया कि अब किसी के यहाँ उतरना ही नहीं। घूमता रहा करूंगा। सारे गांवको चीरते हुए (आर-पार करके) स्टेशनके पास पहुँच गये। स्टेशन के पास एक विशाल धर्मशाला थी। महाराजने देखा—इसका रक्षक एक ठाकरड़ा है और पूछा, क्या मैं यहाँ ठहरूं? वह ठाकरड़ा बोला—होवे, ठहरो, यह पड़ी है धर्मशाला।

महाराज—नहाना है पानी-वानी मिलेगा?

रक्षक—होवे, यहाँ पानी ढँका पड़ा है।

महाराज—कूआं-ऊँआ है या नहीं?

रक्षक—कूआं तो है, पर डोरी बिना निकालोगे किससे?

महाराज—मेरे पास डोरी-लोटा है।

रक्षकने कूआ बताया। महाराज कूए पर जाकर नहाये। ठंडे पानी से नहाने के कारण इनके तन-मन की आधी थकावट दूर हो गई। नहाने के बाद यहाँ थोड़ी देर आराम किया।

गत रात सुणसरमें ये भूखे ही सो गये थे। सवेरे निकले तो वह भगत इनके लिए दूध दुहाकर लाया था। पर इससे पहले तो सुणसरमें दूध न लेने का संकल्प हो चुका था। इस लिए उसे जैसे-तैसे समझा-बुझाकर ये चल पड़े थे। सारे दिन की रगड़-पट्टी के बाद इन्हें बहुत थकावट और कड़ाके की भूख लगी थी। इतने में इनकी दृष्टि धर्मशाला की एक पट्टी पर पड़ी और

इन्हों ने पूछा यहां वासन मिल जायँगे ? रक्षक बिगड़ा और बोला—जबसे यह आया है तबसे हाथ धोकर पीछे पड़ गया है । इतने में एक नया दूसरा पथिक धर्मशाला में आ गया । वह भी कहीं से जल-भुनकर ही आया होगा । महाराज उसकी ओर मुड़े और बोले-कहां से आ रहे हैं ?

पथिक—काठियावाड़ से ।

महाराज—काठियावाड़में कहां रहते हैं ?

पथिक—अमरेली ।

महाराज—खास अमरेली या आस-पास ?

पथिक—समीप के गँव में ।

महाराज—किस गाँव में ?

पथिक—आपको इससे क्या प्रयोजन ?

महाराज—मैं वहां घूमा हूँ ।

पथिक—वांकड़िये में रहता हूँ ।

महाराज—छोटे में या बड़े में ?

पथिक—(साश्चर्य) बड़े वांकड़िये में ।

महाराज—वहां ताराचंद, जमुरवाणी आदि रहते हैं न ?

पथिक—हां-हां, आपकी उनसे कैसी परिचिति ?

महाराज और उस व्यक्ति की फिर तो आपस में बहुत-सी बातें हुईं । एक-दूसरे से ठीक ठीक जान-पहचान हो गई ।

सायं महाराजने एक आना देकर धर्मशाला के रखवाले से गोदडी मांगी । इनकी वेशभूषा देखकर वह बोला कि यहाँ टाट पड़ा

हैं यही ले लो न ? एक आना क्यों बिगाड़ते हो ? महाराजने कहा तू आना पकड़ और गोदड़ी निकाल। उसने किवाड़ उघाड़ कर बिस्तरा चादर, गोदड़ी सब निकाल कर दे दिया। उस नव परिचित पथिक सहित महाराजने वह रात इस धर्मशाला में व्यतीत की।

दूसरे दिन पुलिस नायब सूबा वहां आने वाला था और वह महाराज से मिलना चाहता था। स्टेशन से बाहर निकलते समय उसके किसी सिपाहीने महाराजको देख लिया होगा। इसलिए उसने नायब सूबे को सूचना दी कि रविशंकर महाराज तो स्टेशन पर की धर्मशाला में हैं। सिपाहीने वहां के युवक-मंडल को भी सूचित किया। सबेरे ९-१० बजेके आस-पास वहांके युवक-मंडलका मंत्री तथा दूसरे पांच-सात नव-युवक महाराज को ढूँढ़ते-ढूँढते धर्मशाला में आये।

वे बोले-क्या आपको यहां उतरना चाहिए था ? हमें सूचित तो करना था। इनके साथ बातें चल रही थीं कि इतने में पुलिस नायब सूबे का एक कर्मचारी महाराज को बुलाने के लिए आया। महाराज उसके साथ सरकारी उतारे पर पहुँचे। सरकारी कचहरी के चौकमें नायब सूबेने ७० गांवोंके ठाकरडे इकट्ठे किये थे। इन सबके नाम हाजरी में से निकालने थे। जिन जिन के नाम निकालने थे उन-उन के नामों की सूची सबके तथा नायब सूबे के समक्ष खड़े होकर महाराज बाँच गये और इन्होंने, हाजरी निकल जाने के अनंतर उनके क्या क्या दायित्व बढ़ जाते हैं, यह समझाया।

स्टेशन पर की धर्मशाला के रक्षक का नाम भी इस हाजरी में

से निकल गया। उसने धर्मशाळा में जिस प्रकार का वर्ताव किया था। उसके कारण वह मन-ही मन लज्जित होने लगा।

सायं युवक-मंडल के सदस्यों के साथ महाराज वहां का खादी कार्यालय देखने गये और रात को ठाकरड़ों की आयोजित सभा में गये। इस सभा में वह रखवाला भी आया हुआ था। वह अपने रूखे व्यवहार के विषयमें क्षमा मांगने लगा। महाराजने उससे सीखके दो बोल कहे।

इस प्रकार इन दिनों महाराज चाणस्मा तालुके के गांव-गांव घूमा करते थे।

५१ पानी का दुःख टला

उत्तर गुजरात में आये महाराज को अभी छह मास हुए होंगे कि इतने में मर्हूम महाराजा साहब और दीवान साहब पाटण में आये। दीवान साहबने इस समय महाराज को मिलने के लिए बुलाया और कहा कि कुछ कष्ट हो तो कहिए। महाराजने कहा——मुझे व्यक्तिगत तो कुछ कष्ट नहीं; पर सुणसर गांव के लोगों को पानी की बहुत तंगी है। कहारें (कच्चे कूए) खोदकर पानी पीते हैं। नहाने-धोने या दूसरी स्वच्छता की तो बात ही क्या?

दीवान साहबने सूबा साहब को सुणसर में कूआं बनवा देनेकी सूचना की। वह लिख ली गई। गांव में शाला भी नहीं थी। वह चालू करने के लिए भी आज्ञा दी गई। परंतु महाराजने कहा कि शाला नहीं चाहिए। क्योंकि राज्यमें अनिवार्य-शिक्षण का

नियम लागू है। लोग दंड नहीं भर सकेंगे। दीवान साहबने अनिवार्य शिक्षण नियम में से सुणसर को मुक्त कर दिया। अन्य किसी कष्ट के विषय में पूछ-ताछ हुई तो महाराज ने कहा कि उद्योग—धंधे की आवश्यकता है। खादी-कार्य आरंभ किया जा सकता है; पर उसमें समय लगेगा। बरसात न होने के कारण लोग फाके रहते हैं। इन्हें तात्कालिक सहायता की आवश्यकता है। यह सहायता गांव का तालाब खोद कर पहुँचाई जा सकती है। दीवान साहबने महाराजका यह भी निवेदन स्वीकार लिया। बात तो केवल १५ मिनट तक चली, पर इसमें बहुत से प्रश्न हल हो गये। दीवान साहब की ओरसे प्रदर्शित आत्मीयता तथा सहानुभूतिसे महाराज बहुत प्रसन्न हुए।

दीवान साहब की भेंटके अनन्तर इस विभाग के छोटे मोटे अधिकारी महाराजकी ओर अब नये ही भाव से देखने लगे। सुणसर के लोग भी कूए, तालाब और शालाकी बात जानकर खुश हुए। उन्होंने सोचा कि यह 'दादा' अपने गाँव में आया यह तो बहुत ही अच्छा हुआ।

थोड़े ही समय में कूए का कण्ट्रैक्ट दिया गया और तालाब की खुदाई चालू हुई। इससे खाली लोगों को काम मिला। एक दिन एक ठाकरड़ा महाराज के पास आया और बोला, दादा, चिट्ठी लिख दो न? पिंजारा दस सेर ज्वार जोख कर दे दे।

महाराज——कैसी ज्वार और कैसी चिट्ठी?

ठाकरड़ा—तुम तालाब खुदवाते हो मैं वहाँ काम पर जाता हूँ। मेरी मजदूरी के पैसों पेटे मुझे ज्वार दिला दो।

महाराज—यह तालाब तो सरकार खुदवा रही हैं। वेतन होगा तो तुझे मजदूरी के पैसे मिल जायँगे। तेरे पास ज्वार नहीं तो, ला, चिट्ठी लिख दूँ।

इन्होंने चिट्ठी लिख दी। वहां तो ऐसे पाँच–सात ग्राहक निकले। महाराजने सोचा कि इन लोगों को अन्न की बहुत अड़चन है। यदि सस्ते अन्न की दूकान खोली जाय तो इन्हें अच्छी सहायता मिल सके।

तुरंत इन्होंने इस विषयमें एक पत्र अहमदाबाद लालाकाका को लिखा और पासके-धीणोज गाँव में से १०० मन ज्वार खरीदी और एक आना खोट खाकर इसे बेचने लगे। अन्न प्राप्त करने के लिए लोगों का टिड्डीदल उमड़ा। तीन महीनों में इन्होंने इस दूकान में से २३०० मन ज्वार बेची। पैसे तालाब की मजदूरी में से काट लिये जाते थे। इससे उगाहने के कष्टमें से बच गये। ऊँटों पर बाहरसे अन्न आने लगा तो लोग कहने लगे कि दादाने तो सुणसर को अन्न से भर दिया।

दूसरे वर्ष उपज (फसल) अच्छी हुई। तालाब गहरा हो गया था। कूए में से पानी का झरना बहता था। इससे तालाब का पानी हिलोरें मार रहा था। इस प्रकार लोगों का पानीका दुःख टला।

५२ व्यक्तिगत कूओंकी योजना

जब तालाब का पानी सूख जाता था तो कई–एक किसान तालाब में कहारें खोदकर इसके टुकड़ोंमें गेहूँ की खेती करते थे। इस पर से महाराज को सूझा कि यदि गाँव में थोड़े बहुत कूए हों तो लोग अवश्य दो फसलें पैदा कर सकें तथा गाँव की समृद्धि बढ़े। लोग काम-धंधे लगें और खालीपने के सत्यानाश से भी बच सकें।

महाराजने एक योजना प्रगट की जो शीतकालिक फसल उपजायगा उस मैं मोट (चड़स) लेजुरी (रस्सी) और बीज उधार दूंगा। इन सबके लिए आवश्यक पैसे ये वेलचंद बैंकर के पाससे प्राप्त कर लेते थे। पर इस प्रकार की सुविधा से शीतकालिक खेती करने वालों की संख्य बढ़ी।

सुणसर के दलाजी ठाकुर को महाराजने पैंसठ मन बीज दिया। उसकी गेहूँ हाथ जितनी ऊँची हुई होगी इतने में उसका बड़ा बारह मोट का कूआ टूट गया। महाराज उससे मिलें, दिलासा देकर पूछने लगे कि यह गेहूँ अब किस प्रकार पक सकेगी? दलाजीने कहा–यदि मुझे १०० रुपये का सुभीता मिल जाय तो मैं काम चलाऊ गड्ढा बना कर गेहूँ को सूखने से बचा सकूं। महाराजने उसे एकसौ रुपया दे दिया और उसने अपना काम आरंभा।

इन्हीं दिनों महाराज का 'महेसाणा' जाना हुआ । वहां इन्होंने सूबा साहब नायब पल्ली से दलाजी की विपत्ति की बात कही। यह सुनकर सूबा साहब महाराज के साथ ही उस किसान का कूआ तथा फसल देखने के लिए चले।

साहब की मोटर देखकर लोग इकट्ठे हो गये। महाराज के साथ सूबा साहब को आये देखकर लोगों को बहुत अचरज हुआ और वे महाराज के विषयमें भाँति-भाँति की कल्पनाएँ करने लगे। साहब मोटरमें बैठकर सीधे दलाजी के खेत पर गये। ३०-३५ बीघे का खेत और पवन के झकोरों से हिलोरें लेती बालों को देखकर सूबा साहब का मन नाच उठा। कूए में उतर कर सूबा साहबने कूए की हानि देखी। दलाजीने कामचलाऊ थांवला बनाने का प्रयास किया था, वह भी देखा। बाहर आकर साहब ने कहा--रविशंकर! इस किसान को सौ रुपये की यदि सहायता चाहिए तो मैं अपने वेतन में से भेंट दूँगा। आप दूसरे स्थान से न लाना।

दलाजीने जब यह बात जानी तो वह बोला साहब, क्षमा रखिए।

साहब---क्यों?

दलाजी---मुफ्त रुपये नहीं लेने चाहिए।

यदि मुफ्त पैसे लें तो ऐसे गल जायँ जैसे पानीमें नमक की पुतली गल जाती है। [यह सुनकर साहब को अचंभा हुआ]

सूवा साहब---पर तुममें से जो चोरी करते हैं उनका क्या ? चोरीका माल पच जाय और यह न पच सके यह कैसे ?

दलाजी---साहब' यह तो बाप-दादाओं का धन्धा है। इसमें विपत्ति मोल लेनी पड़ती है। मेहनत का पचता है। इसमें हमारी क्या मेहनत ?

महाराजने बात बदली और कहा—साहब, आगामी वर्ष इस कूए को दुबारा चिनना पड़ेगा। इसलिए आप तगाई का प्रबन्ध कर दीजिएगा। यह बेचारा व्याजमें से बच जायगा। साहबने उसी समय १५००) की तगाई देने का तहसीलदार को आदेश दिया। सुणसर पेचीला गांव होने के कारण तगाई मिलते मिलते ही तीन वर्ष निकल गये। महाराज किसी दूसरे स्थान से पैसे ले आये थे, इससे दलाजी का काम रास आया।

एक दूसरा किसान था। उसके पास २५ बीघे जमीन थी। वह परिश्रमी था। पर उसके खेतमें कूआ नहीं था। उसने सोचा कि कूआ खोदकर अच्छी उपज पैदा करूं। इस लिए महाराजने उसे २०० की सहायता दी। एक तीसरा किसान प्रति रुपया एक आना मासिक व्याज देना ठहराकर अपने खेतमें कूआ खोदने के लिए २०० व्याज पर ले आया। महाराजने इससे कहा कि इस प्रकार तो तुझे वर्ष के बाद १५० व्याज का ही भरना पड़ेगा। इससे तू ऊँचा नहीं आ सकेगा और जो कुछ तेरे पास है वह भी खो बैठेगा। पर वह माना नहीं। इसलिए महाराजने इसे भी २०० दिया। उस सेठ के

पैसे वापस कराये । वादमें इस कूए के लिए ६०० रुपये की तगाई स्वीकृत हुई । इसके कूएमें वहुत पानी आया । इस । से दूसरे किसान भी व्यक्तिगत कूए खुदवानेके लिए ललचाये। महाराजने तगाई के लिए प्रयास किया । इस प्रकार कुल ११ ग्याहर कूए तैयार हुए । ७००० सात हजार की तगाई मिली और गांवमें ढेर-के-ढेर गेहूं पैदा होने लगी । महगाई का भाव मिलने से किसानों की आर्थिक स्थिति भी सुधरी । यह देखकर महाराज को वहुत आनन्द हुआ । इनकी धारणा तो सुणसर गांव में ऐसे ३० कूए खुदवाने की थी । पर लड़ाई आ गई । पाइप मँहगे हो गये । इनके मन की मनमें ही रह गई ।

५३ सुणसरके ठाकुरों की विशेषताएँ

एक दिन महाराज अपनी कोठड़ीमें वैठे—वैठे कात रहे थे। वहां गाँवके एक ठाकुरने आकर कहा देखो, दादा ! अब लहूकी नदियां वहेंगी। अपने साथ के छोटे वच्चे को आगे करके वह बोला लो, इसे वचा लो ।

महाराज—पर है क्या ? कुछ समझ में आवे ऐसे तो बोल।

ठाकुर—उस पशला (पटवारी) ने खेतमें थूहर (सेहुँ) रोपे हैं; मैं उसे काट डालूंगा ।

ऐसा उग्र वना विषय देखकर महाराज खेतमें गये । उस पटवारी का दोष था । इसलिए महाराजने थूहर कुछ दूर हटवा

दिये। खेत में से वापस आते समय महाराजने उस ठाकुर की ओर मुड़कर कहा बूढ़े ! तू तो काट डालने की बात कर रहा था; वह तो ऐसा हृष्ट–पुष्ट (हट्टा–कट्टा) है कि तेरा भी कचूमर निकाल डाले ।

बूढ़ा—अहा....वह निकाल दे कचूमर ?

दादा, वह तो कणबी, उसे तो रीस चढ़ने में ही देर लगे। वह मेरे सामने आवे–इससे पहले तो मैं उसे भूमिसात् कर दूं। ऐसा है मेरा गुस्सा।

चरोतर और इस प्रदेशमें आकाश–पाताल का अंतर है । चरोतर के गाँवों में वर्चस्व पाटीदारों का है । दूसरी जातियों की ओर वे कुछ तुच्छ भाव से देखते हैं । यहां इससे उलटा है । यहां अधिक भाग की बसती ठाकुरों की है और इन गाँवों में वर्चस्व भी उन्हीं का है । यहांके पाटीदारों को ये 'कणवी' (हीनता-बोधक शब्द) कहकर बुलाते हैं । जिस खाट पर कोई ठाकरड़ा बैठा हो उस खाट पर कोई पाटीदार आकर बैठने का साहस नहीं कर सकता। कभी–कभी तो ये पाटीदार को चिलम भरने का काम भी सौंप देते हैं।

एकबार महाराजकी कोठड़ीमें सब ठाकुर टोला बनाकर बैठे थे। इतनेमें पड़ोसके गाँव का एक पाटीदार आ निकला । वह दरी से दूर हटकर जा बैठा। महाराजने उसे दरी पर बैठ जाने को आग्रह किया। तो भी वह आगे नहीं आया। उसके उठकर चले जाने के बाद एक ठाकुरने महाराज से कहा कि आप उस

से दरी पर बैठने के लिए कह रहे थे। पर वह व्यक्ति समझता है कि जहां बड़ा व्यक्ति बैठा हो वहां मुझे न बैठना चाहिए।

महाराज—बड़ा व्यक्ति कौन?

ठाकुर—आप।

'आप' शब्दमें का भाव तो महाराज बराबर समझ गये थे कि भले ही 'आप' शब्द का प्रयोग किया हो, पर उसके मन में तो अपनी (निजकी) बड़ाई घुसी हुई थी।

महाराज—तुम्हारे मनमें कुछ कालिख है। मैं तो कहता हूँ कि संसार में तुम्हारी आवश्यकता ही क्या है। ये लोग तो परिश्रम करके धान भी पैदा करते हैं।

ठाकुर—पर दादा, क्या इन्हें भी मनुष्य कहना चाहिए, कणबी तो कैसे? कलेंदे का कौर भी नहीं होता और घूंट भी नहीं भरी जाती। न इन्हें बोलना आता है, न इन्हें बैठना आता है और न इन्हें किसी की आव-भगत ही करनी आती है।

इसके कथनमें कुछ तथ्य भी था। क्योंकि इस ओर के पाटीदारों का वर्ताव ही कुछ ऐसा ही है।

सुणसर का दलाजी ठाकुर टूटी हड्डियां भी जोड़ता था और प्राणघातक घाव भी सी लेता था। इस विषय का वह विशेषज्ञ था। ऐसा एक भी उदाहरण ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा कि उसके किसी रोगी का घाव पक गया हो। अस्थि-संधान में ऐसा दक्ष होने पर भी इस कामके प्रत्युपकार में एक पाई की भी आशा नहीं रखता था।

एकबार किसी व्यक्ति का हाथ टूट गया। वह धीणोज के डाक्टरके पास गया। डाक्टरने कहा कि अहमदाबाद जाना पडेगा। उस व्यक्ति ने कहा कि मैं तो सुणसर जाऊँगा।

डाक्टर—वहां क्या है ?

व्यक्ति—वहां एक ठाकुर हड्डियां सांधता है।

डाक्टर—किसी *ऊँट–वैद्यके धक्के न चढ़ जाना, बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा।

वह व्यक्ति तो सुणसर ही गया। एक मासके बाद डाक्टर साहबके पास आकर कहने लगा कि देखो, साहब! अब मेरा हाथ बिलकुल ठीक हो गया न ?

डाक्टरने कहा वाह! बिलकुल ठीक हो गया। तुम किस के पास गये थे ? वह बोला सुणसर में दलाजी ठाकुर के पास। डाक्टर को अचरज हुआ और उसने पूछा क्या पारिश्रमिक लिया ? वह बोला कुछ नहीं।

इस बनाव के कुछ दिन बाद ही डा. साहबने दलाजी ठाकुर को बुलाया और उससे कहा "आप धीणोज रहिए। सबकी हड्डियां बैठाइए। आप खाने–पीने की चिंता न कीजिए।" दलाजीने सुनाया कि मेरा सारा जन्म बीत गया। कभी किसी से पाई तक नहीं ली। अब अन्तिम दिनोंमें ऐसा क्यों करूं ? मेरे यहां जो आता है उसकी हड्डी मुफ्त बैठा देता हूँ।

---

*बिन-अनुभवी वैद्य।

यह दलाजी ठाकुर ७० वर्ष की अवस्थामें रोगी हुआ। इसने भूत, डाकिनी–शाकिनी की मान्यता की और भूत निकालने वाले को धुनाया। पर कुछ आराम नहीं हुआ। अंतमें इसने अपने लड़के से कहा मेरी छाती में पीड़ा हो रही है। तू लोहे का कीला गरम करके ला। जहां मैं बताऊं वहां दाग दे। लड़का कीलेको लाल–लाल करके ले आया। बूढेने लड़के का हाथ पकड़ कर 'देख, ए....यहां दाग' ऐसा कहकर अपनी छाती पर दाग दिलाया। पर बूढ़ा इस रोगमें से उठ नहीं सका।

सुणसरमें जब कोई मनुष्य मर जाता है तो 'अमुक भाई पड़ गया' ऐसा बोलते हैं। यह प्रथा है कि छोटे बच्चे से लेकर बडे बूढे तक कोई मर जाय तो काठी-रहित घोड़े पर चढ़कर घोड़े को पीटता हुआ एक जन कफन लेने जाता है। आने वाले के देखाव पर से ही लोग जान जाते हैं कि सुणसरमें कोई पड़ गया। इसी समय नया कपड़ा लेकर सलवार और जामा सिलाते हैं। नया साफा खरीदते हैं और मृतक देह को नये कपड़े पहनाते हैं। जब शव निकलता है तो आगे–आगे ढोल बजता जाता और स्त्रियां मत्थे पर हाथ रखकर गांव के चौराहे तक रोती–रोती पीछे जाती हैं। गांव के चौराहे पर एक 'देवड़ी' है। उसके सामने ताक कर नारियल की बलि देते हैं और बादमें मृत देहकी दहन क्रिया की जाती है।

दसहरे और नये वर्ष के दिन वहां घोड़े दौड़ाने की प्रतियोगिता चलती है। गांव में ५०–६० घोड़े तो आज भी हैं।

पहले तो इससे भी अधिक थे। इनमें बहुमूल्य घोड़े भी होते हैं। घोड़ा न हो तो ऋण लेकर भी खरीद लाते हैं। अथवा चोरी करके ले आते हैं। पर दसहरे के दिन घोड़े बिना किसीको चैन नहीं पड़ती।

घोड़े दौड़ाने में भी ये ऐसे पटु होते हैं कि तीन घोड़ो के एक साथ सरपट दौड़ने के समय भी तीनो घुड़सवारों के कंधे एक दूसरे से भिड़े रहते हैं। दौड़ते हुए घोड़ों पर खड़े होकर बंदूक चलाते हैं। दौड़ते हुए घोड़ों पर से उतर जाते हैं। वहांके लोग महाराज के पास आत्मश्लाघा करते थे कि सुणसर के घोडे आगे कोई दूसरा घोड़ा नहीं निकल सकता। महाराजने जब यह बात अन्य गांव-वालों से पूछी तो विदित हुआ कि ऐसी बात नहीं। उन लोगोंने कहा दादा, यदि हमारा घोड़ा आगे जाने वाला भी हो तो भी हम आगे नहीं निकालते। क्योंकि फिर वह घोड़ा हमारे यहां नहीं रह सकता।

नये वर्ष के दिन पांच आगेवानों की पांच कचहरियों में वर्ष फल बाँचा जाता है। उस दिन प्रत्येक जन ब्राह्मण को दो-चार आने या एक-आध कपड़ा दान करता है। वर्षफल बँच जाने के बाद गांव के चौक में सब नये-नये कपड़ों तथा शस्त्रों से सुसज्जित होकर इकट्ठे होते हैं और एक दूसरे से नये वर्ष की 'राम-राम' करते हैं।

सुणसर के लोग अंदर-ही-अंदर लड़ते रहते हैं। पर अन्य गांववालों का सामना करने के लिए सब एक बन जाते हैं। इस

प्रकार का है इस गांव का संगठन। सुणसर की सीमा में आप को एक भी बंदर दिखाई नहीं देगा। किंतु आस--पास के गांवों में बंदरों का त्रास है। इन लोगोंने बंदरों पर कुछ ऐसी ही धाक जमा रखी है।

होली के दिन वहां पटा खेलने की प्रथा है। प्रत्येक के पास वहां ढाल और तलवार तो होती ही है। छोटे लड़कों के पास शस्त्र तो नहीं होते; इसलिए वे पीलु की लकड़ी को तलवार और पैर के जूतों की ढालें बनाकर पटा खेलते हैं। होली के दिन ढोली ढोल बजाता रहता है और इसी समय स्त्रियों और पुरुषों में एक खेल खेला जाता है। इस खेलमें ढोली को पहले छूने की प्रतियोगिता चलती है। स्त्रियां हाथोंमें डंडे लेकर ढोली को घेरकर खड़ी हो जाती हैं। उनके डंडोंमें से होकर पुरुष ढोली को छूकर आता है। स्त्रियां प्रहार करती हैं, परन्तु पुरुष स्त्रियों पर प्रहार नहीं कर सकता--ऐसा नियम होता है। इस खेल में प्रायः तरुण और तरुणियां ही भाग लेती हैं। स्त्रियों का परदा इस समय बहुत कम सुरक्षित रहता है। वे मुँह-सिर पर दुपट्टे लपेट लेती हैं। इस समय धूल और कीचड़ भी बहुत उछलता है।

गोकुलाष्टमी के दिन वहां 'कानुड़ा' निकालने की रीति हैं। कन्याएँ मिट्टी का 'कानुड़ा' बनाती हैं। सारी रात उस के चारो ओर कन्याएँ गाती रहती हैं और दूसरे दिन उसे तालाब में पधराने जाती हैं। इस समय कोई--एक उन्हें वापस बुलाने का आग्रह करता है। कन्याएँ कानुड़े को घर ले जाती हैं और

वह व्यक्ति कन्याओं को हलुआ जिमाता है।

चौमासे में जब पहला हल जुतता है तो वहां सारे गांव का प्रीतिभोज होता है। गांव की सब बहनें गीत गाती–गाती गांव में घूमती हैं और फिर अपने–अपने खेतों में भात देने जाती हैं। वहांसे लौटती हुई भी ऊँचे–ऊँचे स्वरमें गीत गाती हैं; उस दिन गांव में और बाहर सर्वत्र उत्सव ही उत्सव दिखाई देता है। वहांके लोगों में मिष्टान्न सदा हलुए का ही होता है। कोई–कोई हलुए के साथ थोड़ी मूंग भी बनाते हैं और हलुए के बाद मूंग परोसते हैं।

जब गांव का तालाब खुद रहा था तब लोगों को सामयिक सहायता मिल गई थी। फिर भी लोग मिट्टी खोदने से मन चुराते थे। इसलिए थोड़े दिन तालाब खोदने का काम बंद करना पड़ा था। इससे लोग भूखे मरने लगे थे। पर कोई यह कहने नहीं आया कि हमसे भूल हो गई है, अब काम ठीक करेंगे। उनकी दशा देखकर महाराज के मनमें करुणा जागी। इन्होंने फिर काम आरंभ करा दिया। ऐसा है वहां के लोगों का स्वभाव। उनमें चोरी करने की वृत्ति घर कर गई है। गांवके आगेवानों को चिंता रहती थी कि कहीं महाराज की कोठडी को ही न सफा कर दें। जब महाराज दूसरे गांव जाते तो गांवके आगेवान रातमें दो-चार चक्कर महाराज की कोठड़ी पर मार जाते। महाराज कहते थे कि मेरे पास चोरने योग्य है ही क्या? तब लोग कहते कि आप हम लोगों को नहीं जानते। हम लोग तो पानी पीने का लोटा तक उठा ले जाते हैं। पर दैववशात् महाराज की

कोठडी में से कुछ नहीं गया। एक वार ये सांढे चारसौ रुपये रख कर चले गये थे। लौटने पर वहीं–के–वहीं पड़े पाये।

महाराज सुनाते हैं कि मैं मालीकांदे में गांधी–सेवा–संघ की बैठक में गया था। वहांसे लौटते समय मेरा मन एक देशी पैन लेनेको हुआ। पर वह विचार मैंने तुरंत निकाल दिया। "महाराज को पैन की आवश्यकता है" ऐसा मानकर श्री विनुभाईने बलात् एक पैन इनके गले मढ़ दिया। जब महाराज सुणसर आये तो पैन भी साथ ही था। एक दिन इसे बंडो के खीसे में रखकर ये दूसरे गांव गये। वापस आये तो पैन नहीं मिला। थोड़ी देर के वाद एक लडकेने बताया कि दादा, काकू दो पैसे में तेरा पैन वेच आया। दूसरे दिन जिस लडकेने पैन खरीदा था वह पैन महाराज को वापस दे गया। उसने पैनकी अनी विगाड़ दी थी। इसलिए महाराजने लडकों को डांटा। इसके वाद लड़के आनेसे ही बंद हो गये। इससे महाराजकों दुःख हुआ। जब बड़ौदा गये तो पैन विनुभाई को वापस दे आये।

महाराज सुनाते हैं कि सुणसरके कुछ लोगों के नाम फिरसे हाजरी में आ गये थे। नये सूवे के आनेके वाद यह फेरफार हुआ था। पर महाराजने इसका विरोध किया था। १९४२ की लड़ाई छिड़ी। महाराज जेलमें गये। इससे १५ दिन पहले ही सुणसर के लोग सेंध लगाने गये थे। उनमें से एक व्यक्ति गोलीसे मारा गया था और एक गोलीसे घायल हो गया था। पर दूसरेने छुरे की अनीसे शरीरमें की गोली

बाहर निकाल दी। स्वतंत्र दवा–बूटी करके वह आज भला–चंगा है।

५४. दादा, चाणसमे चलना पडेगा।

एक बार सुणसरमें चाचे–भतीजे में कहा–सुनी हो गई। एक जनकी कोहनीके ऊपर के भागमें से खंर्ती आर–पार निकल गई। इस प्रकार बात–बातमें इनकी साधारण कहा–सुनीं भी गंभीर रूप धारण कर लेती थी। इस घटनाकी जांच के लिए दूसरें दिन गाँवमें फौजदार आया। उसने एक जनके पास से ४५) रुपये की घूंस ले ली। महाराज इसी गाँव में हैं जब यह बात उसे विदित हुई तो वह विचार में पड़ गया। उसने गाँव के आगेवानों के द्वारा कहलाया कि फौजदार साहब आया है और आपसे दर्शन देने के लिए कहता है। महाराज और फौजदारकी अच्छी परिचिति थी। इन्होंने कहला भेजा कि दर्शन करने देव नहीं आते, जाओ, मैं नहीं आता। परंतु लोग बहुत आग्रह करने लगे। इस लिए महाराज को जाना पड़ा। फौजदार के नमस्कार करने के अनंतर महाराज बोले––"फौजदार साहब आक नहीं चबाया करते।"

बाद में फौजदारने लिये रुपये वापस कर दिये। इस छोटे–से बनाव का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। लोगों के मन में यह ठसता जा रहा था कि इनका संपर्क ठेठ तक चलता है।

इस बनाव के दो–तीन दिन बाद एक मुसलमान फौजदार सुणसरमें आया। महाराजका उसके साथ बिलकुल परिचय नहीं था। एक किसानने महाराज से आकर कहा—"महाराज, बहुत दुःख है, मैं मारा जाऊँगा" महाराजने पूछा—बात क्या है? वह बोला—हाजरी में शून्य लग गये हैं। फौजदार जामिन के दो रुपये माँगता है। न भरे तो जेलमें ठोक देगा। महाराजने कहा—तुम हो ही इसीके योग्य, शून्य क्यों लगने दिये? वह किसान गिड़-गिड़ाने लगा। महाराज को दया आई। ये उसके साथ चौरेमें गये। फौजदारने महाराज को खाट पर बैठाया। महाराजने बात आरंभी कि मैं मेजर साहबसे मिला था, जो शून्य लगे हैं ये सब एकसाथ दंड करके निकाल डालने हैं। इस लिए आप जामिन लेने की मत्थापच्चीमें न पड़ें। फौजदार बोला—एक-दो अभियोग तो लिख लिये गये हैं। महाराजने कहा—जितने लिखे गये हैं उतने रहने दीजिए, दूसरे बढ़ाइए नहीं। इसके बाद महाराज फौजदार को एक ओर ले जाकर बोले कि ऐसे विषयोंमें सामान्यतया २) रुपये लेते हैं, पर लेने न चाहिए। आप तो न लेते होंगे—ऐसा मैं मानता हूँ। फौजदार बोला—"नहीं, नहीं, मैं तो ऐसे पैसों को छूता भी नहीं।" महाराजने कहा—बहुत ठीक। बादमें विदित हुआ कि फौजदारने लिये रुपये उस व्यक्ति को वापस दे दिये थे। ऐसे प्रसंगों से लोग सोचा करते थे कि दादासे तो फौजदार भी डरते हैं।

वह जो खंती लगी थी, उसके अभियोगकी अवधि आई। अभियुक्तने महाराजसे आकर कहा—"दादा, चाणसमे साहाय्य के लिए चलना पड़ेगा"। महाराजने सोचा इसे कैसा साहाय्य चाहिए। थोड़ी देर के बाद समझ में आया कि यह तो चाणसमा की कचहरी में अवधि निकलेगी, उस पर ले जायगा। वहां का मुनसिफ चरोतर का पाटीदार था। इसके साथ परिचय करने के लिए महाराजने मोतीभाई साहब से एक पत्र लिखा लिया था।

अवधि आने से पहले ही महाराज तो एक दिन सवेरे आटा-गुड़ मिला कर दो-चार फाँके मार कर चाणसमा की ओर चल पड़े। सीधे मुनासिफ के घर पहुँचे। मुनासिफने इन्हें बारी में से देख लिया था और अपने चौकीदार से कह दिया था कि इससे कह देना कार्यालय में आए। महाराज तो सीधे सीढ़ियों पर से चौबारे पर जा चढे। महाराज ताड़ गये कि मेरा आना साहब को अच्छा नहीं लगा। पर ये तो पास की कुरसी पर बैठ गये। 'कैसे आना हुआ?' इस प्रश्न के उत्तर में महाराजने अपने खीसे में से मोतीभाई का वह पत्र निकाला। साहबने कहा—नहीं, मुझे पत्र नहीं बाँचना। जो कुछ कहना है मौखिक कहो। महाराज बोले—पत्र तो बाँचिए। साहब बोला—मैं ऐसे पत्र नहीं बाँचता। महाराज कहने लगे कि मैं सुणसर से आ रहा हूँ। वहाँ के कुछ व्यक्तियों की हाजरी में शून्य लगने के कारण अभियोग हुए हैं, इसमें कम-से-कम दंड हो—

यह कहने आया हूँ। क्यों कि इस वर्ष दुर्भिक्ष है। लोग अधिक दंड नहीं भर सकेंगे। दूसरा एक घरेलू झगड़े का अभियोग है—इसमें संधि कराने जैसी है—यह कहने आया हूँ। साहब बोला 'हम पर भी उत्तर लेनेवाले होते हैं'। महाराज बोले—आप से कौन पूछ सकता है? कहिए तो उसकी चिट्ठी लाऊँ। एक वार मेरी बात सुनिए फिर जो योग्य लगे कीजिए। इतनी चर्चा के बाद उसने महाराजके हाथ में से चिट्ठी ली और बाँचते हीं उसका सब दिखाव बदल गया।

साहब—आपने भोजन किया या नहीं?

महाराज—भोजन—वोजन तो नहीं करना। पर कहिए आप इस विषयेमें क्या कर सकते हैं?

साहब—अनुपस्थित व्यक्तियों को थोड़ा कारावास और दंड होगा।

महाराज—ऐसे नहीं, दंड तो बिलकुल होना ही नहीं चाहिए। एक—आध दिनका कारावास कर दीजिएगा।

साहब—अच्छा, दंड नहीं करेंगे। तीन दिन का कारावास होगा।

महाराज—उस मारा-मारी के अभियोग का क्या समाधान?

साहब—वह तो हो जायगा।

महाराज— अच्छा, अब मुझे जानेकी अनुमति दीजिए।

साहब—आप भोजन करके जाइए। भोजन का समय होनेवाला है।

महाराज आग्रह के वश न होकर वापस खुणसर चले गये।

मारा-मारी के अभियोग की अवधि से पहले गाँवका पंच मिला। इसमें चाय–×कसुंबा हुआ। आगेवानोंने दोनों पक्षों में समाधान करा कर अभियोग वापस खींचने का निर्णय किया। अवधिके दिन १०–१५ आगेवानों का टोला कचहरी में जाने के लिए तैयार हुआ। एक जन महाराज को भी बुलाने आया। महाराज बोले–वहाँ सबकी क्या आवश्यकता हैं? ये सब वहाँ जाते हैं तो मेरी क्या आवश्यकता है? अंत में अभियोगवाला और महाराज दोनों जायँ–यह ठहराया गया। आगेवानों को यह अच्छा नहीं लगा। क्यों कि चाय–कसुंबा और कलेवा तो मिलता ही। ऊपर से दाव चल जाता तो थोड़ी घूंस भी मिल जाती। यह सब अटक गया।

उस व्यक्ति को चाणसमा की कचहरी में बैठा कर महाराज मुनसिफ के घर गये। उसकी सम्मतिके अनुसार प्रार्थना–पत्र लिखाया और कचहरी में संधिपत्र स्वीकृत हुआ। उस व्यक्ति को इसकी कल्पना तक नहीं थी कि इतनी शीघ्रता तथा सुगमता से पत्रांकित अभियोग का संधि–पत्र स्वीकृत हो जायगा। वह बहुत प्रसन्न हुआ। कचहरी से बाहर निकलने के बाद उसने महाराज से कहा–"दादा, चलो ना जरा होटल में हो आवें। महाराजने कहा–होटल में क्या करना है? पैसे कूदते हैं? इस होटल के चाय–बिसकुट की अपेक्षा तो घर जाकर घी–गुड़ खा लेना।" महाराजकी ऐसी बात सुन कर वह अधिक एक अक्षर बोले बिना ही सीधा घर पहुँचा।

× अफीम घोलकर प्रीति के लिए एक–दूसरे को पिलाना।

इतनी जलदी संधिपत्र लेकर आये हुए को देख कर लोग इकट्ठे हो गये। किसीने पूछा—क्यों कितना खर्च हुआ? उसने उत्तर दिया केवल अरजी करने के चार आने। महाराजने तो चाय-वाय लेने की भी ना पाड़ दी। ऐसे संधिपत्र पर सामान्यतः २५—३० रुपये तो सहज ही खर्च हो जाते हैं। यह चार आनों में ही निपट गया—इससे सब को अचंभा हुआ।

अवधि के दिन हाजरीवाला भी बुलाने आया। महाराजने कहा—ऐसे कामके लिए मै नहीं जाऊँगा। मुनसिफ साहब भले व्यक्ति हैं। जा, दो—तीन दिन की सजा होगी। ऐसा ही हुआ, वह तीन दिन की सजा भुगत कर महाराजके चरणों में आ पड़ा। गाँवके लोग कोर्ट—कचहरी तथा पुलिसके पंजेसे बहुत घबराते हैं। क्यों कि इनकी स्थिति अज्ञात पानीमें घुसों की-सी हो जाती है। इनकी निरक्षरता तथा अनभिज्ञता से अनुचित लाभ—सिपाही से लेकर फौजदार तक और अरजी लिखनेवाले से लेकर वकील-मुनसिफ तक—उठाते हैं। कहाँ जाना चाहिए, क्या करना चाहिए—इसकी कुछ भी गम नहीं पड़ती। सिंह—जैसा मनुष्य अपने अज्ञान के कारण खाखी कागज देखकर गरीब बकरी जैसा बन जाता है। यदि वह तिनके का सहारा लेने जाता है तो अधिक गहरे गड्ढे में उतर जाता है। छोटी-सी अरजी करनी हो या कोर्ट—कचहरी का बुलावा आया हो तो पच्चीस—पच्चीस निठल्लुओं के टोले कचहरी के आगे दिखाई देते हैं, इसका कारण भी यही है। "संघ-बल यहां मुझे बचा लेगा" ऐसी झूठी कल्पना वह किये रहता

है। कई–एक खाऊ पीर आगेवान या ऐसे कामोंमें चलते पुर्जे पटेल [मुखी] ऐसे अवसर पर अपना खूब प्रभुत्व जमाते हैं। कई–एक बार ऐसे कामों में से वे अपने हाथ भी रंग लेते हैं। कितनी बार दूसरे व्यर्थ खर्च भी करा डालते हैं।

कोर्ट–कचहरी का काम-काज मातृभाषा में संपूर्णतया चालू हो जाय और किसानों के अक्षरज्ञान तथा सामान्य ज्ञान का पारा कुछ ऊँचा चढे–इन्हें घबराहट और चूस में से बचाने का उपाय है।

५५—संघर्ष की जड़ कटी

सुणसर समीपके धोणोज गाँवमें एक बावा रहता था। उसके पास ३००–४०० बीघे जमीन थी। वर्षोंसे वह जमीन सुणसरके लोगोंको साझे पर दी जाती थी। सुणसरवाले प्रतिवर्ष उसका साझा पूरा–पूरा नहीं देते थे; तो भी बावा इन्हींको साझे पर जमीन देता था। वह बावा निःशिष्य मर गया और अपने पीछे पाँच हजार रुपये की वार्षिक आय छोड़ गया। सरकारने वह जमीन अपने अधिकारमें ले ली। जमीनकी नीलामी निश्चित हुई। सुणसरके लोगोंको पता चला कि जो जमीन हम जोत रहे हैं, उसे लेने के लिए कोई दूसरा व्यक्ति तैयार हो गया है। इसलिए वे सब महाराज के पास गये। उन्होंने प्रार्थना की–यह जमीन हमें मिलनी चाहिए।

महाराजने सोचा यदि यह जमीन हाथ से निकल जायगी तो कितने लोग बिना काम–धंधे के हो जायँगे और दैनिक

संघर्ष एवं मारा–मारी खड़ी हो जायगी। इसलिए यह काम तो अटकना ही चाहिए।

महाराज तहसीलदारसे मिले। इन्होंने सब परिस्थिति समझाई। इसलिए वे सुणसर के लोगों को ही अलग–अलग जमीन देनेको सहमत हो गये। इससे किसानों को डेढ़–डेढ़ रुपयेमें जमीन के टुकड़े मिल गये। किन्तु इस जमीनके पहले अवशिष्ट धनके लिए नोटिस दिये गये। लोगोंने नोटिस लेने से ही नकार कर दिया। महाराजने कहा कि ऐसा नहीं कर सकते, नोटिस तो स्वीकारना ही चाहिए। लेनेवाला तुमसे अपना धन क्यों छोड़ेगा?

इसके बाद महाराज चाणसमे कचहरी में गये और वहां के कर्मचारी से कहा कि जो नोटिस निकले हैं उनका हिसाब तो दिखाइए। कर्मचारीने कहा–क्या आपके नाम नोटिस निकला है? जिसके नाम नोटिस निकला होगा उसे ही हिसाब दिखाया जायगा। महाराज दूसरी बार उस व्यक्तिको साथ लेते गये जिसके नाम नोटिस निकल चुका था। जब उस व्यक्तिने हिसाब की माँग की तो उसने इधर–उधर का हिसाब दिखाकर टरका दिंया। इससे महाराज को संतोष नहीं हुआ। इन्होंने सोचा कि किसानों के धन की छह वर्ष को अवधि बीत गई। महाराजने हिसाबों की सूची बना ली और वकीलों की सम्मति ली। विदित हुआ कि सरकारी जमीन की अवधि नहीं बीता करती। यहाँ तो सरकार

इस जमीन की व्यवस्था करती है। जमीन पर सरकार का स्वामित्व नहीं; इसलिए अवधि बीतने से किसानों को लाभ मिल सकेगा। सुणसर आकर महाराजने किसानों से कहा कि हमें पहले का अवशिष्ट साझा नहीं देना चाहिए। वह कर्मचारी और तहसीलदार भी समझ गये—इसलिए उन्होंने इस बात को दुबारा छेड़ा ही नहीं। इससे गाँव—लोगों को २—३ हजार का लाभ हुआ।

दूसरे वर्ष फिर इस जमीन की पाँच वर्षके लिए निलामी हुई। महाराज चरोतर में गये हुए थे। उसी समय नीलामी की घोषणा की गई। धीणोज का एक गृहस्थ पटवारी की सहायता से यह जमीन एक साथ (सारी—की—सारी) लेना चाहता था। इस बात की खबर सुणसर के लोगों को नहीं लगने दी। महाराज वापस आये तो उन्होंने देखा कि सुणसर के लोगों के हाथ में जमीन न रहे—इस प्रकार की युक्ति चलाई जा रही है। इस समय की नीलामी तो हो ही गई। तीसरे वर्ष की नीलामी होनी शेष थी। सुणसर के लोगों को यह विदित हो गया तो वे कहने लगे कि "जो हमारी जमीन रखेगा उसकी नाक काट डालेंगे। तीन वर्ष की सजा होगी तो एक—आध लड़का काट आवेगा।" महाराज उस गृहस्थ से मिले और कहा कि आपको नीलामी में खडे होने का पूर्ण अधिकार है। पर आप रोटी, दाल—भात और शाक के अतिरिक्त पापड़—चटनी प्राप्त करना चाहते हैं। जब कि उन लोगों को केवल पेटभर रोटी के ही लाले पडे हैं। इसमें

आपको नहीं पड़ना चाहिए। यदि आप इसमें पड़ेंगे तो मुझे उनकी सहायता के लिए खड़ा होना पड़ेगा!

इसी समय दीवान साहब फिर पाटण आये थे। उनसे मिलनेके लिए महाराज गये थे। उन्होंने पुलिस नायब सूबे तथा नये आये तहसीलदारको सूचित कर दिया था कि जो जमीन सुणसर वाले जोतते हैं यदि वह बाहर के लोगों को देंगे तो आपकी कचहरियों में प्रतिदिन अभियोग खड़े रहेंगे। इसलिए वह जमीन सुणसरवालों को देने की ही व्यवस्था करनी चाहिए।

अंतमें वह जमीन तीसरी नीलामी में सुणसरवालों को ही पहले के भाव पर मिली।

सुणसर के लोग दुर्वृत्तता करने में भी पीछे नहीं हटते थे। समीपके गाँवों में से पाटीदारों के बैल खोल लाते और पैसे लेकर वापस करते। महाराजने गाँव के आगेवानों को टोक-टोक कर उनकी यह कुटेव कम कराई। एकबार तो महाराज स्वयं बैल लेकर उसके मूल स्वामीके घर जाकर वापस कर आये थे।

५६—चिनगारीमें से अग्निज्वाला

सुणसर के समीप मोटप नामक एक गाँव है। अनावृष्टि वाले वर्ष वहाँके लोगोंने गाँवके पास से होकर बहती हुई नदी का पानी पाल (मेंड) बाँधकर तालाब में रोक लिया था। तालाब भर जाने पर भी वे लोग पाल तोड़ने की ना पाड़ते थे। समीप के कनोड़ा गाँवके लोगों को इससे बाधा पड़ती थी। इन्होंने तंग आकर

तहसीलदार के पास निवेदन किया। उसने इन्हें विधिपूर्वक पग उठाने की सूचना दी। महाराज को यह बात विदित हो गई। ये क़नोडा कें लोगों से मिले और उनसे कहा कि ऐसा न करना; मैं मोटप के लोगों को समझाऊँगा। लोगोंने अभियोग नहीं चलाया। दूसरी ओर महाराजने मोटपके लोगों को पाल तोड़ डालने की सम्मति दी। पर वे कसम–कस में पडे हुए थे। और कटाक्षमें बोले—यह पाल हमसे कैसे टूट सकती है?

इस ओरके पाटीदारों में शिक्षण और संस्कार न्यून मात्रा में पाये जाते हैं। इनमें निर्बलता भी बहुत है, पर यहाँ ढीला देखते हैं वहाँ घुस बैठते हैं। जहाँ इनकी चलती हो वहाँ बल दिखाते हैं। महाराज के कथन पर इन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

इससे कनेडा के नव–युवक भी पाल तोड़ने के लिए उमड़े। दोनो गावों में मारा–मारी हुई। इसमें रोकनेवाले सिपाही भी घायल हो गये। विषय अधिक गंभीर हो गया। दोनो गाँवों के १५–२० जन जेलके सीखचों में बंद कर दिये गये। दोनो गाँवो के पारस्परिक संबंध बिगड़ गये। लड़कियों को पतिगृहों में जानेसे रोक दिया गया। यहाँ तक यह विषय गंभीर बना।

इस प्रकार छोटी–सी बातमें से यह बवंडर खड़ा हो गया। तीन मास में सात अवधियां पड़ीं। पर कुछ निवेड़ा नहीं हुआ। कचहरी के कामसे तंग आकर लोगोंने पाँच–सात सौ की भेंट–पूजा (घूस) भी रखी। पर कुछ परिणाम नहीं

निकला। अंतमें इन्हें विदित हुआ कि इस अभियोग का समाधान सूवासाहव ही करा सकते हैं और संधि–समझौता करना हो तो रविशंकर महाराज की सहायता लेनी चाहिए। इसलिए लोग हारकर महाराज के पास गये। महाराज ने कहा कि एक वार तुम गाँवका पंच बुलाओ और उसके समक्ष अपनी लड़ाई का समाधान करो। वादमें समझौते की वात हाथ में ली जा सकती है। केवल ऊपर से थिगली लगाने से कुछ सिद्ध होनेका नहीं।

दोनो गाँवोंके पंच मिले। विशाल विवाहकी–सी धूमधाम हुई। डेढ़ मन तो लड्डू परोसे गये। महाराजने इस खर्च के निमित्त इन्हें फटकारा भी। अंतमें यह निर्णय हुआ कि दोनो गांव लड़ाई-झगड़ा वन्द कर दें, मिल-जुल कर रहें, और जो आज तक वना उस पर मिट्टी डाल दें। आस-पास के तीन गांवों की शालाओं के विद्यार्थियों को वतासे वांटे गये। अभियोग का सन्धिपत्र लेने के लिए जो व्यय हो वह मोटप गाँव भरेगा—यह समाधान का पण-बंध किया गया। महाराज ने कहा कि सन्धिपत्र पर कुछ व्यय नहीं होगा, जाओ, मैं करादूँगा। ये सूवा साहव से मिले और सरलता से सन्धिपत्र स्वीकृत हो गया।

आज भी मोटप और कनेडा गांव मिल-जुलकर रहते हैं और महाराज को आशीर्वाद देते हैं।

५७—सेवक के अयोग्य अधीरता

एक-बार महाराज से पूछा गया कि आपने खेड़े जिले के पाटणवाड़ियों में जो काम किया है और उत्तर गुजरात के सुणसर आदि गाँवों में जो काम किया है इन दोनों में से आप किसे श्रेष्ठतर मानते हैं ?

क्षणभर का भी विलम्ब किये बिना महाराज ने उत्तर दिया कि जो पाटणवाड़ियों की झोंपड़ियों में बैठकर किया, उसे।

प्रश्न—इतने वर्षों के अनुभव के बाद किये काम को आप घटिया क्यों बताते हैं ?

अब तो इनका वाणी-प्रवाह चला और इनके हृदय के दुःख-भरे भाव बिखरने लगे। ये बोले :—

अवश्य, इसके मूल में वास्तविक कारण है। जब मैं सुणसर में आया तो मेरी पीठ पर सरकारी सत्ता का हाथ था। इसके बल पर मैं लोगों को झटपट सुधारना चाहता था। ठेठ दीवान साहब से लेकर छोटे-से-छोटे अधिकारी तक का मुझे साथ मिला था। इससे एक ही वर्ष में सुणसर आदि क्रि० ट्रा० ऐक्ट के अधीनस्थ बारह गाँवों की हाजरी कढा डाली। हजारों रुपये खर्च करके गाँव के कूए, तालाब, शाला आदि निर्मित कराये। सुणसर में खेती की उपज बढ़े—ऐसे दूसरे १४ चौदह कूए बनवाये। गाँव में पुस्तकालय चालू किया। प्राढ़वर्ग निकाला। सस्ते अनाज की दूकान चलाई

और दूसरी छोटी-मोटी बहुत-सी सहायता पहुँचाई । फिर भी मुझे सुणसर के काम से इतना सन्तोष नहीं । इसका मूल कारण मुझे यही प्रतीत होता है कि कांठा विभाग में मैं लोगों के प्रेम से वहकर सेवा करने गया था और इधर एक अधिकारी के खींचने से सुधारक के रूप में आया था ।

लोग चोरी न करें, मद्य न पीवें, अपने वर्षों के पुराने संस्कार छोड़ दें और ये सुधर जायँ—यह मेरा लक्ष्य था । यह लक्ष्य पूरा करने के लिए मैं लहू—पसीना एक कर रहा था । चल-चलकर पाँवों घिसा डालता था । बोल-बोल कर गला छील डालता था । पर जैसा मैं चाहता था ऐसा सुधार नहीं होता था । इससे मैं व्याकुल हो उठता और वहां के लोगों के प्रति जो प्रेम बढ़ना चाहिए उसके स्थान पर उकताहट बढ़ती जाती—मेरी सुणसर की सेवा में यह अत्यन्त कमी थी ।

कांठा विभाग का जोगण गाँव भी चोर गिना जाता था । पर जब मैं वहाँ के लोगों को देखता तो मेरे हृदय में उनके लिए प्रेम उभर आता । उनके बच्चों को देखकर मैं खुश-खुश हो जाता । जबसे सुणसर गाँव देखा तब से मेरे मन में एक ऐसी गाँठ पड़ गई कि यह गाँव शठ है । इसके परिणाम-स्वरूप मैं दिन-पर-दिन गाँव से दूर होता गया।

आरम्भ में गाँव के लोग मेरी कोठड़ी पर आटा-दाल रख जाते थे । इसमें से मैं खाने के लिए बना लेता था ।

कूए के कण्ट्रैक्ट के समय कण्ट्रैक्टर तथा उसके दो व्यक्ति मेरे यहाँ आये। मेरे पास इन्हें जिमाने के लिए कुछ नहीं था। इनके भोजन की कोई व्यक्ति व्यवस्था करे ऐसा मेरी दृष्टि पर नहीं चढ़ा। इनके घरों में जाकर व्यवस्था कराने के लिए मेरा मन नहीं माना। गाँव में एक दूकान थी वह बन्द होने से खिचड़ी भी नहीं मिल सकी। कण्ट्रैक्टर ने एक रुपया देकर सुखड़ी (गुड़ और आटा) सेककर लाने को कहा। पर वह भी न बन सका। अन्त में उन बन्धुओं को कूए का माप लेकर सुणसर में से भूखे ही जाना पड़ा। इस घटना ने मुझे बहुत क्षुब्ध कर डाला। मैंने निश्चय किया कि अतिथियों के लिए घर में सीधा अवश्य रखना चाहिए। दूसरे दिन धीणोज जाकर सीधा ले आया और अपनी कोठड़ी में रख लिया।"

इस प्रकार महाराज गाँव-लोगों से दूर हटते चले जा रहे थे। गाँव-लोगों की ओर से इनके भोजन की व्यवस्था तो चालू ही थी। एक दिन धीणोज का रेलवे पोर्टर महाराज के पास आया और फूट-फूट कर रोने लगा। उसकी एक गाभिन बकरी को सुणसर के लोग मारकर खा गये थे। उसने दुःखित हृदय से कहा कि आप इतने मास इनके बीच रहे, पर ये हत्यारे तो ऐसे-के-ऐसे ही रहे। पोर्टर की तड़फती हुई अन्तरात्मा को देखकर महाराज का हृदय पिघल गया। इन्होंने सोचा—ये लोग साफ विवेकहीन हैं। इनका इतना-इतना हित साधने पर भी इनकी आँखें नहीं खुलतीं। ऐसे पापियों का अन्न खाने में

भी क्या सार है ? इस प्रसंग के वाद महाराज ने वहां का अन्न वन्द कर दिया। सरदार साहव के पास से इन्होंने मासिक ५–७ रुपयों की मांग की। सरदार साहव १२) मासिक भेजने लगे। इनमें से जो कुछ वच जाता था उसे महाराज ग्राम-कार्यों में ही लगा देते थे। पर इनकी अन्तरात्मा इस गाँव से ऊव गई थी। पिछड़े या अज्ञान लोगों को देखकर हृदय में प्रेम जागना चाहिए था। इसके स्थान पर इनकी भूलें देखकर यहाँ घृणा जागती थी। इसे महाराज अपनी महाभूल वताते हैं।

सेवक के मन में जैसे भाव उठते हैं वैसे ही प्रत्याघात जनता के मन में भी उठ खड़ते हैं—यह एक स्वाभाविक वात थी। ऐसे प्रत्याघातों से महाराज अधिक-से-अधिक आकुल हो उठते थे।

एक वार कूए का पत्थर जड़ने के लिए शिल्पी आया था। उसका काम पूरा हो जाने पर महाराज ने उसे भोजन के लिए बुलाया। वाद में परिवाद (शिकायत) आया कि महाराज, आपने तो हमें भोजन के लिए वुलाया था; पर कोई हमारे विलकुल नये जूते उठाकर ले गया। महाराज को इस वात का वहुत आघात पहुँचा। इन्होंने वहुत जाँच कराई, पर जूते हाथ नहीं लगे। अंत में वह वेचारा पैरों पर चीथड़े वाँधकर धूप में महेसाणे को चल पड़ा। जब रात को गाँव के लोग इकट्ठे हुए तो महाराज ने अपना दुःख प्रगट किया। दूसरे दिन सवेरे उठे तो एक जन इनकी कोठड़ी में आकर जूते रख गया। उसे देखकर महाराज ने अपनी

उकताहट निकाली—"क्या इन जूतों को मैं सिर पर रखूँ ? उल्लुओं, तुम ऐसा किसलिए करते हो ? मैं अपनी रोटी खाकर रहता हूँ फिर भी तुम मुझे क्यों तंग करते रहते हो ? वह बेचारा तुम्हारे गाँव का काम करने आया था, उसे उपहार देना चाहिए था या उलटे उसके पास का ही चुरा लेना चाहिए था ?" चोरी करने वाले ने कहा कि चोरी करने का पहले-से विचार तो नहीं किया था; पर नये जूते देखने से मन कर आया।

महाराज स्वयं कहते हैं कि इस उकताहट के मूल में मेरी अधीरता के बिना और कुछ नहीं था।

ऐसा ही एक दूसरा वृतांत भी जानने जैसा है—एक व्यक्ति प्रतिदिन लोगों के घास के पूले चुरा लाया करता था। उसके पास घास का एक ढेर हो गया। अन्य गाँव की गायों का झुण्ड वहां से निकला। उसने दानवीर होकर वह सारा ढेर खिला दिया। महाराज ने उससे कहा कि तूने वर्ष भर तो चोरी की अब दूसरों की गायों को अपना घास क्यों खिला दिया ? उसने उत्तर दिया कि हम खत्री होने हैं। गायें भूखी रंभाएँ यह हमसे कैसे सहन हो सकता है ?

एक स्त्री अपने पड़ोसी एक अंधे एवं गरीब व्यक्ति को अपना घर सँभला कर दूसरे गाँव गई। जब वह वापस आई तो उसके घर का अन्न आदि सब चुरा लिया गया था। यह बात महाराज तक पहुँची, इन्होंने गाँव को इकट्ठा किया और

उस स्त्री की चोरी की बात सबके सामने रखी। पर कोई नहीं माना। अन्त में महाराज ने अनशन आरम्भ किये। पाँचवें दिन वह पड़ोसी चोरी मान गया। पर उसके पास देने के लिए कुछ नहीं था। क्योंकि वह सब खा गया था। अन्त में गाँव-लोगों ने अन्न उगाह करके उस स्त्री को दिया। महाराज का कहना है कि ऐसे प्रसंगों पर उपवास तो मैंने चरोतर में भी किये थे; पर यहां मेरे मन में जो चिढ़ चढ़ती थी वैसी वहाँ कभी नहीं चढ़ी थी। यह मेरे उपवास का ही दोष था।"

एक नव-युवक को चोरी के अपराध में पकड़ लिया गया। महाराज के पास उसने कहा कि मैंने चोरी नहीं की। इसलिए महाराज ने उसे छुड़ा दिया। खेत में कूआ बनाने के लिए महाराज ने उसे २००) दो सौ की सहायता भी दी थी। पर थोड़े ही दिनों में उसने सेंध लगाई और वह पकड़ा गया। उसका भाई महाराज के पास गया। पर महाराज ने उसे दुत्कार कर बाहर निकाल दिया।

महाराज का कहना है कि—"यह सब मैं अपने स्वभाव की निर्बलता मानता हूँ। मुझमें रजोगुण और तमोगुण प्रबल हो रहे थे—यह मुझे स्वीकारना ही चाहिए।"

महाराज के जीवन का दुःखद वृत्तान्त—

सुणसर का एक नव-युवक अत्यन्त चोरी करने लगा था। गांव में के सभी नाम हाजरी में से निकल गये थे।

पर पुलिस अधिकारीने उसका नाम शेष रख छोड़ा था। एक बार उसका बाप महाराज को उलाहना देने आया कि आप सबके नाम तो हाजरी में से निकलवा सकते हैं, पर मेरे एक लड़के का नहीं निकलवा सकते ? महाराज ने जवाब दिया कि नाम निकलवाने जैसे उसके लक्षण ही कहाँ हैं ? उसकी चोरी तो प्रति दिन चलती ही है और दूसरों को भी उसमें मिला लेता है ।

उस नव-युवक विषयक महाराज का असद्भाव दिन-पर-दिन बढ़ता जाता था । एक दिन सुनने में आता कि उसने किसी का कान फाड़कर गहना झपट लिया । दूसरें दिन समाचार मिलता कि उसने रात को किसी के पैर के भूषण निकाल लिये । ज्यों-ज्यों ऐसे समाचार आते जाते थे त्यों-त्यों महाराज का उसके प्रति असद्भाव बढ़ता जाता था । अन्त में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि उससे दो शब्द कहने को मन चाहता, पर उसे देखते ही मन में क्रोध जाग उठता था ।

देखने-पेखने में वह सुन्दर युवक था । उदार स्वभाव-का था । दो सौ की घोड़ी रखता था । एक दिन वह महा-राज के पास गया । महाराज कुछ बांच रहे थे । महाराज ने उसके सामने देखा, पर न देखा-सा कर दिया । फिर भी वह महाराज के समीप पहुँच गया और बोला—आप मुझ पर

इतना असद्भाव क्यों रखते हैं ? मेरी ओर देखते तक भी नहीं ?

महाराज—तू क्या नहीं करता जो तेरे सामने देखूँ ?

युवक—मेरा नाम हाजरी में से कढ़ाइए ।

महाराज—तेरा नाम नहीं कढ़ाया जा सकता ।

युवक—अजमाइए तो सही ।

इससे पहले एक बार ऐसा बना था कि महाराज ने उससे कहा:— यदि तू सुधर जायगा तो तेरा नाम हाजरी में से निकलवा दिया जायगा । सब लोगों ने चोरी न करने की शपथें कीं तो उसने भी की । महाराज जब चरोत्तर में चले गये थे तब धीणोज की भैंसें छुड़ाई गई थीं, उसमें उस युवक का हाथ था । महाराज ने सुणसर जाकर भैंसों के स्वामी को बुलाया, पर उस युवक ने इसकी महाराज के साथ भेंट ही न होने दी ।

सबके नाम जब हाजरी में से निकाले थे तो नायबसूबे ने गांव-लोगों के प्रति कहा था कि महाराज के कहने से ये नाम निकाल दिये हैं । तुम में से यदि कोई चोरी करे तो तुम्हें झट बता देना पड़ेगा ।

भैंसों की इस चोरी के विषय में महाराज ने आगेवानों से कहा कि यह बात नायबसूबे के कान तक पहुँचानी चाहिए । वे बोले—यदि आप साथ चलें तो हम तैयार हैं । महाराज उनके साथ चले गये । महाराज इसे अपना बड़े-से-बड़ा पाप

मानते हैं । इस प्रकार परिवाद कराना या उसमें साथ देना—यह मेरा कर्तव्य नहीं था—यह बाद में सूझा। उस भैंसवाले से मिलने गये तो उसने कहा था मुझे परिवाद नहीं करना। क्योंकि मैंने मुड़ाई के ८०) रुपये दे दिये हैं । स्टेशन पर ही नायब सूबा मिल गया। महाराज ने कहा कि गांव के आगेवान आपसे मिलने आये हैं और साथ-साथ भैंसों की कहानी भी कह सुनाई ।

पु. ना. सूबा—मैं उसे पकड़ूँ ?

महाराज—जिसका माल गया है, वह सहमत नहीं होता।

सूबा—तो क्या हो सकता है ? अच्छा उसका मोर बनाऊँ ? (पीटूँ ?)

महाराज—आपको जो ठीक लगे, करें, पीटें ।

महाराज का कहना है कि यह मुझसे दूसरी भूल हुई है ।

पुलिस नायब सूबे ने उस नव-युवक को पकड़ मँगवाया और खूब उधेड़ा। पर छूटकर आते ही उसने वही धन्धा फिर आरंभ कर दिया । एक महीने में उसने ३०—३२ भैंसें पकड़ीं और मुड़ाई लेकर वापस कीं। महाराज को इससे बहुत दुःख हुआ। महाराज को प्रतीत होता था कि यह मेरा ही पाप बोल रहा है ।

इतना सब बन चुकने के बाद वह महाराज से 'अजमा देखिए' कहने आया था। महाराज ने उसका नाम हाजरी में से निकलवा डाला । अभी दस-एक दिन बीते होंगे, इतने में तो

पांचोट गांव का ८-१० पाटीदारों का टोला हा-पुकार करता महाराज के पास पहुँचा और कहने लगा कि हमारी भैंसें चली गईं। महाराज ने कहा—ऐसा नहीं हो सकता, ववलाने तो मेरे सामने चोरी न करने की प्रतिज्ञा ली है। पग-चिह्न देखे तो वे बैल के निकले। भैंसों के पग-चिन्ह नहीं दिखाई दिये। ववला के यहां जांच कराई तो समाचार मिला कि वह दो दिन से अपने मित्रों के यहां दूसरे गांव गया है। महाराज ने सोचा, वह नाम कढ़ा देने पर भी तंग कर रहा है। गाँव लोगों ने चौकी बैठाई। उसी रात दो भैंसें और एक छोटा भैंसा लेकर गाँव में घुसा। लोगों ने महाराज को सूचना दी। इसलिए उसके बाड़े को घेरकर दो जन को चौकी करने बैठाया।

पांचोट गांव महेसाणा तालुके का है। इसलिए महेसाणे का फौजदार इस जांच के विषय में धीणोज के नायब फौजदार के पास आया। उसने महाराज तथा गाँव के आगेवानों को बुलाने के लिए एक सिपाही भेजा। किन्तु महाराज ने कहा कि साहब को ही यहां ले आओ। सिपाही वापस चला गया। 'साहब यहां आवेगा' यह सन्देश उस युवक के पास भी पहुँच गया। इसलिए उसने अपने बाड़े में से भैंसे निकाल दीं। महाराज ने इन तीनों को हांककर चौरे में बँधा दिया। फौजदार आया। सारी वस्तुस्थिति जानी। उस युवक को बुलाया गया। उसने फौजदार के पास सब स्वीकार लिया। एक पाटीदार की

हत्या हुई थी वह नहीं स्वीकारी । इस हत्या की बात तो महाराज भी नहीं जानते थे । जिस गाँव में हत्या हुई थी उस गाँव के लोग महाराज को गालियाँ दिया करते थे । इस बामण ने आकर सुणसर के लोगों को सिर पर चढ़ा रखा है । सुणसर के आगेवान महाराज से कहते कि दादा, पाँचोल गाँव के पास से मत जाना । वहाँ के लोग आपको गालियाँ बकते हैं । महाराज इन्हें उत्तर देते—साँप को पालूँ तो उसका फल भी मुझे भुगतना ही चाहिए ।

उस युवक तथा उसके दो दूसरे साथियों को पकड़ लिया गया । जामिन पर छूटने के लिए उसने बहुत प्रयास किया । पर महाराज ने किसी को प्रतिभू (जामिन) होने नहीं दिया । निर्णय आया—उसमें तीनों को नौ-नौ मास का कारावास हुआ । जब नौ-मास का कारावास पूरा करके बाहर आया तो उसी रात उस युवक ने सेंध लगाई और दूसरे दिन फिर सेंध लगाने के लिए जाता हुआ पकड़ा गया । पर इस बार वह निर्दोष छूट गया ।

इस सारे वृत्तान्त में से महाराज ने सार निकाला कि दण्ड और कारा निरर्थक हैं । हिंसक उपाय हिंसा को ही उत्तेजना देते हैं और अपना ही आँतरिक प्रतिबिंब बाहर पड़ता दिखाई देता है ।

महाराज तो अपने पूज्य हैं । इन्होंने जितनी सेवा की है उतनी अपने यहाँ दूसरे किसी ने नहीं की । सेवा का मार्ग

कितना कठिन है—यह महाराज अपने आत्मनिरीक्षण से हमें बताते हैं। ये अपनी छोटी-सी भूल को बड़ी बनाकर प्रगट करते हैं और कहते हैं कि :—

गामड़े के काम में या दलित जातियों की सेवा के काम में पड़ने वालों की पहली योग्यता यह होनी चाहिए, उनके हृदय में गामड़े या जाति के लिए प्रेम का प्रवाह लहरा रहा हो। सुधारक वृत्ति लेकर गामड़े में जाने वाला अवश्यमेव विफल सिद्ध होगा। क्योंकि उसके मन में जाने या अजाने 'मैं उन्नत हूँ और दूसरे अवनत हैं" यह विचार काम करने लग जाता है। सुधारकवृत्ति से गामडे में गया हुआ व्यक्ति लोगों के सुधार से अपने मन में अभिमान ले लेता है और सुधार न हो तो ऊबता है, चिढ़ता है क्रुद्ध होता है। मां जैसे अपने बच्चे का बिगड़ा शरीर धोती है और उसकी कीमत आँक कर अति मान नहीं करती, पर बिगड़ा शरीर शुद्ध किये बिना उसे कल ही नहीं पड़ती। शुद्ध करते समय वह हृदय में प्रेम और आनंदका अनुभव करती है। वैसे ही शुद्ध प्रेमभावसे प्रेरित हुआ सेवक माता की भाँति सेवा के लिए सेवा करता है। बाह्य सत्ता, धन या संपर्क के बलपर की गई सेवा में भी ऊपर दिखाये दोष प्रविष्ट हो जाने की पूरी संभावना रहती है।

गामड़े के काम का अर्थ है बालूमें से तैल निकालना जिस मनुष्य में धैर्य नहीं, उसे गामड़े के काम में पड़ना ही नहीं चाहिए। हमें एक टेव पड़ जाती है तो उसे दूर करने के लिए

वर्षों लग जाते हैं। तो भी हम ऊबते नहीं। हम अपनी अनेक निर्वलताओं को क्षमा कर देते हैं। तो फिर वर्षों की परिस्थितियों, संस्कारों और कुटेवों से आवद्ध ग्रामीण लोग सहसा कोई टेव कैसे छोड़ सकते हैं? उनकी छोटी-मोटी भूल देख कर क्षमा करने के स्थान पर हम आकुल हो उठते हैं, इससे वे हमारे समीप आवेंगे या दूर जायँगे?

सुणसर गाँव में नौ वर्ष व्यतीत किये। परिणाम—स्वरूप वहांके लोगों को आर्थिक एवं दूसरी अनेक दृष्टियों से लाभ हुए। कूओं की योजनासे प्रतिवर्ष वहां के लोग आशिर्वाद देते होंगे। वर्षों की पुरानी उनकी हाजरीनिकल गई—इससे भी सहायता पहुँची है। ऐसा-ऐसा और भी वहुत-कुछ गिनाया जा सकता है। पर मुझे प्रतीत होता है कि मेरे मनके अंतःस्तर में मेरी सुणसर की सेवा में ऊपर कहे सभी दोष काम कर रहे थे। इसीलिए मेरा सारा वल, सारी बुद्धि और सारा सम्पर्क उपयोग में लाने पर भी मेरी आशा के अनुरूप फल नहीं हुआ। इस सेवा से वहां की प्रजा और मुझमें जो आंतरिक सम्वन्ध जुड़ना चाहिए था, वह नहीं जुड़ा।



५८ पंड्याजी

मनुष्य को जीवन में अनेक व्यक्तियों का साथ मिलता रहता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो भूले नहीं जा सकते।

महाराज का कहना है कि मेरे जीवन में गांधीजी को छोड़कर प्रेरणा देने वाले, मार्गदर्शन करनेवाले और सहायता पहुँचाने-वाले पाँच व्यक्ति उल्लेखनीय हैं—

१. स्व० पंड्याजी,

२. स्व० वेलचन्द बैंकर,

३. स्व० अब्बास साहब,

४. श्री सरदार साहब, और,

५. श्री घाड़गे साहब,

गाँव-गाँव लोगों में घूमना, उनमें राष्ट्रीय तेज जगाना और विपत्ति के अवसर पर निर्भय बनकर उनके साथ आत्मसात् होकर सहायता करना—यह थी पंड्याजी की कार्य-पद्धति । इनकी बुद्धि की चमक, देशभावना की झलक, और जीवन का सादापन देखकर अच्छे-अच्छे युवक इनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। एक बार इनके साथ संबंध जुड़ा कि फिर वह बढ़ता ही जाता। महाराज अपने यौवन काल में इन्हें आदर्श मानते थे। ज्यों-ज्यों इनका संबंध बढ़ता गया त्यों-त्यों ये इनके प्रति अधिक से अधिक आदर करने लगे ।

इनका पूरा नाम मोहनलाल कामेश्वर पंड्या था । ये बड़ौदा राज्य में खेतीवाड़ी विभाग के सुपरिण्टैण्डैण्ट थे । जब सन् १९०६ में पंचम जार्ज 'प्रिन्स ओफ वेल्स' के रूप में हिन्दुस्तान की यात्रा को आये थे । तब बड़ौदा स्टेशन पर गायों

का ताजा दूध दुहकर उन्हें जितना चाहिए उतना पहुँचाने का काम राज्य की ओर से पंड्याजी को सौंपा गया था। जंतुघ्न-शास्त्र की अन्तिम पद्धति के अनुसार दूध दुहाकर इन्होंने पंचम-जार्ज की विशिष्ट ट्रेन में पहुँचता किया था। पर इसके साथ-साथ उन दिनों जो काम कोई नहीं कर सकता था वह काम इन्होंने किया। इतने बड़े व्यक्ति के पास से भेजे हुए दूध का बिल लेने से ये नहीं चूके थे। इनके साहस पर महाराज सदा मुग्ध रहते थे।

बम्ब की आशंका पर से आरम्भ में इन पर गुप्तचर विभाग की आँख रहती थी। पर पूज्य बापूजी के संपर्क के बाद इनकी अहिंसा पर पूर्ण श्रद्धा जम गई थी। खादी द्वारा जन-सेवा करने तथा सर्वसाधारण सम्पर्क बढ़ाने में इन्हें बहुत श्रद्धा थी। कोई बड़ी सभा या परिषद होनेवाली हो और उसमें पंड्याजी न हों—यह कैसे हो सकता है। पू० बापूजी और सरदार साहब भी कटाकटी के प्रसंग पर इन्हें विश्वासभरा काम सौंपते थे। खेड़ा—सत्याग्रह के समय गांधीजी ने इन्हें—'डूंगली चोर' (पलांडु-पाटच्चर) का मान—भरा उपनाम दिया था। ठेठ अन्तिम घड़ी तक ये राष्ट्रीय कार्य में ही जुटे रहे।

महाराज पर ये बहुत स्नेह रखते थे और महाराज को अपने छोटे भाई सरीखा मानते थे। ये महाराज को महासभा की बैठकों में ले जाते, बड़े नेताओं के साथ परिचय कराते और प्रतिदिन इन्हें आगे बढ़ाना चाहते थे।

ये दूसरों के लिए खुले हाथ पैसे खर्च करते थे। स्वयं एक साधारण स्वयंसेवक की-सी सादगी से रहते थे। यौवन काल में इन्होंने खूब कमाया और खर्च किया। पर राष्ट्रीय कार्य में पड़ने के बाद विशेषतः गांधीजी के संसर्ग के बाद इनके जीवन में बहुत सादापन और मित-व्ययिता (कोरकसर) आ गई थी। इन्हें किसी काम में आवश्यकता पड़ती तो महाराज को बुला लेते थे और महाराज भी इनके प्रत्येक कार्य में साथ होते ही थे। पंड्याजी से बिना मिले १५-२० दिन हो जायँ तो महाराज को चैन नहीं पड़ती थी। ये इनके पास जाकर अपना हृदय खोलते तभी इन्हें सुख मिलता। इनका भी महाराज के प्रति ऐसा ही प्रेम था। आरम्भ में महाराज ने गुजरात की रेलगाड़ी में न बैठने का नियम किया तो पंड्याजी को बहुत दुःख हुआ था।

इनकी मृत्यु के डेढ़ महीना पहले से महाराज इनसे मिल नहीं सके थे। पंड्याजी महाराज से मिलना चाहते थे। इन्होंने सोचा कि गम्भीरा-विद्यालय की उद्घाटन-विधि होनेवाली है; वहां रविशंकर मिलेगा। इसलिए ये पैदल चलकर गम्भीरा पहुँचे। पर महाराज इन दिनों इन्दौर गये हुए थे, जिससे भेंट न हो सकी। इसके बाद ये बोरसद के प्लेग निवारण कैम्प में गये। इन्हें आशा थी कि यहां मिल जायँगे; पर वहां भी न मिल सके। यहां से ये नड़ियाद पहुँचे और इन्हें त्रिदोष हो गया था। जो इनकी शुश्रूषा में थे वे कहते हैं कि अन्तिम घड़ी तक पंड्याजी महाराज को याद करते रहे। मरने से कुछ मिनट पहले इन्होंने स्टेशन पर महाराज

की खबर पुछाई। पर अन्तिम घड़ी में मिलना नहीं लिखा था। इसलिए महाराज किस प्रकार मिल सकें? महाराज ने इनका काम उठाकर ही इनका ऋण चुकाया।

---

५९ श्री वेलचंद बैंकर

श्री वेलचंदभाई चिथरों में बँधे हुए रत्न थे। इन्हें जनता के प्रगट सेवक के रूपमें संसार के बहुत ही कम लोग पछानते हैं। हृदयमें उच्च भावनाएँ तथा राष्ट्रप्रेम भर रखें और समय आने पर त्याग करके निर्लिप्त रहें—ऐसे ये दानवीर थे। ये कभी राष्ट्रीय लड़तमें सम्मिलित नहीं हुए। पर राष्ट्रीय लड़त के प्रति इनकी सहानुभूति और साथ सदा रहा है। नामेषणा के विना हजारोंकी संपत्ति इन्होंने चुपचाप गरीबों में बिखेर डाली है। गामड़े की गरीब जनतामें सच्ची सहायता पहुँचाने की इनमें खूब उमंग थी। इसीलिए ये अनेक राष्ट्रीय पुरुषों को पोसते थे। पंड्याजी इनके परमप्रिय मित्र थे। पंड्याजीके कारण ही श्री वेलचंदभाई के साथ महाराजका प्रथम परिचय हुआ था। बादमें तो अपने—आप इनका संबंध स्वतंत्र रूपसे बढ़ता गया।

पंड्याजी के बहुत से मित्र वेलचंदभाई के यहां जाते थे। इनमें से कितनों की ये सहायता करते थे। कोई—कोई

वेलचंदभाई को ठगकर भी ले जाते थे। ये उदार थे, लोकमान्य तिलक, पंडित सुन्दरलाल और मंझरअली सोख्ता जैसों को कठिन समय पर विना कहे सहायता भेज देते थे। राष्ट्रीय प्रवृत्तिके लिए इनके दिलमें खूब लगन थी। लाला लाजपतराय के साथ भी इनका संबंध था। पैसों के व्यवहार करनेमें ये बहुत कुशल थे। पढे तो केवल नोन-मैट्रिक (ऊन—मैट्रिक) जितने थे। पर अंग्रेजी बहुत अच्छी जानते थे। इनके पिता बैंकर थे। इनका मूल निवास अहमदावादके समीप का उंवारसद गांव था। जब ये सैन्यमें गये थे तब इन्होंने यूरोपियनों को रुपये व्याज पर दिये थे, जिससे इन्होंने खूब कमाया।

सन् १९२० में पंड्याजी को मिलने के लिए वेलचंदभाई कठलाल गये थे। उस समय महाराज वहीं थे। पंड्याजीने इनके साथ परिचय कराया। दूसरे दिन पाँच कोस चलकर ये महाराजका सरसवणी गांव देखने गये थे। उसके बाद इनका परिचय बढ़ता ही गया। इन्होंने अपने गांवमें अंग्रेजीशाला खोली और अपनी लड़कीका विवाह किया, उन अवसरों पर भी इन्हों ने महाराज को बुलाया था। पहले ये मुंबई रहते थे। बादमें भूमि लेकर गोतेमें रहे। इन्हें स्वयं परिश्रम करने की बहुत रुचि थी। कुदाल लेकर स्वयं खोदते, आम रोपते, गायों को सेवा करते और खेतमें ही रहते थे। इनका साहस भी विचित्र था।

सन् १९२१ में गोता का समीपवर्ती एक गांव लूटा गया। महाराज को चिंता हुई कि वेलचंद सेठ भी लुट जायगा।

महाराज तथा पंड्याजीने इन्हें वहांसे चले जाने की सूचना दी। पर ये हिले नहीं। अंतमें महाराज इनके यहां गये और इनसे कहने लगे कि आजकल उचक्के लोग बढ़ गये हैं। इसलिए आप जैसों का यहां रहना सुरक्षित नहीं। बैंकर साहबने कहा यदि मैं दूंगा तभी वे लेंगे? यहां मेरे पास पैसा है ही कहां जो वे लेंगे।

महाराज बोले-सब लोग कहां जानते हैं कि यहां आपके पास पैसा है या नहीं? वे लोग तो मार-पीट करते हैं। दूसरे जमनाबहन आदि भी यहीं हैं; कुछ हो गया तो कठिनता खड़ी हो जायगी। हमें पानी आनेसे पहले पाल क्यों न बाँध लेनी चाहिए?

बैंकर साहबने कहा कि मैं तों यहांसे नहीं हिलूंगा, भले जो कुछ होना हो सो हो जाय।

इनका साहस देखकर महाराज भी खुश हो गये। महाराजने कुछ समयके लिए वहीं रुक जाने का निश्चय किया; इसलिए बैंकर-साहब विचारमें पड़ गये। इन्होंने सोचा कि मेरे लिए एक समाज-सेवक को मेरे यहां रुकना पड़े यह तो ठीक नहीं। इन्होने निश्चय किया कि मुझे शिमले चले जाना चाहिए। दो ही घंटोमें वहांसे अपना सब सामान समेट लिया। इनके पास मनभर खादी थी; वह महाराज को सौंप दी-कहा गरीबोंमें बांट दीजिएगा और ये शिमले चले गये।

चार-पाँच महीनोंमें ये शिमले से अच्छा कमा लाये।

फिर वड़ौदेमें मकान लेकर रहने लगे। हाजरी निकलवाने के लिए जब महाराजका वड़ौदे जाना होता था तो महाराज इनके यहां ही उतरते थे। वैंकर साहव महाराज को वहुत चाहते थे। जव ये गामड़े से चल कर आया करते थे तो वैंकर साहव इन्हें भेंट पड़ते थे और धूलवाले पाओं होने पर भी इन्हें गद्दी पर वलात् वैठा लेते थे।

एकवार महाराज रातको विलंव से आये। किसीको जगाना न पड़े; इसलिए वाहर ही सो गये। जव सवेरे वैंकर साहव को यह विदित हुआ तो ये वहुत दुःखित हुए और कहने लगे—कृपया आप हमें आधीरात में भी जगाइए, यदि कोई न जागे तो किवाड़ तोड़कर अंदर आ जाइए, पर वाहर न सो इएगा। ऐसा था इनका भाव।

ये महाराज से वार—वार पूछते क्या पैसे—वैसे की आवश्यकता नहीं? महाराज नकार ही सुनाते। कितनी वार इन्होंने अपने साथ काश्मीर, आवू आदि स्थानों पर चलने के लिए महाराज से कहा—पर महाराज कह देते थे 'विचारूंगा'।

इन्हें गुप्तदान करने की वहुत रुचि थी। इसलिए इन्होंने आवश्यकता वाले वहुत से लोगोंकी सहायता की होगी। सन् १९३० के सत्याग्रह की लड़ाई के समय ये वोरसद छावनी को ४०० मासिक भेजते थे। वोरसद प्लेग के समय इन्होंने नाम—धाम के विना १००० भेज दिया था। लड़ाई के वाद इन्होंने तीन वार तीन—तीन हजार भेजा था। रासकी सस्ते अन्नकी दूकान

के समय ५००० दिया था । इस प्रकार अधिक नहीं तो बीस—एक हजार इन्होंने गुप्त दान किया होगा । महाराजके चि० मेधाव्रत के गुरुकुल—अध्ययन का सारा खर्च इन्होंने किया था। महाराज पर इनकी बहुत श्रद्धा थी । इसलिए जिस काममें महाराज होते उस काममें इनका सहायता करने को स्वाभाविक मन करता था । इन्होंने निश्चय किया था कि अंग्रेजी—शिक्षण या अंग्रेजी औषधालय के लिए एक पाई भी नहीं खर्चूंगा ।

आरंभ में विद्यालय—महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को भी सहायता करते थे। पर इन्होंने सोचा कि ऐसे पढ़े-लिखे लोग दूसरे किसीके काममें तो नहीं आते । इतना ही नहीं स्वयं अपनी ही सहायता कर सकें इसमें भी आशंका है । औषधालय रोग बढ़ानेमें उत्तेजना देते हैं और मनुष्य को अधिक भोगविलासी बनाते हैं ऐसा ये मानते थे ।

इन्हें गोपालन की बहुत लालसा थी । इसलिए ये अपने यहां गायें रखते थे । कोई गाय व्या जाती तो किसी के यहाँ भेज देते और जब दूध देना बन्द कर देती थी तो अपने यहां वापस मँगवा लेते थे ।

इन्हें अतिथि बहुत प्रिय लगते थे। जमना बहन स्वयं भोजन बनाकर सब को प्रेम—पूर्वक खिलाती थीं। पर इनका एक नियम किया हुआ था कि अतिथि के लिए किसी प्रकार का विशेष भोजन नहीं बनाना । जिस दिन जो रसोई में बने

वही अतिथि खावे । आने का दिन छोड़कर अतिथि को भी भोजन के समय का ध्यान रखना पड़ता था ।

२३० पंड्याजी के स्मारक के लिए एक लाख रुपया इन्होंने महाराज के हाथ पर रख दिया । इनकी इच्छा तो इससे भी अधिक पैसे निकालने की थी । पर इनके पैसे विलायत में रुके पड़े थे । इनकी ऐसी मान्यता थी कि पैसे संगृहीत करें तो रहते नहीं । ऊपर कहे अनुसार लाख रुपया सरदार साहब को पहुँचाना था । पर इन्होंने भारपूर्वक कहा कि भूलकर भी इसके साथ मेरा नाम नहीं जोड़ना चाहिए । यह लाख रुपया पंड्या-खादी-स्मारक में लगाया गया । क्यों कि पंड्या जी को खादी-काम में बहुत रस मिलता था ।

इन्हें खेती करना भी बहुत पसंद था । बड़ौदे में इन्होंने एक बाग लगाया था । इसमें सैकड़ों प्रकार के फलद वृक्ष उगाये थे । स्वयं कुदाली-फावड़ा लेकर बाग में काम करते रहते थे । इनका अवकाश-दिवस रविवार तो बाग में ही जाता था । अतिथियों को बुलाना, उन्हें फल, गन्ने का रस आदि देना इनका रसप्रद विषय था । ये कहते थे कि किसान भले ही मुझे ठग ले जायँ, पर खेती का काम मुझे बहुत रुचता है; किसी को सिनेमा रुचिकर प्रतीत होता है और मुझे तो यही काम प्रिय है ।

६०—श्री अब्बास-साहब

स्व० अब्बास तैयबजी बड़ौदे के वरिष्ठ न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे। इस पदसे निवृत्त होने के बाद इन्हें ४००) मासिक निवृत्त-वेतन मिलता था। ये राष्ट्रीय प्रवृत्ति में किस प्रकार पड़े यह भी एक रसप्रद घटना है।

इन्होंने अपना अभ्यास विलायत में किया था और ये बहुत ही विलासिता में पले थे। हिन्दी महासभा के प्रमुख श्री बदरूद्दीन तैयबजी इनके चाचा होते थे। इससे राष्ट्रप्रेम का बीज इनके कुटुम्ब में पड़ा ही था।

इनकी विलायत में दीप्यमान कार्य-कुशलता को देखकर स्व० सयाजीराव महाराज इन्हें बड़ौदे खींच लाये थे। ऊपर लिखा उन्नत स्थान इन्हें दिया था। पंजाब-अत्याचार की जाँच के लिए जो समिति नियुक्त की गई थी; उसमें गांधीजी ने इनका नाम रखा था। इन्होंने पंजाब के क्रूर अत्याचार की जब अपने कानों कहानी सुनी तो इनका हृदय पिघल उठा। इसके बाद तो इन्होंने पूज्य बापूजी को अपना तन, मन, और धन सभी समर्पित कर दिया। इस प्रकार ये गुजरात के कार्य-कर्ताओं में आगे आकर खड़े हो गये। इन्होंने खेड़े जिले को अपना कार्य-क्षेत्र चुना। खेड़ा-जिला-समिति के ये निर्वाचित प्रमुख थे। तिलक-स्वराज्य-फंड के लिए ये ७० वर्ष की अवस्था में गाँव-गाँव फिरने लगे।

महाराज और इनका जन्य-जनक का-सा सम्बन्ध हो गया था। महाराज दो-दो घंटे तक इनके पाओं दबाते (चांपते) रहते थे। पर इन्हें कुछ भी उकताहट नहीं आती थी। अब्बास साहब को भी बहुत कष्ट उठाना पड़ता था तो भी महाराज के साथ रहना बहुत पसन्द करते थे।

एक बार अब्बास साहब ने महाराज से कहा—'अरे कमबख्त! (अभागे!) तू मुझे अब डाकू क्यों नहीं दिखाता? तू कहे तो एक ऊँट मँगवाऊँ और उस पर बैठकर डाकुओं से मिलने चलें।' अब्बास साहब का शिक्षण, निर्माण, पालन-पोषण सब अंग्रेजी ढंग से हुआ था। इसलिए हमारा ग्राम्य-जीवन इनके लिए बिलकुल नया था, पर इन्हें ग्राम्यजीवन के अनुकूल बनने की बहुत अभिलाषा थी। इससे ये ऐसे-ऐसे प्रश्न किया करते थे।

थोड़े दिनों के बाद चलाली वणसोल की सभा का काम पूरा हो जाने पर महाराज ने श्री छोटालाल व्यास के साथ 'पोर' गाँव जाना निर्धारित किया। अब्बास साहबसे कहा कि आज तो हमें डाकुओं के गाँव में जाना है। यह बात सुन कर बूढ़ा बाग बाग हो गया। साथ में एक डब्बे में थोड़ी पंजीरी भर ली और गाड़े में बैठ कर पोर गाँव की ओर चल पड़े। बीच में थामणा गाँव आया। वहां के लोगों ने इन्हें रोकने का बहुत प्रयत्न किया; पर जल्दी वापस होना है—ऐसा कहकर ये आगे बढ़े। दुपहरे बारह बजे गाड़ा पोर पहुँचा। इस समय गाँव में कोई मनुष्य दिखाई नहीं दे रहा था। महाराज आदि महादेव

के चबूतरे पर बैठ गये थे। बाद में समीप की एक धर्मशाला में इनका उतारा किया गया। श्री छोटालाल व्यास भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिए गये।

बूढ़ा विलायत हो आया था। पर इन्हें खाने-पीने की बहुत लालसा नहीं थी। चाय न मिलती तो भी कितने दिनों तक चला लेते। हाथ-पाओं धोनें के बाद महाराज ने पंजीरी निकाली। बूढ़े ने भी थोड़ी फाँक ली। पंजीरी दाढ़ी में फँस गई। इसलिए महाराज हँसने लगे।

बूढ़ा—कमबख्त, हँसता है क्यों?

महाराज—शीशा लाऊँ तो मालूम पड़े।

इतने में श्री छोटालाल व्यास ने खिचड़ी बनाने की व्यवस्था की। खिचड़ी आधी पकी होगी कि दो स्वयंसेवक और आ गये। थोड़ी खिचड़ी और मिला दी गई। दस मिनट के बाद तीन और आ गये। फिर खिचड़ी मिलानी पड़ी। इस प्रकार खिचड़ी की तीन थरें लग गईं। इसलिए कुछ कच्ची रह गई और कुछ तले भी लग गई। सब के साथ अब्बास-साहब (बूढ़े) ने भी ऐसी कच्ची-पक्की खिचड़ी और दही खाई।

रात को धर्मशाला में गाँव के लोग इकट्ठे हुए। अब्बास साहब को गुजराती बोलने का अभ्यास नहीं था। तो भी ये अपनी टूटी-फूटी गुजराती में लोगों के साथ बातें करने लगे। "टमे डेकायटी करो छो, ए खोटुं कहेवाय, गरीब लोगों ने डुःख

डो छो ए सारु नहीं. आदि आदि"—तुम डाके डालते हो और गरीब लोगों को दुःख देते हो—यह अच्छा काम नहीं। लोग इनकी भाषा में से बहुत थोड़ा समझे होंगे। बाद में महाराज ने अपनी तलपदी (गामड़ी) भाषा में अब्बास साहब कौन हैं? इन्होंने कैसा त्याग किया है? और ये क्या कहते हैं—यह सब लोगों को समझाया तथा नीति के मार्ग पर चलने से ही मनुष्य सुखी होता है-यह गांधीजी का संदेश भी समझाया।

सभा का काम पूरा होते ही तुरन्त रातोरात उमरेठ को चल पड़े। पर गाड़े में बैठते ही बूढे को ताप चढ़ गया। थामणा के उपकंठ में फिर लोग इकट्ठे हुए और आग्रह करके सब को वहीं रोक लिया। दूसरे दिन सवेरे बड़ौदे की गाड़ी पकड़ने के लिए उमरेठ पहुँचे। वहां के डा० केशवलाल त्रिवेदीने बहुत आग्रह करके इन्हें वहीं रोक लिया। इसने कहा कि मैं तो इस बूढ़े को स्वस्थ करके ही घर भेजूंगा।

सचमुच इसने प्रेमपूर्वक शुश्रूषा की। इसका मधुर और मिलनसार स्वभाव, घर का पवित्र एवं संस्कारी वातावरण प्रत्येक व्यक्ति पर अनूठी छाप पाड़ने वाले थे। महाराज को भी इस प्रवास में थोड़ा वायु का कष्ट हो गया था। डाक्टर ने इनके लिए सोंठ के दो लड्डू बनाकर दे दिये थे। महाराज ये दोनों ही खा गये। बाद में डाक्टर साहब ने पूछा—अब आपका क्या हाल है? महाराज बोले—'अच्छा है' डाक्टर ने कहा—आपको दी हुई दवा पाँच-छह दिन तक चलेगी। जब सब को विदित

हुआ कि महाराज तो एक बारगी में ही दोनों लड्डू चट्ट कर गये तो सब खिड़खिड़ाकर हँस पड़े।

तीन दिन के बाद महाराज अब्बास साहब को बड़ौदे पहुँचा आये। इनके कुटुम्ब के प्रत्येक स्वजन से महाराज हिल-मिल गये थे। सब महाराज के प्रति प्रेम और आदर रखते थे। अब्बास साहब के मुख पर तो जब-तब महाराज की प्रशंसा ही होती थी।

अब्बास साहब का स्वभाव बहुत उदार था। तीस की लड़त में इनका निवृत्त वेतन बन्द कर दिया गया था। बाद में फिर चालू कर दिया गया। जब इनके हाथ में एक साथ मोटी रकम आई तो इन्होंने उसमें से एक हजार किसान-सहायता-फंड में और एक हजार दूसरी फुटकर सहायता में दिया था। ये अपने उदार स्वभाव के कारण ही अपने पीछे कोई मोटी धरोहर छोड़कर नहीं गये। जीवित काल में ये कहा करते थे कि—यदि मैं अब मर जाऊँ तो मुझे कुछ डर नहीं। क्योंकि कयामत (प्रलय) के समय मुझे शर्मिन्दा (लज्जित) नहीं होना पड़ेगा।

महाराजा सयाजीरावके साथ इनका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध था कि सन् १९२१ में महाराजा साहब नायगरा का झरना देखने गये थे। वहां से उन्होंने इनके नाम पत्र लिख कर विशेष आमन्त्रण दिया था। पर बूढ़ा इन दिनों गांधी के रंग

में इतना रंग गया था—इन्होंने उत्तर में लिखा कि "नायगरे के झरने से भी बढ़कर यहाँ झरना वह रहा है और अब मैं इसका–आनन्द ले रहा हूँ ।"

धारासणा की धाड़ के समय गांधीजी ने अपने बाद दांडी यात्रा की टुकड़ी का नायकत्व लेने का मान इन वृद्धवीर को ही सौंपा था। सचमुच इन्होंने इसे शोभित भी किया था। इनकी पवित्रता देखकर प्रत्येक व्यक्ति इन्हें आदरकी दृष्टिसे देखने लगता था ऐसे थे ये मानव।

इनकी शुद्धता का दृश्य तो तब देखने को मिलता था जब ये अपनी ग्रामयात्रा के अनुभव अपनी पत्नी के पास कहते थे। गामड़े में नहानेकी कोठड़ी या टट्टीघर नहीं होते। ये तो नागरिक ढंग से पले थे। इसलिए गामड़े के अनुकूल बनना इनके लिए बहुत कठिन काम था। तो भी ये संकोचपूर्वक खुले आकाशमें बैठकर नहाये और खुली जमीन पर टट्टी गये। स्टेशन से घर तक बिस्तरा उठाकर ले आये। इसका वर्णन करते हुए वे स्वयं कहते थे कि "गांधीजी के साथ फिरने से मुझमें खूब शक्ति बढ़ गई है। इस बार तो मैं खुले मैदान में टट्टी गया, खुले आकाश में बैठकर नहाया और स्टेशन परसे अपना बिस्तरा उठा लाया।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता के वे जीते-जागते आदर्श थे। गांधीजी तथा देशके प्रति इनके मनमें अत्यंत मान एवं प्रेम था।

इनकी एकनिष्ठा ऐसी थी कि ये एक बार काम पकड़ने पर अंततक उसे कभी नहीं छोड़ते थे।

६१—सरदार साहब

सरदार साहब की कठोरता के विषय में समाज में अनेक प्रकार के विचार फैले हुए हैं। इसलिए कुछ लोग इन्हें देखते ही दूर-दूर भागते हैं। पर इनका हृदय तो मक्खन-सा कोमल है— यह तो इनके समीपवर्ती ही जान सकते हैं।

महाराज सुनाते हैं—'जब मेरा सरदार साहब के साथ बोलने का संबंध भी नहीं था तभी से पंड्याजी द्वारा मेरा ध्यान रखते थे। मेरी प्रत्येक प्रवृत्तिमें रस लेते थे। मुझे किसी प्रकार की बाधा न पड़े; इसलिए वे दूर बैठे-बैठे मेरी खबर पूछते रहते थे। पंड्याजी से कितनी बार पूछा करते कि वह आर्थिक संकट में तो नहीं?

यह बात सत्य है कि इनमें मनुष्य को पहचान लेनेकी अद्भुत शक्ति थी। ये बहुत बातें नहीं करते थे; पर कौन-कौन कहाँ-कहाँ क्या-क्या करते हैं— इसका सब तथ्य प्राप्त कर लेते थे। अपनी सूझसे काम करनेवालों को ये उनकी सूझसे ही काम करने देते थे। उन्हें कुछ कठिनाई होती तो ये इस प्रकार जान लेते थे कि उन्हें इसकी खबर तक भी नहीं पड़ती थी और उसमें सहायता पहुँचाते थे।

जूनागढ़ के अस्थायी शासन वाले श्रीरतुभाई अदाणी—जो अब बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं— तरवड़े में बैठे-बैठे कठिन स्थिति में काम करते थे। इनकी परीक्षा हो रही थी। इस समय सरदार सहब ने महाराज को बुलाकर कहा-"यह युवक काठियावाड़ में काम करता है; उसे देखते आना और उसे कुछ आवश्यकता हो तो मुझसे ले जाना"। यह एक ही नहीं ऐसी तो अनेक घटनाएँ हैं।

काठियावाड़ में ही छगनलाल नामक एक सुन्दर नवयुवक था। वह सकुटुंब पाँचतलावड़े में रहता था। उसका ऐसा आग्रह था कि कताई पिंजाई और बुनाई से ही कुटुंब की आवश्यकता पूरी करूंगा और साथ-साथ गाँवके सेवाकार्य भी करूंगा। इस प्रकार उसे जीवन-निर्वाह में बहुत कठिनता पड़त थी। पर वह किसी के आगे हाथ पसारनेवाला नहीं था। गुजारात के परले छोर पर क्या हो रहा है जब इसकी अवगति सरदार साहब को मिल जाती थी तो यह ध्येयवादी उत्साही युवक कार्यकर्ता इनकी दृष्टिसे बाहर कैसे रह सकता था? एक बार महाराज को बुलाकर इन्होंने कहा—"वह छगन भाई और उसके मित्र अपने हाड घिसा डालने को बैठे हैं। उन्हें समझाओ और जो कुछ आवश्यकता हो लेने के लिए कहो, अन्यथा सेवा सेवा के स्थान पर रह जायगी।"

जब स्वयं महाराज की पुत्री का विवाह था तो इन्होंने पंड्याजी को बुलाकर कहा था कि—"अब खर्च कहाँ से निकाले

गा ? आवश्यकता हो तो पैसे देते जाओ" पंड्याजी बोले-उसने ना पाड़ी है। इस प्रकार सरदार साहब का कार्यकर्ताओं के प्रति बहुत ममत्व रहता था। आरंभ में ये मनुष्य को देखते रहते थे। उसकी कसौटी होने देते थे। उसकी सत्यता के विषयमें विश्वास होने पर जैसे पिता पुत्र का ध्यान रखता है वैसे ही ये उसका ध्यान रखते थे। ये उसके मुख पर बहुत बातें नहीं करते और उसे लंबे पत्र भी नहीं लिखते थे। बस, विश्वास बैठ जाता तो ये दूर बैठे-बैठे ही कार्यकर्ता की चिंता किया करते थे। उसके कामको आगे बढ़ाने में एवं उसे प्रसिद्ध करने में ये सच्चा साथ देते थे। सच्चा काम कौन करता है और ऊपरका देखाव कौन करता है—इसकी इन्हें तुरंत समझ पड़ जाती थी।

कई-एक ऐसा मानते हैं कि सरदार साहब गांधीजी के शिष्य तो हैं; पर गांधीजी की अहिंसा-विंसा को खीसे में डाले घूमते हैं। यह भी एक अत्यन्त भ्रांति है—सरदार साहब ने गांधीजी के जीवन में से जितना हममें से किसीने तत्त्व अपनाया है उससे कहीं अधिक इन्होंने अपनाया है। पूज्य बापूजी के प्रति इनके हृदयमें असीम प्रेम और अटूट श्रद्धा थी। बापूजी के संसर्ग से इनके जीवन में महान् परिवर्तन हुए हैं। दूसरों की भांति ये मुख से बोलकर नहीं बताते थे या आवेश में आकर उछल नहीं पड़ते थे—ऐसे थे ये (लौह) पुरुष। इनके मनमें तो भावनाओं के ढेर-के-ढेर भरे पड़े हैं।

रविशंकर महाराज के लिए इनके हृदय में कोमल भावनाओं की धाराएँ बहती रहती थीं। इनकी मधुर दृष्टिमें से महाराज भी बल एवं प्रेरणा प्राप्त करते थे। इनकी घोषणा का स्वर पालित करने के लिए ये सदा सर्वदा सुसज्जित रहते थे। सरदार साहब गुजरात में आते या यहांका कोई बड़ा काम उठाते तो महाराज को सबसे पहले बुलाते थे—ऐसा था इन दोनों का संबंध।

६२—श्री घाडगे साहब

वड़ौदा राज्य के पुलिस-विभाग के प्रधान श्री घाडगे साहब ने एक अधिकारी होने पर भी महाराज के हृदय में मानभरा स्थान प्राप्त किया है। ये दक्षिणी सद् गृहस्थ हैं। पर इनके हृदय में पाटणवाड़िया जाति के प्रति ऐसा सद्भाव था कि एक अधिकारी होने पर भी इन्होंने सच्चे सेवक की भांति काम संपन्न किया। महाराज और घाडगे साहब का सम्बन्ध तब हुआ था जब महाराज पाटणवाडिया जाति की हाजरी निकलवाने का प्रयास कर रहे थे। इस जाति के प्रति इनकी आत्मीयता तथा सहानुभूति देखकर महाराज का उत्साह वृद्धिगत हुआ था। इनका परस्पर वार-बार मिलना होता था और इनकी बातचीत के सामान्यतः दो विषय होते थे :—

१—पाटणवाड़िया जाति की उन्नति कैसे हो ?

२—समाज में धर्मभावना कैसे फैले ?

महाराज को पाटणवाड़िया जाति में काम करते समय इनकी ओर से उत्साह मिलता था। कई-एक बार तो इनके अनुभवों में से मार्गदर्शन एवं प्रेरणा भी मिलती थी।

इन दोनों का अन्योन्य सम्बन्ध शुद्ध तथा सात्त्विक रहता था। किसी के भी मनमें कभी एक दूसरे से अनुचित लाभ उठाने की वृत्ति नहीं जागती थी। क्योंकि दोनों ही पाटणवाडिया जाति का हित चाहते थे। दोनों ही अपने अपने ढंग से इस दिशा में कुछ करके दिखाना चाहते थे। दोनों को एक-दूसरे के काम में सहकार मिलता था। हमारी पराधीनता के कारण आज-तक हमारे जनता सेवकों तथा सरकारी अधिकारियों में अकारण ही अविश्वास रहा है। मानो एक दूसरे को देख ही नहीं सकता। १५ अगस्त के बाद इस स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है। अब तो ये अधिकारी भी हम में से ही होते हैं। पर जब स्वतन्त्रता नहीं मिली थी तब भी बड़ौदा राज्य के अधिकारियों में महाराज की ऐसी छाप पड़ी थी कि ये दूसरों जैसे लड़ाकू नहीं; किन्तु प्रजा के सच्चे सेवक हैं। इसलिए अधिकारियों की ओर से भी इनके काम में बहुत सरलता हो जाती थी। इस प्रकार की छाप जमने में घाडगे साहब का कुछ कम हाथ नहीं था। ये अधिकारियों के साथ महाराज की परिचिति करा देते थे और महाराज के विषय में अधिकारियों से भी कहते रहते थे।

जब ये दोनो मिलते थे तो १५–२० मिनट से अधिक

नहीं बैठते होंगे। पर झटपट एक-दूसरे के प्रश्न हल हो जाते थे। दिन-पर-दिन एक-दूसरे का सम्बन्ध मधुर होता जाता था। आज घाडगे साहब सरकारी नौकरी में से निवृत्त हो चुके हैं। पर महाराज और इनका वह मधुर सम्बन्ध आज भी ज्यों-का-त्यों है।

६३—हरिपुरा-महासभा

हरिपुरे की महासभा ने गुजरात तथा सारे देश के लिए एक नया ही दृश्य उपस्थित किया। गांधीजी ने महासभा में प्रविष्ट होकर इसमें अनेक क्रान्तिकारी फेर-फार कर डाले। पहले जहाँ बड़े दिनों की छुट्टियों में पढ़े-लिखे कुछ वकील-डाक्टर इकट्ठे हो जाते थे, भाषण करते थे और प्रार्थनापत्र भेजने का प्रस्ताव करके सब अपने-अपने स्थानों पर लौट जाते थे। वहाँ आज बारहों मास और चौबीसों घण्टे काम करनेवाले कार्यकर्ताओं वाली, देश भर में व्यापक और भारत को स्वतन्त्रता दिलानेवाली, देश की बड़ी-से-बड़ी यदि कोई संस्था है तो वह राष्ट्रीय महासभा है। आज इसके एक प्रस्ताव से सारे देश में आंदोलन जाग उठता है, इसके एक शब्द से सरकार बन जाती है और इसकी एक ही घोषणा से सैकड़ों रजवाड़े मिट जाते हैं। क्योंकि इसकी पीठ पर समस्त साधारण जनता का बल है।

परन्तु वर्षों से महासभा के अधिवेशन नगरों में ही हुआ करते थे। गांधीजी ने घोषणा की कि यदि कांग्रेस को हिन्दुस्तान की सर्वसाधारण जनता का सच्चा प्रतिनिधि बनना हो तो इसके

अधिवेशन गामड़ों में भरने चाहिए । ग्रामीण जनता को इसकी प्रवृत्तियों में सक्रिय रस लेती करना चाहिए । इस सूचना के अनुसार गामड़ों की पहली कांग्रेस फैजपुर में भरी गई । इसके बाद गुजरात की पारी आई । भला यह कैसे गांधीजी की आज्ञा को टाल सकता था ? गुजरात के कार्यकर्ता गामडों में भी कुछ विचित्रता कर दिखाना चाहते थे । अधिवेशन किस जिले में भरना चाहिए सूरत में या खेडे में ? इसकी प्रतियोगिता चल रही थी । सरदार साहब का ऐसा कहना था कि जहां बापू कहेगा वहीं भरेंगे । अंत में नरहरि भाई परीख, श्री पन्नालाल झवेरी और महाराज इन तीनों की सब स्थान देखकर के विवरण देने के लिए एक समिति नियुक्त की गई । इस समिति ने तापी नदी के किनारे पर के विपुल जल वाले एक लंबे–चौड़ स्थल के लिए भलामण (सिफारिश) की । पूज्य बापूजी ने ने इस पर मुद्रा लगा दी । कठोर और हरिपुरा गाँव के निकट यह स्थल था । इसलिए इसे हरिपुरा–महासभा का नाम मिला ।

स्थल के निश्चित हो जाने पर तो धड़ा-धड़ तैयारियां होने लगीं । तीन महीनों में ही जहां निर्जन जंगल था वहां 'विट्ठल-नगर' नामक भव्य नगर बन गया । सारे गुजरात के कार्यकर्ता एवं स्वयंसेवक इस काम में जुट गये थे । नगर-रचना में एक निपुण शिल्पी श्री गुलाटीजी तथा दूसरे इनके साथी लगे हुए थे । नगर-श्रृंगार के लिए बंगाल से श्री नंदबाबु समंडलीक तथा अपने यहां से श्री रविशंकर

रावल एवं कनु देसाई अपनी-अपनी मंडलियों सहित यहां आ पहुँचे थे। नगर का विस्तार इतना लंबा-चौड़ा था कि एक छोर से दूसरे छोर तक जाने के लिए वाहन का उपयोग करने पर ही पहुँचा जा सकता था। महात्माजी ने कांग्रेस को गामड़े में ले जाने के लिए कहा। पर कार्यकर्ता ऐसे उत्साह में आये कि इन्होंने गामड़े में ही इन्द्रपुरी जैसी नगरी खड़ी कर दी। यह अनेक विभागों में बांटी गई थी। बड़े-बडे सभामंडप, प्रदर्शनियां, गोशाला, बाजार, भोजनालय, कार्यकर्ता-विभाग, प्रतिनिधि-विभाग, स्वयंसेवक-विभाग, ग्राम-जनता-विभाग, इस प्रकार डेढ़ लाख की बस्ती वाला यह नगर बना था। इसका मुख्य मार्ग १५० फुट चौड़ा था। इस नगर में बगीचे थे, वाहन-अड्डे थे और सब की व्यवस्था करने के लिए अनेक विभाग थे। समस्त नगर की व्यवस्था स्वयं-सेवक ही करते थे। भोजन की व्यवस्था का काम भी स्वयंसेवकों और स्वयं-सेविकाओं ने ही उठा लिया था।

सन् १९३८ के फरवरी मास के १९-२० और २१ तीन दिन गुजरात के इतिहास में संस्मरणीय बन गये हैं। कुछ लोग इस नगर को 'बांस-नगर' भी कहते थे। क्योंकि नंदबाबु ने इस सारे नगर को बांसों से सुशोभित बनाया था। स्वच्छ पानी की पूर्णता के लिए तापी नदी के पाट में ही एक बड़ा पानीगृह बनाया गया था। स्थान-स्थान पर नलों, बिजली-बत्तियों, शौचगृहों और पेशाबघरों की व्यवस्था की गई थी। मानो सदा के लिए ही यह नगर बसाया गया हो ऐसी इसकी तैयारी

थी। इन सवका शोभारूप झंडाचौक में एक विशाल तिरंगी झंडा फहरा रहा था। इस अधिवेशन के प्रमुख श्री सुभाषचन्द्र बोस का ५१ बैलों को रथ में जोतकर भावभरा स्वागत किया गया था। वहां की खुली बैठकों में एवं महा-समिति की बैठकों में अपने देश के भावी गंभीर प्रश्नों पर चर्चाएँ हुई थीं। मानव-समुदाय अपने नेताओं के शब्द एकटक होकर सुन रहा था।

ऐसी भव्य व्यवस्था के काम में महाराज न हों यह कैसे हो सकता है? तीन मास पहले से ही ये काम में जुट गये थे। इस अधिवेशन में हाथ से छँटे चावल, हाथ–चक्कियों से पिसे आटे और गाय के दूध के उपयोग का आग्रह रखा गया था। इसके द्वारा ग्राम–जनता को ग्रामोद्योग के उत्तेजन का प्रत्यक्ष पाठ देना और गाँव के लोगों को दो पैसों का लाभ पहुँचाना भी उद्देश्य था।

महासभा का अधिवेशन देखने आये हुए हजारों ग्राम-वासियों के लिए सस्ता-भोजनालय खोला जाय तो बहुत अच्छा रहे—यह विचार स्यादलेवाले श्री मोरार भाई पटेल ने प्रस्तुत किया था। महाराज को यह पसंद आ गया था। इन्होंने गाँव–गाँव में घूम–घूम कर हाथ–छँटे चावल उगाहना आरंभ किया। वारडोली के आंगन में प्रांत–प्रांत के आगेवान तथा अतिथि आने वाले थे। इनका भावभरा स्वागत करने की उमँग में जिन्होंने कभी मूसल को छूआ तक भी नहीं था उन देवियों ने बीस–बीस सेर चावल

हाथों से छाँट कर महाराज को भेंट दिये। महाराज वारडोली के के वाद जलालपुर, पारड़ी, वलसाड़ और चीखली तालुके में एवं थाणा जिले के कई—एक गाँवों में भी फिर आये। दूसरे भी कई—एक कार्यकर्ता वारडोली तालुके के घर—घरमें पहुँच चुके थे। लग-भग डेढ़ हजार मन चावल इकट्ठे हो गये थे। फिर महाराज वड़े किसान—भोजनालय के लिए लकड़ियां खरीदने, तथा वासन उगाहने गये। इस प्रकार जो—जो काम सामने आये सब किये। इस काम की विशालता कूतने के लिए इतना वता देना पर्याप्त होगा कि लोगों के पास से इतने वासन माँग लाने पड़े थे जिनके ढोने पर ही चार हजार रुपये खर्च हुए थे।

इस महासभा के मुख्य दो भोजनालय थे। इनमें के विशिष्ट भोजनालय का कार्यभार श्री रावजीभाई—मगिभाई पटेल तथा नानाभाई भट्ट जैसे अनुभवी पुरुषों के हाथमें था। वड़े किसान-भोजनालय का समस्त दायित्व महाराजने अपने पर ले लिया था। इसमें इनकी सहायता श्री छोटालाल व्यासने भी की थी। महाराज सुनाते हैं कि पहले दिन हमारे भोजनालय में ३५० मन चावल, १०० मन दाल और २५० मन शाक वनाया गया था। परोसने वाले १५०० स्वयं—सेवक थे। पर वे विशिष्ट भोजनालय से ही निवृत्त नहीं हो सके। इस लिए महाराजने किसानोंमें से स्वयं—सेवक वना करके काम आगे वढ़ाया। परोसने वालों की न्यूनता के कारण ही पहले दिन २५ मन भात वच गये। पर दूसरे दिन इतने ही भात राँधने पर

एक दाना भी न बचे ऐसी व्यवस्था इन्होंने कर डाली थी। केवल छह पैसेमें महाराज जो आता था उसे मंडपमें बैठाकर पेटभर दाल-भात-शाक खिलाते थे और ऊपर से आधा तोला घी भी देते थे। गांव-गांव से आये हुए गरीब किसानों को इस व्यवस्था से बहुत सुविधा मिल गई थी। जो कोई इस व्यवस्था को देखने आता वही देखकर प्रसन्न हो जाता।

ऐसे बड़े—बड़े कामों में मनुष्य को अनुभव भी अनेक प्रकारके होते हैं। वे कटु भी होते हैं और मधुर भी।

महाराज सुनाते हैं कि "हरिपुरे के मेरे भागमें आये हुए काममें मैं सफल हुआ अथवा हरिपुरे का सारा काम सुशोभित हुआ इसका अधिक श्रेय स्वयं—सेवकों तथा कार्यकर्ताओं को है; क्योंकि इन्होंने अगाध परिश्रम उठाया था।" फिर भी महाराज को इनमें कुछ कमियां भी दिखाई दीं।

एक दिन लोगोंकी पंगत जीमने बैठी थी। एक बार परोस दिया गया था। इतनेमें एक स्वयं—सेवक हाथ झाड़ता—झाड़ता बोला—'अब हम जाते हैं, समय हो गया है, हमारे नायक का आदेश है।'

महाराज—जबतक पंगत जीमकर न उठ जाय तबतक नहीं जा सकते।

स्वयंसेवक—हमारा समय हो गया है और हमारे नायक का आदेश है।

महाराज—तुम्हें जाना हो तो पंगत से पूछ देखो।

महाराज ज्यों–ज्यों रोकने का आग्रह करते जाते थे, त्यों–त्यों वह अधिक तर्क-वितर्क करता जाता था ।

महाराज—भाई, मैं तुम्हारे जितना पढ़ा–लिखा तो नहीं; इसलिए तुम्हारी युक्तियों की मुझे अधिक समझ भी नहीं पड़ती । पर हाथमें लिया काम अधूरा छोड़कर नहीं जाना चाहिए; इतनी अनुशासन की बात मैं समझता हूँ । तुम्हें भी यह काम पूरा करके ही जाना चाहिए ।

स्वयंसेवक—मैं कांग्रेस न देख सकूं; इसकी मुझे चिंता नहीं । मैं परोसने को प्रस्तुत हूं, पर स्वेच्छा से, परेच्छासे नहीं ।

महाराज—जैसे तुम्हें समझ पड़े वैसे काम करो । अध-बीचमें काम नहीं छोड़ना चाहिए, इतना मैं समझता हूँ ।

बादमें तो सब स्वयंसेवकोंने अंत तक काम किया । वहांसे छूटते समय हँसते मुख विदा ली । क्योंकि परोसते-परोसते तो महाराजने हँसते हुए अनेक पाठ सिखा दिये । महाराज तो मानते हैं कि परोसना भी एक कला का काम है । चाहे जिस व्यक्ति को इसमें नहीं लगा देना चाहिए । महाराज स्वयं-सेवकोंके अनुशासन के रूपमें ऐसा भी मानते हैं कि जबतक अपने स्थान पर दूसरा न आ जाय तबतक हमें सौंपा गया दायित्वपूर्ण काम समय हो जाने पर भी छोड़ नहीं देना चाहिए । कितने स्वयंसेवकों को अपने कर्तव्यमें से आगे-पीछे होने के समय ये टकोरें सुनने को मिली होंगी ।

महाराज के भोजनालय का इतना बड़ा घान था कि पहले दिन शाक सँवारने के लिए ही २५० स्वयंसेवक बैठाने पड़े थे। इस प्रकार शाक सँवारना ठीक न बैठा। इसलिए इन्होंने मंडप बाँधने आये हुए दस बढ़इयों को १॥–१॥ रुपया रोजका ठहराकर वसूलों से ही शाक सँवारने बैठा दिया। रातके आठ बजे से बैठते थे और सबेरे के छह बजे तक २५० मन शाक का अमनिया होता था।

पहले ही दिन दाल बनानी थी। दाल बनाने के पात्र पर्याप्त प्रमाणमें नहीं थे। इसलिए रसोइये घबराये। यह कठिनता देखकर भाई ईश्वरलाल उठ चले और गुड़ बनाने की तावड़ियां उठा लाये। पर सब की सब तावड़ियां कानी थीं—छेद वाली थीं। इनमें दाल कैसे बने? ईश्वरलाल बोले—घबराइए नहीं। भट्ठियोंमें तेज़ आग कर दीजिए छेद अपने आप बन्द हो जायँगे। सचमुच इन्होंने अपने विज्ञान का प्रयोग व्यवहार में उतार दिया। जबतक रसोई चली तबतक तावड़ियों में भलीभांति दाल बनी।

विशिष्ट भोजनालय में पंजाबी और मद्रासियों के लिए अलग-अलग दो रसोइयां रखी गई थीं। जिससे इन दूर के विशेष ढब से खाने-पीने वालों को सुविधा हो सके। यहाँ घी खुला बर्ताया जाता था। अपने एक गुजराती विद्वान् सज्जन इस रसोई में घुस रहे थे। इन्हें एक स्वयंसेवक ने रोका। इन्होंने उससे कहा कि अभी पंजाब और गुजरात

का भेद रखना है ? स्वयंसेवक ने कहा यदि आपको यहां जाने देंगे तो दूसरे भी यहाँ घुस जायँगे और अन्य प्रांतों से पधारे अतिथियों के लिए की गई अपनी सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायगी।

इस सद् गृहस्थन ने कहा—"पर तुम्हारा इसमें क्या जाता है जो तुम रोक रहे हो ? हम सब कांग्रेस के घर अतिथि आये हैं। जहाँ भी बैठें कांग्रेस के लिए सब समान हैं—" ऐसा बोलते—बोलते अपने संपर्क का उपयोग करके ये तो आग्रह—पूर्वक रसोई में घुस गये। सायं इन्हें देखकर दूसरे अनेकों इस रसोई में आ धमके और कठिनता खड़ी हो गई।

एक गृहस्थ विशिष्ट भोजनालय में खाने के बाद १२ आने देते—देते बोलेः—"मुझे दुःख है कि महात्माजी ने लिखा था गुड़ खाना चाहिए और खांड नहीं खानी चाहिए'। पर यहां कांग्रेस—अधिवेशन में खांड की मिठाइयां बनाई गई हैं। पूरियां बिलकुल कच्ची पड़ी हैं। भात में कंकरी आती है। क्या ऐसा धोखा देना चाहिए ? सब सफेद ठग हैं।

महाराज ने कानों—कान यह टीका सुनी। इसलिए इन्होंने कहा—आपके १२ आने नहीं चाहिए।"

गृहस्थ—यदि आप बारह आने नहीं लेते तो आप भी सफेद ठग हैं और आपको १२ आने लौटाने का क्या अधिकार है ?

महाराज—मैं काम करता हूँ। इसमें से मुझे विवेक—बुद्धि के प्रयोग करने का नैतिक अधिकार मिल जाता है।

एक सज्जन को भोजनालय में पूरियां पसंद नहीं आईं। इसलिए उसने भात मँगाये। भात दिये तो कहने लगा ठंडे हैं। महाराज बोले—जरा अंदर तो हाथ डाल कर देखिए। बाद में कहिए ठंडे हैं या गरम। पर वह तो कहता ही रहा। महाराज वहाँ से खिसक गये। बाद में वह शांति-पूर्वक जीम गया।

ऐसे अनेक खट्टे—मीठे वृतांत बनते थे। उनमें अपने निर्माण की अनेक त्रुटियों के दर्शन होते थे। जब महाराज ने अपने ऐसे थोड़े अनुभव गांधीजी को सुनाये तो वे हँसते—हँसते बोले कि "जब सारी कांग्रेस के लिए तेरा किसान—भोजनालय होगा तब ऐसी अव्यवस्था नहीं होगी।"

कांग्रेस के अधिवेशन में इतना अधिक काम रहता था कि महाराज या इन जैसे काम में जुटे दूसरे व्यक्ति विषय-विचारणी समिति की या खुले अधिवेशन की एक भी बैठक नहीं देख पाये थे। महा-सभा पूर्ण हो जाने पर भी इनके पास काम के ढेर पड़े थे।

अधिवेशन संपूर्ण होने पर महाराज ने कहा था कि महाभारत के विषय में किंवदन्ती है—वह सारा नहीं बाँचना चाहिए। क्योंकि उसका अंत बहुत ही करुण है। इस हरिपुरे की महासभा के अंत में भी मुझे इसी सत्य के दर्शन हुए। जिस स्थान पर हजारों मनुष्य किलोलें कर रहे थे, जहाँ इन्द्रपुरी के समान पुरी बनाई गई थी। वहाँ फिर वही खड्ढे—टेकरे और वही

निर्जन उजाड़ प्रदेश दिखाई देने लगा। मूल स्थल पर तो प्रकृति का हाथ लगा था—इसलिए उसमें कुछ शोभा थी; पर उसमें भी मनुष्य का हस्तक्षेप होने के कारण शोभा विकृत बन गई थी। विट्ठल—नगर बिखेर डालने का काम बहुत कठिन था। एक रमणीय स्थान को अपने हाथों उजाड़ कर डालना किसे अच्छा लगे? पर इस संसार में ऐसा करने की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

महासभा पूरी होने के एक सप्ताह बाद तो वहाँ मक्खियां ही—मक्खियां भिन—भिनाने लगीं। बाद में रहने वालों को वहाँ रहना ही कठिन हो पड़ा। ऐसे बड़े मेलों में यदि योग्य स्वच्छता न रखी जाय तो रोग—विस्तृति अनेकों को खा जाय। हरिपुरा—महासभा की स्वच्छता अजोड़ थी। स्वयं गांधीजी ने इसकी प्रशंसा की थी। श्री जुगतराम भाई दवे तथा उनके १४०० के लगभग स्वयंसेवकों ने जो रात—दिन देखे बिना परिश्रम उठाया था उसी का यह परिणाम था। इतना ही नहीं, पर इस अधिवेशन में गांधीजी ने यह आग्रह रखा था कि स्वच्छता का काम मेहतरों से नहीं कराना चाहिए और पढ़े—लिखे उच्च वर्ण के भावनाशील स्वयंसेवक ही करें। इसका पूरा—पूरा पालन हुआ। इसके द्वारा अपने सारे गुजरात में स्वयं स्वच्छता कर लेने की एक हवा फैली। अहमदाबाद की नगर—समिति के मेहतरों ने ने जब काम करने की हड़ताल करदी थी तब इसी शिक्षण ने वहाँ के बाई—बहनों को निराधार और पंगु बनने से बचाया था।

महाराज गाँव–गाँव से वासन–वासन लाये थे। ये वापस पहुँचाने के काम में रुक गये। शेष जो माल बच गया था उसके निकालने में भी इन्होंने सहायता की। ७५० मन चावल, १०० मन गुड़ यौर दूसरी ढेरों–की–ढेर सामग्री बच गई थी। 'व्यापारी लोंग कार्तकर्ताओं की आवश्यकता देखकर सँहगा–सस्ता बिलकुल नगण्य मात्रा में उठा लेने की ताक में थे। महाराज को यह बात अच्छी नहीं लगी। इन्होंने सरदार साहब से कहा कि "व्यापारी हमें ठगना चाहते हैं। इससे तो यही अच्छा है कि यहाँ के रानी परज लोगों में यह बेची जांय और इन गरीब लोगों को कुछ सहायता भी मिल सकेगी। इसमें समय तो लगेगा। इसके लिए एक–आध मास अधिक रुकना पड़ेगा तो मैं यहीं रुक जाऊँगा।" सरदार साहब को महाराज की बात रुच गई। इसका पालन हुआ।

महाराज ने गाँव–गाँव संदेश भेज दिया और पंद्रह दिनों में दूर–दूर से आकर लोग सस्ती सामग्री खरीद कर ले गये।

गामड़े में महासभा भरने से लोगों को देखने और जानने को तो मिला। इनमें राष्ट्रीय जागृति प्रगट हुई; ये तो बड़े–से–बड़े लाभ थे ही। इतना बड़ा नगर खड़ा करने के लिए और वहाँ पधारे हुए लोगों की सुविधा रखने के लिए जो कामकाज हुआ; उसके निमित्त से लोगों को हजारों रुपयों की मजदूरी मिली। गाँव–गाँव के मार्ग सुधर गये। ऐसा सस्ता माल मिल गया। ऐसे छोटे–मोटे तो दूसरे बहुत–से लाभ हुए।

६४--कलोल में विसूचिका के समय

किसी भी स्थान पर अतर्कित विपत्ति आ पड़े तो वहाँ पहले-से-पहले पहुँच जाना और विपत्ति में पड़ों के सहायक होना यह महाराज का स्वाभाविक गुण है।

कलोल में विसूचिका= हैजा फूट निकला है; और लोग धड़ा-धड़ मर रहे हैं-यह समाचार महाराज ने समाचारपत्रों में बाँचा कि तुरंत दूसरी ही गाड़ी से ये कलोल की ओर चल पड़े। वहाँ जाकर इन्होंने देखा कि तीन ही दिनों में इतना प्रकोप हुआ-लोग घबरा गये थे। जिन-जिन को सुविधा थी वे अपने सगे-संबंधियों के यहाँ भाग गये थे। पर जिन्हें ऐसी कोई सुविधा नहीं थी वे सब कलोल में ही थे। कई-एक तो ऐसे भौचक्के हो गये थे; उन्हें यह भी नहीं सूझ रहा था कि अब क्या करना चाहिए। फिर रोगी की योग्य सेवा करने की तो बात ही कहाँ रही?

अहमदाबाद के रोटरी क्लब ने स्कूल के विद्यार्थियों को कलोल में स्वयंसेवक के रूप में भेजकर सहायता पहुँचाने का विचार किया था और विसूचिका-निवारण के लिए एक पर्याप्त धन-राशि भी स्वीकृत की थी। महाराज ने कलोल में जाकर देखा कि पैसों की अपेक्षा अधिक आवश्यकता सच्चे सेवकों की है। इसलिए ये तुरंत वापस अहमदाबाद आये। अपने परिचित युवक मित्रों से मिले। महाराज के बुलाने पर दूसरे सब काम छोड़-छाड़ कर प्रस्तुत होने वाले ऐसे कई-एक युवक अहमदाबाद में थे ही। वे ऐसा आया अवसर

हाथ से कैसे जाने देते ? महाराज ने उन्हें चेतावनी दी कि इस काम में प्राण जाने का भी भय हैं। इसलिए विचार करके ही इस काम में सम्मिलित होना चाहिए । ऐसा कहने पर भी एक युवक तो अभी—अभी विवाह करके आया था; वह भी उद्यत हो गया। इस प्रकार चुने हुए कुछ स्वयंसेवकों सहित महाराज फिर कलोल पहुँचे। इस समय तो दूसरे भी बहुत—से लोग आ पहुँचे थे। बड़ौदा राज्य की ओर से डाक्टरी सहायता भी आ गई थी। पर काम किस प्रकार करना चाहिए; इसकी किसी को गम नहीं पड़ती थी। लोग धड़ा—धड़ मरते जा रहे थे। समझाने पर भी लोग रोगी को औषधालय में लाने के लिए तैयार नहीं होते थे। अंत में स्वयंसेवकों की सहायता से रोगियों को समझा—बुझा कर और कई—कई बार तो बलात् भी मंजा उठाकर औषधालय में खींच लाते थे। तो भी मरण—प्रमाण घटता नहीं था। इससे सब अधिक घबरा गये थे।

इसी समय एक विदुषी वैद्य यहाँ आई। उसने एक बहुत साधारण होने पर भी अमोघ उपाय अजमाया। यह देखकर सब चकित रह गये। इस उपाय से मरण—प्रमाण घटने लग गया।

वह बहन प्रत्येक रोगी की प्रधान रक्तवाहनी नसमें सूची-यंत्र से सेर—पौने सेर जितना नमक का पानी प्रविष्ट करने लगी। इसका रामबाण प्रभाव पड़ा। सामान्यतः विसूचिका के रोगियों को

बार–बार टट्टी और उलटी होती रहती है। टट्टी पतली एवं सफेद रंगकी होती है। धीरे–धीरे शरीर का सारा पानी बाहर निकल जाता है। नया लिया आहार या पानी शरीरमें नहीं टिक सकता। इसके कारण हाथ–पाओं की नसें चढ़ने लगती हैं, अशक्ति बढ़ जाती है और अंतिम घड़ी में तो लहू गाढ़ा बन जाने से हाथ–पाओं ऐंठने लगते हैं। जिसका हम अनुमान भी नहीं कर सकते इतने कम समयमें यह सब बन जाता है। देखते–देखते ही रोगी की देह छूट जाती है। पर इस नमक के पानी के इंजेक्शन से ऐसा होने लगा; मानो रोगी की देहमें जीवनरस ऊँड़ल दिया गया हो। ज्यों–ज्यों वह पानी रोगी के शरीर में प्रविष्ट होता जाता था त्यों-त्यों रोगी को नया जीवन प्राप्त होता जाता था। कुछ क्षण पहले जो 'अभी गया' की स्थिति में होता था, उसकी आँखमें कांति आने लगती। मुख पर तेज आने लगता। कुछ समय के बाद ही मनुष्य बैठा हो जाता। बाद में तो यह रसायन बहुत ही अचूक सिद्ध हुई। फिर तो कार्यकर्ताओं में अधिक उत्साह आया और धीरे–धीरे औषधालय में आया हुआ कोई भी रोगी नहीं बिगड़ा।

परन्तु रोगियों को औषधालय में लाने की कठिनता तो ज्यों–की–त्यों थी। रोटरी क्लब की ओर से स्वयंसेवक भी बहुत आ गये थे। महाराज सुनाते हैं कि इनमें सेवा देने वाले नहीं, लेने वाले अधिक थे। इनकी ओर से महाराज के पास ऐसे–ऐसे परीवाद आने लगे कि "यहां तो सोने के लिए मंजा नहीं, हाथ-पाओं

धोने के लिए सावन ही नहीं और हाथ पोंछने के लिए तौलिय भी नहीं; ऐसी स्थिति में काम कैसे हो सकता है ?"

महाराजने कहा—भाई, हम सब तो सेवा करने के लि आये हैं। जो कुछ अपने पास है उसी से काम चलाइए। अपना मुख्य कार्य तो रोगियों की सहायता करना है। घर-घर रोगियों के मंजे पड़े हैं, उनके यहां जाकर दवा पिलानी है, उनका टट्टी—पेशाब साफ करना है, उनका विस्तरा बदलना है, रोगियों को औषधालय में पहुँचाना है—ये सब काम तो बिखरे पड़े हैं और तुम मंजे और साबन का रोना रो रहे हो।

महाराज की ऐसी बात उन स्वयंसेवकों के गले नहीं उतरी थी। महाराजने इन सब स्वयंसेवकों को महल्लों के अनुसार विभाग करके रोगियों के मंजे भी सौंपे थे। पर जब दूसरे दिन महाराजने जाकर देखा तो विदित हुआ कि कई—एक महल्लों में कोई दवा पिलाने ही नहीं गया था। पड़ाव पर महाराजने आकर देखा तो कई—एक स्वयंसेवक ताश खेल रहे थे। कई—एक सिनेमे के गीत गा रहे थे और कई—एक गप्पें हांक रहे थे। यह देखकर महाराज बहुत चिढ़ गये। इन्होंने इन्हें फटकारा भी। इससे कुछ तो अपने विभक्त महल्ले में भाग गये। जहाँ दिलमें से उद्गम न हो वहाँ बाहर की थिगलियां मारने से क्या हो सकता है ? अंत में महाराज इन लोगों से ऊब गये। अहमदाबाद से जिनकी ओर से यह

टुकड़ी भेजी गई थी; उनसे इन्हें वापस बुलाने के लिए कहना पड़ा। दूसरी ओर इन्हें पाँच-सात ऐसे निष्ठावान् सेवक मिल गये थे कि उनके काम की ओर देखना ही नहीं पड़ता था। इनमें डा० दिनु भाई, कु० मृदुलाबहन, श्री पुष्पाबहन महेता और इनके साथ की दो-एक दूसरी बहनों को गिनाया जा सकता है। पर ऐसे स्वयं-सेवक इने-गिने थे। इतने थोड़े स्वयं-सेवक भी वहां के काम में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए।

कुमारी मृदुलाबहन तो आरंभ से ही इनके साथ थीं। जब महाराज अहमदाबद में स्वयंसेवक लेने गये थे तब इन्होंने सबसे पहले अपना नाम लिखाया था। महाराजने कहा था कि इसमें प्राणजाने की आशंका है और तुम्हारे माता-पिता को तुम्हारा वहाँ जाना कदाचित् न पसंद आवे।

मृदुलाबहन--नहीं, मैं तो आऊँगी ही।

महाराज--तो मेरा एक पण है। वहाँ आना हो तो अंत तक रुकना पड़ेगा। रुग्ण हो जायँ तो स्वयंसेवक विशेष प्रकार की चिकित्सा के लिए अहमदाबाद या मुंबई नहीं जा सकते। जो सबके साथ हो रहा है वही स्वयंसेवक के साथ भी होगा।

मृदुलाबहन--मुझे ये सभी पण स्वीकृत हैं। पर मैं कलोल काम करने तो अवश्य आऊँगी।

ऐसे आग्रह से ये महाराज के साथ गई थीं। इन्होंने ऐसा काम किया, जिसके विषय में महाराज स्वयं कहते हैं कि "इनके काम में से हमें प्रेरणा मिलती थी" इनके मुख पर खाने-पीने की

कभी शिकायत नहीं आई। पिछले दिनों में इन्हें ज्वर हो गया। इनके मां–बाप आदि मोटर में डाक्टर को लेकर इन्हें बुलाने आये। पर इन्होंने अपने कार्यक्षेत्र में से हटने का स्पष्ट नकार सुना दिया। इन्होंने कहा जब तक मेरा काम पूरा नहीं होता तब तक मैं कहीं नहीं जा सकती। जैसी देख–भाल यहां सबकी हो रही है ऐसी मेरी भी होगी। इससे विशिष्ट सेवा मैं नहीं ले सकती। ऐसा प्रसंग आखों से देखने के बाद महाराजने इनसे जाने के लिए कहा। पर मृदुलाबहन तो अपने निश्चय पर ही दृढ़ रहीं। अंत में महाराजने कहा कि "मैं तुम्हारा मुखिया तो हूँ न ? मैं मुखिये के रूप में तुम्हें यहां से इनके साथ चले जाने की आज्ञा देता हूँ"। इतना कहने के बाद ये अपने कुटुम्बियों के साथ जाने को तैयार हुई; पर वह भी अनिच्छया।

अपनी जनता का अज्ञान तथा मिथ्या धारणाएँ हमें कितना तङ्ग करती हैं, इसका पाठ भी महाराज को यहाँ मिल गया। विसूचिका का आरंभ होने के अनंतर माता के आवेश वाले एक व्यक्ति ने यह बात फैला दी कि यह तो माता का प्रकोप है। इसलिए इसमें दवा–दारू नहीं करनी चाहिए। जो दवा–दारू कराएगा, उस पर माता प्रकुपित हो जायगी। इस मिथ्या धारणा में अच्छे–अच्छे पढे–लिखे भी फँसे हुए थे। न कोई दवा पीता और न कोई औषधालय में जाता। बाद में पुलिस नायब सूबे ने उस माता निकालने वाले को बुलाया और धमकाया। वह सारे नगर में घूम गया। वह स्वयं अपने साथियों सहित सबसे पहले दवा और इंजेक्शन

छे गया। इसके अनंतर यह मिथ्या धारणा दूर हो गई।

महाराज इस समय के दृश्यों का वर्णन सुनाते हैं कि कितने–एक दृश्य तो अतीव करुण थे। आज भी वे मेरी आंखों के सामने तैर रहे हैं। एक मुसलमान परिवार सारे-का-सारा विसूचिका का भोग बन चुका था। इसमें के एक लड़के की मां और बहन विसूचिका के चंगुल में फंस गई थीं। वह लड़का अपने प्राणों की भी उपेक्षा करके मां–बहन की सेवा-शुश्रूषा करता था। दिन-रात अपनी मां के पास बैठा रहता था। उसकी मां औषधालय में मर गई और वह दवा आया। उसके मनमें अपार दुःख था। उसकी बहन बीमार थी। इसलिए कठोर हृदय करके वह उसकी देख-भाल करने लगा। जब उसकी बहन अंतिम साँस ले रही थी, तब भी वह उसके मुँह में मुँह देकर उसके साथ बातें कर रहा था। अपनी मां की मृत्यु का अक्षर तक भी उसने अपनी बहन से नहीं कहा। बहन भी चल बसी।

एक पठान मिल में काम करता था। उसके रोजे चलते थे। विसूचिका ने उसे पकड़ा। सब लोग समझाने लगे कि अभी आरंभ है, दवा लोगे तो ठीक हो जाओगे। पर वह रोजे रखने वाला पठान दवा के लिए अपने रोजे तोड़ सकता था? प्राण दे दिये, पर रोजा नहीं तोड़ा।

ऐसे प्रेम, सद्-आग्रह और उच्च भावनाओं वाले दूसरे अनेक करुण वृतांत वहाँ बने होंगे; पर उनकी नोंध लेने कौन बैठा होगा?"

थोड़े दिनों के बाद कलोल में बाहर से पैसों तथा साधनों

की पुष्कल सहायता आने लगी। वड़ौदा राज्य तथा अन्य प्रसिद्ध संस्थाओंने भी खूब परिश्रम उठाया। इन सबके परिणाम स्वरूप थोड़े समय में विसूचिका वश में आ गई। अपने लोगों को स्वच्छता तथा प्राथमिक उपचारों का कितना कम ध्यान है। इसका शिक्षण देने की अपनी जनता में कितनी आवश्यकता है, इसका भी इसमें से बोधपाठ मिल गया। ऐसे प्रसंगों पर काम करने से स्वयंसेवकों को कितनी उच्च शिक्षा मिलती है—इसका भी सबको अनुभव हुआ।

ऐसे प्रसंगों पर समाचार-पत्र समय पर सहायता पहुँचाने तथा लोकमत जागृत करने में वहुत सहायक सिद्ध होते हैं। पर इनके साथ कई—एक अनिष्ट भी हैं। कई-वार समाचार-पत्र छोटी चीज़ को वहुत वड़ा रूप दे देते हैं। इससे लाभ के स्थान पर हानि भी हो जाती है।

महाराज सुनाते हैं—कलोल में विसूचिका के समय काम करने वाला मैं अकेला ही नहीं था, दूसरे भी वहुत थे। मेरी अपेक्षा अधिक विद्वान् और अधिक शक्तिशाली भी थे। मैं अपने स्वभावानुसार लोगों की प्रत्यक्ष सेवा में पड़ जाता हूँ। टट्टी—पेशाव उठाने लग जाता हूँ और सारा समय काम करता रहता हूँ। इसलिए स्वाभाविक वहुत लोगों की दृष्टि पर चढ़ जाता हूँ। इसलिए एक वार समाचार—पत्र में प्रकाशित हुआ कि "श्री रविशंकर महाराज की अध्यक्षता में चलता हुआ कलोल का अनुकरणीय सहायता कार्य"। इसका परिणाम यह निकला कि दूसरे कार्यकर्ताओं को

समाचार–पत्र में जो स्थान मिलना चाहिए था वह नहीं मिला। इसका प्रभाव भी पड़ा। रोटरी क्लब वालों ने पैसों की जो सहायता देना चाहते थे वह बंद कर दी। पर बाद में इनकी भ्रांति दूर हो गई और इन्होंने कुछ सहोयता भी की। अपुष्ट प्रकाशन से कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है।



६५–अहमदाबाद के उपद्रव में

१९ अप्रैल १९४१ को महाराज आणंद स्टेशन पर से बोरसद जा रहे थे। वहां से एक स्त्री अहमदाबाद जा रही थी। कुछ लोग वहां जाने को उसे ना पाड़ रहे थे। कहते थे कि अहमदाबादमें भयंकर उपद्रव छिड़ गया है, स्वयं ही मृत्यु के मुख में क्यों जाती हो ? काम है तो बाद में नहीं होगा ?

इससे पहले "अहमदाबाद में हिन्दु–मुसलमानों में झगड़ा हो गया है" ऐसा कुछ–कुछ महाराज ने कहीं से सुन रखा था। पर ऊपर की बात–चीत सुनकर के महाराज ने सोचा कि जहाँ ऐसा उपद्रव चल रहा हो क्या मुझे वहाँ नहीं दौड़ जाना चाहिए ? इनके मनमें दूसरा यह विचार भी उठा कि इतने बड़े नगर में जाकर मैं क्या करूँगा ? विचारों के ऐसे मंथन–सहित महाराज गाड़ी में बैठ गये। बोरसद स्टेशन पर उतर कर ये छावनी में गये। वहाँ का काम पूरा किया, गाँवों में जाना था; वह स्थगित

कर दिया। उसी दिन दुपहरे की गाड़ी में अहमदावाद को चल पड़े। सायं साढे चार बजे स्टेशन पर उतरे।

नगर के मार्ग सुन-सान थे। सर्वत्र भय का वातावरण फैला हुआ था। मार्ग में जहाँ-तहाँ सिपाही ही सिपाही दृष्टि पड़ते थे। महाराज को *खाड़िये में अपने भाई के यहाँ जाना था। मार्ग में चलते हुए इनसे एक व्यक्ति ने पूछा-'आप कहाँ जायँगे ?' महाराज ने उत्तर दिया-'खाड़िये में'। वह बोला-मुझे भी खाड़िये में जाना है। महाराज ने कहा-'चलिए'। इस प्रकार दोनो सुरक्षित घर पहुँच गये। महाराज ने घर जाकर झोला रखा, पानी पिया, कुछ बातें कीं और फिर बाहर घूमने निकल पड़े। रास्ते पर जाती हुई इन्होंने नगर-समिति की मोटर देखी। इसमें श्री जीवनलाल दीवान थे। महाराज ने हाथ ऊँचा करके उसे खड़ा कराया।

महाराज—कहाँ जाते हैं ?

दीवान साहब—सिविल अस्पताल में।

महाराज इनके साथ मोटर में बैठ गये। थोड़ी ही देर में सिविल अस्पताल में पहुँच गये। वहाँ श्री नरहरि भाई परीख भी थे। एक ओर ४० ४२ शव पड़े थे। पर अभी तक उनके जलाने की कुछ व्यवस्था नहीं हो सकी थी। परिस्थिति देखकर महाराज ने कहा-यदि साधनों की सुविधा मिल जाय तो मैं जला आता हूं। रात पड़ने वाली थी। मजि-

* एक महल्ले का नाम।

स्ट्रेट भी वहीं खड़ा था। वह क्रिश्चियन था। उसने कहा—'इनके साथ—साथ आप जलना चाहते हैं क्या ?' अँधेरा हो गया। अभी कर्फ्यू आर्डर चालू हो जायगा। रात में वापस नहीं आ सकेंगे'। अंत में एक मोटर में बैठकर दो सिपाहियों के साथ उसने महाराज को इनके भाई के यहाँ पहुँचा दिया। महाराज रात को वहां सो रहे।

दूसरे दिन सवेरे अपने भतीजे वासुदेव तथा अशोक नामक एक विद्यार्थी को लेकर महाराज नगर में घूमने निकले। जहाँ—जहाँ आग लगाई गई थी; वहाँ—वहाँ ये घूमे। आगे—आगे दोनों लड़के चलते थे और पीछे—पीछे महाराज। लड़कों पर पीछे से आकर कोई आक्रमण न कर दे; इसकी महाराज सतत सावधानता रखते थे।

एक मुस्लिम—महल्ले में कुछ हिन्दू—लोग जाली (छेदों वाले किवाड़) बन्द करके अंदर बैठे थे। इनमें से एक ने कहा—"हमारी चारो ओर मुसलमानों के ही घर हैं और इन्होंने ही हमें बचाया है। पर यहां से निकलने की हमें ना सुनादी है।"

दूसरे स्थान पर एक मंदिर में गायें और बाबा थे। उपद्रवियों ने वहाँ जाकर किवाड़ सुलगा दिये। किवाड़ गिरते ही गायें भाग निकलीं। एक बाबा बाहर निकला कि तुरन्त किसी ने उसे काट डाला। दो—तीन बाबा रह गये। उन्हें समीप के घर वाले मुसलमान ने रस्सा फेंक कर ऊपर आकाशी में खींच

लिया और दूसरे दिन सुरक्षित रूप से हिन्दू-महल्ले में पहुँचा दिया। इस प्रकार घूमते-घूमते महाराज ने सारा जमालपुर महल्ला देख डाला। फिर ये घर गये। भोजन करके पुनः ये सिविल-अस्पताल में पहुँचे। श्रीनरहरि भाई, लाला काका आदि भी वहाँ आ पहुँचे थे। वहां पड़े हुए शवों में से अब अधिक पूति-दुर्गन्ध निकलने लगी थी। उनका दिखाव भी बहुत बीभत्स हो गया था। यह देखकर महाराज ने उन शवों को जला आने की दुबारा माँग की। पर जिला-मैजिस्ट्रेट ने कहा कि 'आपको अनुमति नहीं दी जा सकती'। अंत में नगर-समिति के प्रमुख श्री मणिभाई चतुरभाई को यह दायित्व सौंपा गया और इनके सहयोगी के रूप में ये शव जलाने की अनुमति जिला-मैजिस्ट्रेट ने महाराज को दे दी। इसके साथ-साथ सभी स्थानों पर निर्बाध घूमने की छूट का एक धारण-पत्र (पास) भी इन्हें दिया गया। इतना निश्चित होने तक तो रात पड़ गई। इसलिए तीसरी रात में भी शव सड़ते ही पड़े रहे।

२१।४।१९४१ को सवेरे महाराज नगर-समिति की बस में शव भर कर साबरमती नदी के किनारे दूधेश्वर (श्मशानस्थान) पहुँचे। इससे पहले ही इन्होंने नदी के पाट में १६ फुट लंबी एक चिता बनाने की सूचना फोन से दे दी थी। इसलिए चिता तैयार थी। महाराज की सहायता के लिए नदी पार के गांधी-आश्रम में से श्रीनरहरि भाई तथा दूसरे दो बंधु भी आ पहुँचे थे। उनकी सहायता से महाराज ने सब शव चिता पर

रखे। तीन दिन पड़े रहने से उनमें ऐसी विकृति पैदा हो गई थी कि उठाते समय उनमें से दुर्गन्धित पानी छूट रहा था। दुपहरे बारह बजे शव ठीक-ठाक करके रख दिये और उनमें आग दे दी। दुपहरे के बाद महाराज फिर दूसरे बारह शव अग्नि संस्कार के लिए नदी पर ले आये। जिस मोटर पर शव ढो रहे थे, उसके अगले स्थान पर मोटर-चालक तथा मिलिटरी के दो सिपाही बैठते थे। इस कारण महाराज को शवों के बीच लारी में ही खड़ा रहना पड़ता था। इन शवों में से ऐसी दुर्गन्ध छूट रही थी कि जहाँ-जहाँ से लारी निकलती जाती थी वहाँ वहाँ खड़े लोग कपड़े से नाक बंद कर लेते थे। गरमी भी इतनी अधिक पड़ती थी जिससे मोटर भी तप जाती थी। महाराज अपना कंबल पाओं तले रख लेते और बंडी की झोली मोटर के फट्टे पर रखकर फट्टा पकड़ लेते-तभी कहीं जाकर ये खड़े रह सकते थे।

दूसरे दिन से मृतक दुपहरे के बारह बजे बाद ही मिलने लगे। इस प्रकार सात दिन तक महाराज ने मृतक जलाने का काम किया। सब मिलकर ८३ शव जलाये। सिविल-अस्पताल में आये मृतकों का तो इस प्रकार निकाल हो गया। पर गली-कूचों या घरों में जो मृतक पड़े थे उन्हें जलाने के लिए बहुत कठिनता थी। क्योंकि सर्वत्र १४४ धारा लागू थी। पाँच व्यक्ति तो इकट्ठे ही नहीं हो सकते थे। लोगों

में बाहर निकलने का साहस भी नहीं था।

डाकौर के एक ब्राह्मण का नव--युवक लड़का रेलवे में नौकर था। वह इस हुल्लड़ में मारा गया। इस ब्राह्मण के बड़े लड़के की हत्या कुछ मास पहले सूई--गाँव के समीप हो चुकी थी। यह दूसरी हत्या हो गई। इससे बाप तो भौंचक्का हो गया। डाकौर के ही दो--तीन व्यक्ति महाराज से मिले और इस ब्राह्मण शरीर का दाह संस्कार कैसे करें--इसकी चिंता करने लगे। महाराज ने कहा कि "आपको जो विधि करनी हो वह करके अरथी को इस मोटर में रख दें। आप चिंता न करें। मैं इसकी चिता अलग बनवा दूंगा और ब्राह्मण विधि के अनुसार इसका दाह--संस्कार भी करा दूंगा। मैं स्वयं भी ब्राह्मण हूँ।" इस प्रकार विश्वास देकर महाराज ने बूढे को सांत्वना दी और डाकौर चले जाने की सम्मति दी। इन्होंने एक अलग चिता बनाने की फोन से सूचना भी भेज दी। दो--तीन घंटेके बाद एक बावा का शव लेकर उसके साथी महाराज के पास आये। वह शव भी महाराज ने मोटर में रखा लिया। उसी दिन दो--तीन नट भी महाराज के पास आकर अपने संबंधी के शव को ठिकाने लगाने के लिए कहने लगे। उन्हें भी अलग चिता चाहिए थी। महाराज ने कहा कि "अब अलग चिता की व्यवस्था नहीं हो सकेगी; क्योंकि चिता बनाने--वाला अब चला गया है। यदि चिता अलग ही करनी हो तो तुम में से दो--तीन जन पहले से दूधेश्वर पहुँच जायँ। मैं तुम्हें चिट्ठी लिख-

कर दे देता हूँ। तुम्हें वहां से लकड़ियां मिल जायँगी।" ये लोग सहमत हो गये और चिट्ठी लेकर चल पड़े। महाराज मोटर में मृतक भर कर दुपहरे तीन बजे दूधेश्वर पहुँचे। इस समय ये लोग एक कोने में बैठे थे।

महाराज—क्यों, चिता तैयार हो गई?

नट—हम तो समय पर पहुँच ही नहीं सके। आपसे पाँच मिनट पहले ही यहाँ पहुँचे हैं।

अंत में सब शवों को एक साथ रखकर महाराज ने दाह-संस्कार किया। महाराज स्नान करके कपड़े पहनने लगे। उन व्यक्तियों में से एक ने कहा कि "क्या आप जा रहे हैं? हम भी आपके साथ ही चलेंगे। थोड़ी देर रुकेंगे नहीं? यह शव जलने पर हम इसकी राख नदी में पधरा दें। कल न जाने हम आ सकें या नहीं।" अकेले वापस जाने में उन्हें भय लगता था। यह महाराज जान गये थे। इसलिए ये वहाँ रुके। "महाराज सड़े शवों के बीच खड़कर दूधेश्वर जाते हैं" यह समाचार जानने के बाद मृदुला बहन ने अपनी मोटर से महाराज को दूधेश्वर तक पहुँचा आने की व्यवस्था करदी थी। इसलिए उन लोगों ने सोचा कि इनके साथ लौटने में मोटर भी मिल जायगी। पर महाराज तो सायं चलकर निकल जाते। जब यह बात उन्हें विदित हुई तो वे कुछ निराश हो गये। पर महाराज साथ थे—यह भी उनके लिए बहुत सहारा था। जब वे अपनी गली पर जाकर अलग हुए तो उन्होंने महाराज का बहुत-बहुत उपकार माना।

महाराज दुपहरे शव जलाने जाते और सवेरे मुसलमान-महल्लों में फिरने जाते। इन्होंने देखा कि जिन मुसलमान-महल्लों में दो-चार हिन्दुओंके घर हैं उनका रक्षण मुसलमानोंने किया है और जिन हिन्दू-महल्लों में दो-चार घर मुसलमानों के है, उनका रक्षण हिन्दुओंने किया है; ऐसे उदाहरण भी थे। मुख्य-मुख्य मार्गों पर थोड़े मुसलमानों या सिपाहियों के अतिरिक्त दूसरा कोई दिखाई नहीं देता था। लोग बहुत ही भयभीत हो चुके थे।

एक गली के नाके पर कुछ नव-युवक खड़े-खड़े हाथ लंबे कर-कर बातें कर रहे थे। बड़े लोग समीप के चौतरे पर बैठ कर 'यदि उपद्रवियों का टोला आवे तो क्या करना चाहिए' इस विषय पर परामर्श कर रहे थे। गली का दरवाजा बन्द करके ताला मार दिया गया था। छोटी बारी खुली रखी थी। किसी के हाथ में दातन तक का भी शस्त्र नहीं था। यह देख कर महाराजने सोचा कि यदि उपद्रवी लोग आ चढ़ें तो ये कैसे सामना करें? भागना पड़े तो भागें भी कहाँसे? दरवाजा तो बंद था। पहले बड़े अन्दर जायँ या नवयुवक? इसकी ही आपो-धापी हो जाय। इस प्रकारका सूचन करके महाराज आगे बढ़े।

एक सँकरी गलीमें छोटा-सा मंदिर था। गली के दोनो ओर चार-चार पाँच-पाँच घर थे। सामने के किनारे के मोड़ पर वह मंदिर था। एक पंक्ति में बीचका घर किसी पाटीदार का था। वह तीन तल्ले का था। उसके आस-पास छोटे और नीचे छप्पर

थे। उनमें के एक छप्पर में महाराज गये। वहाँ एक रुग्ण वृद्धा और एक युवती थी। उनके पास से विदित हुआ कि दो दिन पहले मिलिटरी के दो पठान बंदूक लेकर इस गली में आये थे। इसी समय एक मारवाड़ी अपने अतिथि को लाकर अपने मकानका ताला खोल रहा था। इसी समय बाबा मंदिरकी तंग गलीमें से इस ओर आ रहा था। वह ऊँचे मकानवाला पाटीदार अपने मकान परसे नीचे उतर रहा था। मिलिटरी के सशस्त्र सैनिकों को देखकर बाबा वापस होकर मंदिरमें छिप गया। वह अतिथि, मारवाड़ी और पाटीदार भय के मारे हाँफने–हाँफते उस स्त्री की कोठड़ी में घुस गये। उस पठानने किवाड़ पास खडे–खडे गोली दाग दी। वह पाटीदार के शरीर को बींधती हुई मारवाड़ी के शरीर में जा घुसी। दोनों का वहीं 'राम राम सत्त' बोल गया। वह अतिथि बच गया। यह वस्तुस्थिति अधिकारियों के पास पहुँचाई गई। पर इस विषय में कुछ सुनाई नहीं हुई।

कई-एक महल्ले तो बिलकुल खाली हो गये थे। एक महल्ले में केवल एक बुढ़िया रहती थी। महाराज उससे मिले। उसने कहा—मैं भी चली गई थी। मेरा यह इकलौता बेटा है, कुछ पागल-सा है। इसी के प्रताप से यह घर–बार सब है। इसे अन्यत्र अच्छा नहीं लगता। इस लिए मैं यहाँ वापस आ गई हूँ। पर मैं घबराने वाली नहीं। कल सायं मैंने अपने किवाड़ों पर कुछ शब्द होता हुआ सुना और बारीमें से देखा। मैं एक लाठी लेकर बाहर निकली। एक मुसलमान का लड़का नल की

टोंटी निकाल रहा था। इसके घुटनों पर मैंने तो धड़ा—धड़ दो—तीन लाठियाँ जमा दीं और बाद में हा-पुकार मचा दी। सिपाही आ गये और लड़के को पकड़ कर ले गये।"

महाराज सुनाते हैं—"एक दिन मैं अमृतलाल की पोल (गली) में था। इसी समय पुकार मची कि उपद्रवियों का टोला आ रहा है। सर्वत्र आतंक छा गया। कुछ नव—युवक सामना करने के लिए बाहर भी निकल आये। पर सब नंगे सिर और खाली हाथ थे। मैंने एक युवकसे कहा—तू उघाड़े सिर आया है। यदि सिर पर प्रहार हुआ तो क्या करेगा? जा, सिर पर धोती—वोती तो बाँध आ। इस पाजामे के जमाने में कोई धोती तो उसके हाथ में नहीं आई। पर अपनी भाभी की साड़ी ही सिर पर लपेट आया। बहुत लोग इकट्ठे हो गये थे। पर किसी को नहीं सूझ रहा था—सामना किस प्रकार किया जाय? मैंने कहा कि तुम इस प्रकार टोले में अव्यवस्थित रूप से खड़े हो कर सामना कैसे कर सकोगे? सामना करना हो तो इधर आओ। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। इस महल्ले में आने के लिए एक साँकरी गली में होकर आना पड़ता था। इस गली की एक ओर किसी का मकान दुबारा चिनने के लिए उधेड़ा हुआ था। मैंने कहा—तुममें से दो-तीन जन इस मकानके कोठे पर चढ़ जाओ। एक जन ईंटें उखाड़—उखाड़ कर देता जाय और दूसरा उस मोरी में एक—एक करके फेंकता जाय, फिर मोरी में घुसने के लिए किसी का साहस नहीं होगा। यदि कोई आवेगा तो सूखा नहीं जायगा।

ऊपर बैठे हुओं को भी कुछ भय नहीं रहेगा। सब को यह युक्ति पसंद आई। पर बादमें विदित हुआ कि वह झूठी किंवदन्ती थी। पुलिसकी टुकड़ी जा रही थी, उसे ही लोगोंने उपद्रवी टोला मानकर पुकार मचा दी थी। पर मेरा बताया यह मार्ग अहिंसक सैनिक के लिए उचित नहीं था—ऐसा गांधीजीका अभिप्राय मुझे स्व० महादेवभाईने बताया था। ऐसे कटा-कटीके प्रसंग पर निस्सहाय लोगों के लिए ऐसा मार्ग बताने के लिए भी मैं ललचा जाता हूँ। यह मेरा स्वभाव है, मुझसे निष्क्रिय बैठा हो नहीं जाता।

इस प्रसंग के वर्णन से महाराज विपन्नों को सहायता किये बिना रह ही नहीं सकते—ऐसे इनके स्वभाव का और साथ-साथ अपनी त्रुटि स्पष्ट स्वीकारने की शक्ति का प्रदर्शन होता है।

कई-एक स्थानों पर लोग मुसलमानों की चापलूसी करके जी रहे थे। एक मुसलमान महल्ले में के एक हिन्दू के घर में महाराज गये। उसके आंगन में मंजे पर दो-तीन मुसलमान पठान बैठे थे। वह घरवाला महाराज को देखकर कहने लगा कि "हमें तो इन खान साहबों के प्रताप से कुछ भय नहीं और हमें दूसरी कुछ आवश्यकता भी नहीं।" जब महाराज घर के दूसरे कमरे में गये तो वह मुसलमान भी महाराज के पीछे-पीछे गया। घरके लोग अन्दर तीसरे कमरे में थे। महाराज सीधे वहीं पहुँच गये और गृहपति के साथ बातें करने लगे। महाराज की बातें सुनने के लिए वह मुसलमान भी ठेठ तीसरे

कमरे में जा धमका । उसे देखकर गृहपति के मुख पर चिंता की रेखा दिखाई दी और वह महाराज की आव-भगत भी नहीं कर सका । उसके मन में डर था कि यह धौली टोपीवाला आया है, इससे मुसलमानों को मुझपर आशंका हो जायगी और मुझे तंग करेंगे । पर उस मुसलमान के समीप आने से पहले ही गृहपति उठकर सामने गया और कहने लगा :—'पधारिए, पधारिए, खान साहब' । महाराज से वह फिर से कहने लगा कि 'हमें तो इन खान साहब ने ही बचाया है, हमें दूसरी सहायता की कुछ आवश्यकता नहीं ।" इस प्रकार का डर और चापलूसी देखकर महाराज को बहुत दुःख हुआ । पर उस समय का वातावरण ही भय से इतना भरा था कि निर्बल मनुष्यों के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं था ।

हुल्लड़ के समय एक मनुष्य के घर में घुसने के लिए उपद्रवी टोले ने किवाड़ तोड़ने की बहुत-सी युक्तियां लड़ाईं; पर किवाड़ नहीं टूटे । फिर समीप के बिजली के खम्भे पर चढ़कर उस मकान के कोठे पर जाने के लिए एक मुसलमान ने बहुत हाथ-पाओं मारे; पर वह इसमें सफल नहीं हो सका । इसलिए वह नीचे उतर आया और टोला आगे चला । किसी प्रकार भी मकान में न घुस सके । दो-चार मुसलमानों ने वह घर जलाने का विचार किया । पर आस-पास के दूसरे घर मुसलमानों के थे । उन्होंने कहा कि इसके साथ तो हमारे घर भी जल जायँगे—ऐसा समझाकर टोले को आगे निकाल दिया ।

इस समय उस हिन्दू-मकान में पति, पत्नी और उनका छोटा बच्चा तीन जन थे। नीचे का दृश्य देखकर उनके मन पर क्या बीत रही होगी, यह तो आप सहज ही कल्पना कर सकते हैं। वह सारा दृश्य हृदय-द्रावक था। टोले के निकल जाने के बाद तुरन्त ही वह कुटुम्ब घर छोड़कर दूसरे महल्ले में अपने सगे-सम्बन्धियों के यहां चला गया।

एक रात "अल्ला हो अकबर" का ऊँचा नारा लगा। वह सुनकर लोग बहुत घबरा गये थे।

एक दिन भद्र+ के पास में से महाराज चले जा रहे थे। इतने में एक सद्‌गृहस्थ वकील वहाँ से निकला। उसने पूछा "आपको कहाँ जाना है?" महाराज बोले—"बाजार में" वह भी महाराज के साथ-साथ जल्दी-जल्दी चुपचाप चलने लगा। उसके मुख पर भय की छाया थी। सायंकाल का समय था। थोड़ी दूर निकल जाने के बाद वकील महोदय ने कहा—'बच गये'।

महाराज—कैसे?

वकील साहब—आपने सुना नहीं? उस होटल के पास बोल रहे थे कि 'देखो, ये आये, जाओ, दौड़ो, मारो-मारो' पर उनके आने से पहले तो हम आगे निकल आये, इसलिए बच गये।

इन दिनों भद्र में से निकलने का कोई साहस नहीं कर सकता था। महाराज तो निर्भीक बनकर साहस-पूर्वक जहां

+ नगर के एक बड़े महल्ले का नाम।

आवश्यकता होती वहां चले जाते । पर भगवान् की कृपासे इन पर कुछ आँच नहीं आई । ये मुसलमान महल्लों में जाते तो वहांके मुसलमान भी इनके साथ आत्मीयता से बातें करते ।

महाराज सुनाते हैं कि इस हुल्लड़ में मैंने देखा, हिन्दु-मुसलमान—दंगा सब मुसलानों और सब हिन्दुओं को पसन्द नहीं था, ऐसे समय पर त्रास ढानेवाले थोड़े गुंड़े ही होते हैं। दूसरी बात यह भी दिखाई दी कि ऐसे अवसर पर निर्बल ही मारे जाते हैं । लोगोमें आत्म—रक्षा करने की शक्ति और साहस आना ही चाहिए । तभी जनता में व्यर्थ घबराहट फैलने से रुके और निराधारों की रक्षा करने वाले भी निकल आवें ।

ऐसा भी देखने को मिला कि लोग भूखे तो बैठे रहते; पर डरके मारे अनाज खरीदने के लिए बाहर निकलने का साहस नहीं करते थे । बादमें कांग्रेस की ओरसे सस्ते अन्नकी दूकानें खोली गईं तथा शांति-सेना के सैनिकोंने घूम-घूमकर लोगोंमें अच्छा साहस फैलाया । कई-एक मुहल्लोंके लोगोंने उप-द्रवियों से बचनेके लिए मुहल्लोके मुख्य द्वारों पर किवाड़ जड़ दिये थे । स्वयंसेवकों की टुकड़ियां भी तैयार की थीं । इस उपद्रव के समय सरदार वल्लभभाई तो जेल में थे । पर स्व० महादेवभाई वर्धा से आकर अहमदाबाद रहे और उन्होंने लोगों में साहस बढ़े इसलिए गली-गली घूमकर एवं दूसरे प्रयत्नों से वातावरण बहुत सुधार दिया था ।

इस उपद्रव से अहमदाबाद के धन-जन की बहुत हानि

हुई; पर साथ-साथ एक लाभ भी हुआ। वह यह कि ऐसा अवसर आने पर घबराने से कुछ नहीं बनता; अपने पुरुषार्थसे ही रक्षा हो सकती है—जीवित रह सकते हैं। यह पाठ जनता को मिला। इस कारण ही उपद्रव के बाद व्यायाम-प्रवृत्ति और चौकीदलों की व्यवस्था स्थान-स्थान पर चालू हो गई।

ऐसे स्वयंसेवक दलों में कई-एक दोष भी थे। सेव-पापड़ खाना, चाय पीनी, सिगरटें फूंकनी और बैटरियों का प्रकाश फेंकना—यह तो चौकी-स्वयंसेवकों के लिए सामान्य बात बन गई थी। कई-एक मुहल्लों में तो सौ-सौ दो-दो सौ तक इस पर मासिक व्यय हो जाता था। लोग आगत विपत्ति में से बचने के लिए ऐसे-ऐसे खर्च उठा रहे थे। कई-एक दुराचारियों और बर्बरों को अपनी दुराचारता या बर्बरता चलाने के लिए भी ऐसे प्रसंगों पर अवकाश मिलता था।

इस उपद्रव का आरम्भ इस प्रकार हुआ कि १८ वीं तारीख को एक प्रबल किंवदन्ती फैलाई—पंजाब की ओर से सिक्खों की टुकड़ियां आनेवाली हैं और जलूस निकलने वाला है। 'हिन्दू-मुस्लिम दंगा होगा' इसकी भनक लोगों को आ रही थी। इसलिए सवेरे से ही दूकानें बन्द होने लग पड़ी थीं। दुपहरे की नमाज बाद तो उपद्रव आरम्भ हो गया। गाँधी-रोड जैसे सार्वजनिक मार्ग पर की भी दुकानें जलने लगीं। लोगों पर पीछे से आकर छिपकर छुरे से आक्रमण होने लगे।

मानों पहले से ही उपद्रव की व्यवस्था कर रखी हो—इस प्रकार चढ़ाई की। जुम्मामस्जिद के पास श्रीइन्दुमती सेठ ने अचानक इस उपद्रवी टोले को आगे बढ़ते देखा। मोटर खड़ी करके टोले को समझाने का प्रयास किया। पर उपद्रवी तो उन्हीं पर टूट पड़े। कई-एक पठानों ने उन्हें इस आक्रमण से बचा लिया और इतने में पुलिस की सहायता भी आ पहुँची।

उपद्रव की हवा तो दो-तीन दिन पहले से ही फैल चुकी थी। पर लोगोंने, कार्यकर्ताओं ने या पुलिस ने इस विषय में जैसा प्रबन्ध करना चाहिए था वैसा नहीं किया। पुलिसने उपद्रव छिड़ जाने के बाद भी आवश्यक सावधानता या तटस्थता नहीं रखी। इसलिए उपद्रव अधिक उग्र बन गया।

ऐसे उपद्रवों की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। वस्तुतः इनके मूलमें आगेवानों के उत्तेजनाभरे भाषण तथा सत्ता के लिए मारामारी ही होती है।

सामान्य जनता जैसे गाँवों में मिल-जुलकर रहती है; वैसे नगरों में भी रहती है। इसे तो ऐसे उपद्रवों से बहुत त्रास होता है। राजकीय सत्ता के लिए तड़फड़ाते पक्ष और लोग समाज में के कुछ गुंडा तत्त्वों को उभार देते हैं। भाड़े पर रखते हैं। बाद में वे तत्त्व उनके अधिकारसे=वशसे बाहर चले जाते हैं। राजकारण की शुद्धि ही ऐसे उपद्रव मिटाने का अमोघ उपाय है। इन उपद्रवों को रोकने के लिए प्रजा-शिक्षण रामबाण साधन है! क्योंकि जनता में सच्चा शिक्षण

न देने से झूठी-सच्ची बातें बात-की-बात में फैल जाती हैं और हांसी की फांसी बन जाती है ।

६६—सन् १९४२ और उसके बाद

सन् १९४२ में अपनी स्वतन्त्रता की अन्तिम लड़ाई छिड़ी । इस समय महाराज तो पहली झड़प में ही जेल भेज दिये गये ।

सन् ३०—३२ की और इसके पहले की जेलें एवं जेलों में आनेवाले एक प्रकार के थे । सन् ४२ की जेलें एवं जेलों में आनेवाले दूसरे प्रकार के थे ।

महाराज कहते थे—"यह तो ज्वार आया है; इसमें अच्छे-अच्छे भी बह जाएँगे । स्थान-स्थान पर खाइयां-गड्ढे पड़ जाएँगे । परन्तु देश को ऐसे ज्वारों की भी आवश्यकता पड़ती है ।

सन् ४२ की लड़त विद्यार्थियों की लड़त बन गई थी । इन्हें बाहर रहे हुओं की ओर से जैसा मार्ग-दर्शन मिला; वैसे ही इन्होंने कर दिखाया । 'करेंगे या मरेंगे' बापूजी के इस सन्देश पर नव-युवक अपनी अपनी सूझ के अनुसार चल रहे थे । ऐसा करते करते अपनी बलि दे डालने की उद्यतता भी दिखाते थे । बाहर चलती हुई तोड़-फोड़ अथवा छिपी प्रवृत्तियां महाराज को अच्छी नहीं लगती थीं । ये समझते थे कि मार्ग-दर्शक सब नेताओं

को सरकार ने जेल में बन्द कर दिया। जनता गांधीजी के सन्देश को पूरा-पूरा पचा नहीं सकी। इसका ऐसा ही परिणाम आना था। इसलिए महाराज बाहर के इन बनावों की चिन्ता नहीं करते थे।

जेल में जो आते उनके साथ ये मित्रता गांठते। युवक भी जानते थे कि हमारी बम्ब आदि की छिपी प्रवृत्तियां महाराज को पसन्द नहीं। तो भी महाराज का सबके साथ ऐसा वर्ताव और प्रेमभाव था, जिससे युवक महाराज के प्रति अपने मन में गहरे-से-गहरा आदर-भाव रखते थे। महाराज की कर्मयोग एवं ज्ञान-योग से भरी हुई कारावास की दिनचर्या तथा सादी तपोमय रहन-सहन इन सब पर अपना काम किये जाता थी। कोई रुग्ण हो जाय तो महाराज उसकी खबर पूछें। स्वयं जेल के अन्न के अतिरिक्त बाहर से एक कनभर भी नहीं लेते थे। किन्तु रोगियों को दूध, फल, दवा आदि छूट से मिलें—इसकी ये चिन्ता रखते थे।

सारा दिन कातना, बांचना और वाणीयज्ञ से साथ रहने वालों की सेवा करना—यह इनका कारावासीय कर्तव्य बन गया था। इनके आस-पास सौ-पचास युवकों का टोला बैठा ही रहता था। प्रत्येक के हाथ में चरखा होता था और कान महाराज के मुख में से निकलती हुई वाग्धारा के साथ एकरस होते थे। ऐसे यज्ञ निरन्तर चार-चार, पांच-पांच घंटों तक भी चलते थे।

जेल में कुछ संघर्ष हुआ या किसी ने अनशन किया कि झट महाराज इसका समाधान कराने के लिए कटिबद्ध ही रहते थे। जेल के अधिकारी एवं जेल के साथी सब इनके व्यवहार से प्रसन्न थे। ४२ की जेल में अनेक युवक महाराज के संपर्क में आये। सब अपनी-अपनी रीति से इनके साथ थोड़ा-बहुत परिचय साधकर बाहर आये। इनमें से बहुत-से तो आज भी महाराज को याद करते हैं। इनके सहवास का अवसर ढूंढ़ते रहते हैं। जेल में आये प्राध्यापकों को भी महाराज कैसे हैं? इसका परिचय जेल में ही हुआ। इस प्रकार इनका संबंध अपने हाईस्कूलों तथा कालेजों के साथ जुड़ा।

४२ की लड़ाई के समय महाराज ने कोई भी न जान सके इस प्रकार गुजरात के युवकों को जेल में चारित्र्यधन का गुप्त दान किया। जो आत्मसात् कर सकते थे उन्होंने वह आत्मसात् किया, जिसकी सुगंध आज भी स्थान-स्थान पर उठ रही है।

४२ की लड़ाई के बाद जब जेल में से सब बाहर आये तो सारा ढांचा ही बदल चुका था। युद्ध के बाद मंहगाई बढ़ गई, अंकुशों के कारण तंगी आ गई, अनीति, काला-बाजार एवं घूंस-रिश्वत सर्वत्र फैल गई। मानो पुराना समय और उसकी मिठास ही चली गई। यह देखकर महाराज को बहुत दुःख हुआ। पर ये दुःख देखकर बैठ नहीं सकते। इसलिए स्थान-स्थान पर ये घूमने लगे और देखा कि इन

सब पापों का मूल अंकुशों की अतिशयता ही है। जब तक ये अंकुश दूर नहीं होते तब तक यह अनीति भी नहीं जा सकती। जो अनीति नहीं करना चाहते उन्हें भी अनीति करनी पड़ रही है—ऐसा था यह समय। महाराज अपनी सौम्य भाषा में भी इन अंकुशों का विरोध करते रहे। जनता को नीति का पाठ सिखाते रहे और सरकारी अधिकारियों से उनका दायित्व समझने के लिए कहते रहे।

मुंबई प्रान्त में कांग्रेस–सरकार का राज्य था। १५ अगस्त १९४७ को अपना भारतवर्ष स्वतंत्र हुआ; पर काला बाजार, घूस-उत्कोच, अनीति आदि ज्यों-के-त्यों रहे। प्रधान आते थे। उनके पास बढ़ती हुई अनीति की भयंकरता के विचार तथा वस्तु-स्थिति रखी जाती थी। प्रधान मानते थे कि अंकुश उठने पर भुखमरा आ जायगा। उन्हें मिलने वाले आंकड़े सच्चे नहीं होते। यह बात राशन–अधिकारी उनके मस्तिष्क में उतरने ही नहीं देते थे। जिससे स्थानिक कार्यकर्ताओं की यह बात–'किसानों के अनाज का भाव बढ़ाइए या अंकुश दूर कीजिए' अरण्य-रोदन सी बन जाती थी। महाराज सोचते थे कि यह निरा अन्याय हो रहा है। इसके सामने विद्रोह करना चाहिए। बिहार के किसान गन्ने की खेती करते थे। इनमें से बनी खांड के भाव तो जो युद्ध के आरंभ में बढे थे वही-के-वही रहे। कई–बार महाराज कह उठते थे कि खांड़ की अपेक्षा तो गन्ने की खोई का भाव अधिक मिलता है।

इस स्थिति में और इतनी असह्य मँहगाई में किसान किस प्रकार बच सकें ? किसान के लेने की वस्तुओं का भाव तीन-चार एवं पांच गुना बढ़ गया था। केवल इसकी बेचने की बाजरी, धान या गेहूँ का भाव सरकार के बांधे हुए नीचे दर पर ही दिया जाता था। किसान कैसे जीवित रह सकें; यह इनकी समझ में नहीं आ रहा था। प्रधान मानते थे कि यदि भाव बढ़ावेंगे तो सभी चीजों का भाव बढ़ जायगा। इससे यह विषचक्र ऊँचा ही होता-जायगा। महाराज कहते थे कि इसे नीचे उतरने के लिए आपके हाथ में किसान ही आये हैं, और कोई नहीं ? किसान को आप जगत् का तात मानते हैं इसलिए ?

मुनिश्री संतबालजी भी इस अन्याय से तंग आ गये थे। ये दोनों चाहते थे कि जनता की सरकार को किसी कठिनता में न डाला जाय तो अच्छा। किन्तु नीति-धर्म और न्याय की दृष्टि से भी इसमें इन्हें अन्याय दिखाई दे रहा था। महाराज ने तो इस अन्याय के नियम का भंग करके जेल में जाने की भी तैयारी की थी। इतने में बापूजी जागे-"लोग भुखमरे से मरते हों तो भले मरें, पर प्रजा की नीति का रक्षण होना ही चाहिए। यह रक्षण करना हो तो अन्न पर से अंकुश उठने ही चाहिए। मैं आपके अंक- शास्त्र को नहीं समझता, पर मुझे विश्वास है कि भारत के लोग भूखे नहीं मरेंगे।" इस आशय की इनकी गर्जना उठी। इसके उठने के साथ ही सभी अर्थ-शास्त्रियों का बल ढीला पड़

गया ; प्रधान भी विचार में पड़ गये। अंत में सबको इस प्रबल गर्जना के सामने झुकना पड़ा। उनकी बात मान कर सरकार ने अंकुश उठा दिये। इससे जनता मर नहीं गई। उलटे जनता की ओर से आशीर्वाद निकले। देश में से अनीति की मात्रा इतने अंश में तो कम हो गई।

महाराज और संतबालजी भी प्रसन्न हो गये। अंकुश उठते ही इनमें अधिक बल आया। इन्होंने जनता के लिए योग्य भाव बांधने की हिल-चल आरंभ की। इनके बांधे भाव लोगों ने सहर्ष स्वीकार लिये। ये भाव भी ऊंचे हो गये और आज योग्य भाव का स्तर भी जनता ने छोड़ दिया है। पर आज तक अन्न न मिला हो और कोई मर गया हो ऐसा एक भी बनाव अपने यहां नहीं बना।

इस प्रकार महाराज को कई-बार अपने ही लोगों के सामने सत्याग्रह करना पड़ जाता था। ऐसा ही एक प्रसङ्ग अहमदाबाद में भी आ पड़ा था। अहमदाबाद की नगर-समिति नगर का गन्दा पानी निकालने के लिए समीपस्थ गांवों की जमीन खरीद रही थी। एक दिन समीप के ग्यासपुर गांव के लोग अपनी इस प्रकार की पुकार महाराज से कहने आये। महाराज उनके यहां गये। इन्होंने देखा यह तो नगर-विकास के लिए गामड़ों को खाजाने की बात है। गामड़ों के लोग अपनी जमीन दे डालने के बाद क्या धंधा करेंगे? और उनके आस-पास गंदे नालों का दुर्गन्धित पानी भरा रहेगा। फिर ये कैसे

नीरोग रह सकते हैं ? यह विषय अटकना ही चाहिए—ऐसी मांग इन्होंने अहमदाबाद नगर-समिति के प्रमुख के पास की। जो प्रधान केवल नगर-विकास का ही विचार करता हो वह इनकी मांग को कैसे मान्य रखता ? अन्त में यह प्रश्न गृहमन्त्री श्रीमोरारजी देसाई तथा सरदार वल्लभ भाई तक गया। ये दोनों भी मानते थे कि भले ही गांवों के लिए यह शुभ भावना है, पर—हम इतने बड़े-बड़े नगर बसाकर बैठे हैं। इनके स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ गाँवों की ऐसी शल्य-चिकित्सा करनी ही पड़ेगी, दूसरा कोई उपाय नहीं। नये नगर बसाने से पहले सब विचार हो सकते हैं, अब तो दूसरा कोई चारा नहीं। महाराज के गले यह बात नहीं उतरी। सरदार साहब के प्रति महाराज के मन में अतिशय मान है। उनके लिए यह आवश्यकता पड़ने पर अपना मस्तक भी दे सकते हैं। पर इस विषय में उनके कथन से इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। इन्होंने कहा कि यह तो गामड़ों की बलि देकर नगरों को जीवित रखने की बात है—यह मैं नहीं होने दूँगा। यदि होगी तो सत्याग्रह करूँगा। मुझे जेल में बन्द करके जो करना हो सो कर डालिए। महाराज की इतनी ही मांग थी कि नगर के लिए जमीन लेनी हो तो ले लीजिए, पर वहां के लोगों को जाने योग्य जमीन तथा उनके रहने के मकान अन्यत्र समीप में नगर-समिति को बँधा देने चाहिए। अंत में इस प्रश्न का भी नगर-समिति के साथ समाधान हो गया। गांवड़े के किसानों की

जमीन लेना बन्द रखा गया । तब कहीं जाकर महाराज को शांति मिली ।

अन्याय इनसे देखा नहीं जाता । आज जनता में फैली हुई अनीति हो दूर करने के लिए ये अपने पाओं घिसा डालते हैं और समझ फैलाने के लिए बातें कर-कर अपनी जीभ की कूची बना डालते हैं ।

हरिजन हिन्दू होने पर भी हरि के दर्शन करने के लिए मन्दिर में नहीं जा सकते---इसमें महाराज को निरा अन्याय दिखाई दे रहा था । जनता की सरकार सत्ता पर आई और उसने हरिजनों के लिए मन्दिर-प्रवेश का मार्ग खुला कर दिया । विधान के अनुसार हरिजनों को मन्दिर में जाने का अधिकार मिल गया । पर इनमें मन्दिर में जाने का साहस कहां से आवे ? दूसरी ओर से कई-एक अंबेडकरवादी मित्र बने हुए विधान का बल प्राप्त करके मन्दिर-प्रवेश करना चाहते थे । जो कुछ संघर्ष हो उसके लिए तयार थे ।

महाराजने देखा कि शांति--पूर्वक तथा ज्ञान--पूर्वक मन्दिर में हरिजन प्रविष्ट हों तभी संघर्ष रुक सकता है । यह संघर्ष रोकने के लिए मुझे इसी घड़ी कुछ प्रयास करना चाहिए ।

डाकोर में रणछोड़जी के दर्शन-इच्छुक कुछ लोगों से महाराजने कहा कि "आप दर्शन करने की तिथि ठहरावें तो मैं भी आपके साथ आऊँगा, पर कुछ हो-हा या दिखाव नहीं करना । लोगों की भावना को उत्तेजित करने का अब कुछ कारण नहीं रहा । मन्दिर

के न्यास-सदस्यों की ओर से तो उत्तर मिल ही गया है कि हरिजन रणछोड़जी के मन्दिर में दर्शनों के लिए चले जायँ हमें इस पर कुछ विप्रतिपत्ति नहीं। लोगों की भावना उत्तेजित न हो उठे ——इस प्रकार शांति-पूर्वक कार्य सिद्ध करना चाहिए।" महाराज प्रकाशित करना चाहें या न चाहें, पर समाचार-पत्रोंवाले कब चूकते हैं? उन्होंने मोटे-मोटे अक्षरों में प्रकाशित कर ही दिया कि "रविशंकर महाराज के नेतृत्व में डाकौर के प्रसिद्ध रणछोड़जी के मन्दिर में हरिजन प्रवेश करेंगे।"

इस प्रकाशन से कई-एक सनातनी भाई उत्तेजित हो उठे। नड़ियाद और अहमदाबाद के शास्त्रियों ने पत्रों,पत्रिकाओं एवं प्रचार से वातावरण तंग कर डाला। निश्चित किये गये समय पर महाराज हरिजनों के साथ मन्दिर में दर्शन करने आये। इस समय सैंकड़ों की संख्या में सनातनी भाई अशिष्ट भाषा और अशिष्ट वर्ताव का प्रदर्शन करते—करते कतार बनाकर सामने खड़े हो गये। कई—एक ने आगे बढ़कर धक्का-मुक्की भी की। महाराज दो-ढाई घंटे किसी प्रकार का हल्ला किये विना, मुस्कराते हुए वहीं खड़े रहे। पुलिस-अधिकारी बल—प्रयोग करके मार्ग खुल्ला करने के लिए तैयार ही थे। पर महाराज ने उन्हें मना किया।

अंत में दुपहरे दो बजे बहुत माँज-गढ़ करने के बाद दर्शन करने जाना इन्होंने निर्णीत किया। साथ-साथ यह भी घोषणा कर दी कि हरिजनों के साथ दर्शन करने मिलेंगे तभी मैं वापस होऊँगा।

जब तक दर्शन नहीं होंगे तब तक उपवास करके डाकौर में ही रहूँगा तथा गाँव-लोग जब स्वयं दर्शन करने के लिए बुलाने आवेंगे तभी दर्शन करने जाऊँगा।

इस घोषणा का गाँव के लोगों पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा। सवेरे के अविवेकी दिखावों से सज्जन लोगों की भावना पर ठेस पहुँची थी। उन्होंने दुपहरे, सायं और रात तक गाँव के पुजारियों तथा दूसरे आगेवानों के साथ परामर्श किया। अंत में रात के बारह बजे गाँव के आठ दस आगेवानों ने उतारे पर आकर महाराज को जगाया और कहा कि सवेरे के अविवेक के लिए हम आपसे क्षमा मांगते हैं। गाँव के लोग चाहते हैं कि आप सवेरे हरिजनों के साथ दर्शन करने के लिए मन्दिर में पधारें। महाराज ने कहा—शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। पर यदि आप सब सहमत हैं तो वहाँ दर्शन करने आने में जैसा मुझे आनंद होगा वैसा किसी को न होगा।

सवेरे गाँव के आगेवान महाराज को बुलाने के लिए आये और महाराज दर्शन करने गये। पर दरवाजे पर एक भाई और कुछ बहनें आड़ी सो गईं और कहने लगीं कि हम पर पाओं रखकर आगे जाइए। महाराज ने कहा-तुम्हें मार्ग पर सोने की आवश्यकता नहीं। जब तक तुम जाने नहीं दोगे तब तक मैं बलपूर्वक अन्दर जाने वाला नहीं। पुलिस ऐसे इक्के-दुक्के विरोध के सामने बल-प्रयोग करने के लिए बिलकुल तैयार खड़ी थी। महाराज ने हाथ जोड़कर उसे ऐसा करने से रोका। बाद में गाँव के आगेवानों के

समझाने से लेटी हुई भाई–बहनें उठ खड़ी हुईं। महाराज तथा हरिजन पहली बार रणछोड़जी के दर्शन करने के लिए मोहन (गुंबज) में जाकर खड़े हो गये। समय होने पर मन्दिर के द्वार खुले और महाराज आदि ने राजभोग के दर्शन पाये। महाराज कहते हैं कि मेरे हृदय के अंतस्तर में से आज प्रार्थना निकली-हे प्रभु ! तू इसी प्रकार हमारे अज्ञान के परदे दूर करते रहना।

इस प्रकार वर्षों से चले आते एक अन्याय को बहुत ही शांतिपूर्वक दूर हटा दिया। उसी दिन से डाकोर में रणछोड़जी के दर्शन हरिजनों के लिए सुलभ हो गये हैं।

अंबेड़करवादी मित्रों की एक टोली बल–प्रयोग करके भी अपना वैधानिक अधिकार प्रतिष्ठापित करना चाहती थी। महाराज के समझाने से ही इस प्रकार का संघर्ष होते–होते रुका।

गोधरे में हिन्दु–मुस्लिम दंगा छिड़ जाने की खबर मिली। इसलिए महाराज वहाँ पहुँचे। वहाँ के करुण और दुःखद दृश्य देखकर इनकी आँखों में आँसू आ गये। आरंभ में वहाँ का वातावरण देखने के बाद इन्हें बहुत आघात पहुँचा। पर इस समय उनकी सहायता करने के लिए वातावरण बहुत ही प्रतिकूल दिखाई दिया। इससे मन मसोस कर महाराजने महेमदाबाद तालुके गामड़ों में जाकर अपने अधूरे पड़े मद्यनिषेध के प्रचार को फिर हाथ में लिया। यह काम पूरा होते ही फिर ये गोधरा, शेहरा और दाहोद गये। वहाँ की दुःखित भाई–बहनों से मिले, आश्वासन दिया और पेटलाद के सेठों से कपड़े एवं दूसरी अच्छी अच्छी रकमें

प्राप्त करके सहायता पहुँचाई। इस प्रकार संकट में सहायता करनी—यह तो इनका मुद्रालेख—सा है; इनके सारे जीवन में ऐसा ही बनता आया है।

महाराज की ऐसी मान्यता है कि अब हमारी सरकार हो गई है। स्वराज्य आ गया है। जैसे गांधीजी कहते थे वैसे हमने नहीं किया। इससे हमारा स्वराज्य लूला आया है। हमें अधिकार मिले हैं। पर अपने दायित्व का हमें भान नहीं हुआ। इसलिए हम आज के दुःख उठा रहे हैं। सरकार ने ग्राम—विकास—मंडल चालू किया है—इसमें भी महाराज आज संमिलित हैं और सरकार ने मद्यनिषेध—मंडल निकाला है—इसमें भी ये हैं। क्योंकि ये तो इनके प्रिय विषय हैं। जनता मद्य के व्यसन में से छूट जाय तो बहुत—से दोषों से बच सकती है। इसी से गाँव—गाँव घूम—घूम कर मद्य—पान छुड़ाना इनका अद्यतन प्रयत्न है।

जातीय प्रश्न में से जैसे निराश्रितों की समस्या खड़ी हो गई है—जो अपनी सरकार तथा जनता को चक्कर में डाले हुए है। वैसे ही पाटीदार और बारैया, किसान और जमीनदार जैसे प्रश्न भी उठने लगे हैं। इन सब के मूल में वर्षों से चला आता अन्याय एवं अज्ञान ही है। पर आज इन सब फोड़ों के मुख फूटने लगे हैं। इनमें से दुर्गन्ध निकलने और चारों ओर छूत फैलने से पहले ही धीरे से इन्हें

साफ कर देना चाहिए। बाद में इसमें पीप न पड़ जाय ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। आज मद्य–निषेध के साथ-साथ महाराज यह काम भी करते हैं। देशी राज्यों के मिलाने के समय ताल्लुकेदारों और किसानों का प्रश्न भी उठा था। वहाँ भी महाराज दौड़ लगा आते थे।

थोड़े दिन पहले सूई गाँव की ओर से पाकिस्तानी आक्रमण की संभावना है–ऐसी बात आई तो झट महाराज सूई–गांव की सीमा में फिर आये और वहां की परिस्थिति का अवलोकन कर आये। इस समय इन्होंने वहां एक दूसरा दृश्य भी देखा उत्तर गुजरात की ओर का बनासकांठा रेतीला प्रदेश है। वहां बहुत ही निर्धनता, अज्ञान और अन्याय फैला हुआ है। वहां के ताल्लुकेदार सामान्य जनता को तंग करते हैं। जनता में किसी प्रकार का ज्ञान, संस्कार या संगठन नहीं।

इनके मनमें ऐसी इच्छा हुई कि अब कुछ वर्ष इस बनासकांठे में चला जाऊँ। यदि कुछ वर्ष वहां रहकर काम कर सकूं तो अवश्य वहां के लोगों को सहायता पहुँचाई जा सकती है।

१९४२ की जेल में इन्हें भान हुआ कि शरीर को पर्याप्त पोषण दिये बिना, शक्ति से बाहर काम लेने से अंत में शरीर निकम्मा हो जाता है। इनके हाथ पर पक्षाघात का–सा प्रभाव पड़ा। बहुत सावधानी और दवा के बाद यह सुधर

गया । इसके बाद ऐसा निश्चय किया गया कि अब इन्हें किसी स्थान पर स्थिर रहना चाहिए और घूमने की मात्रा कम कर देनी चाहिए । पिछले तीन-एक वर्षों से मित्रों के अति आग्रह से ये बोचासण के वल्लभ-विद्यालय में रहते हैं । इससे विद्यालय को अच्छा लाभ मिल रहा है । स्वभावानुसार ज्यों-ज्यों काम निकलते गये त्यों-त्यों इनका घूमना बढ़ता ही गया । आज इनका स्थायी पता-बोचासण विद्यालय (गुजरात) है । पर महीने में भाग्य से ही चार-पाँच दिन वहाँ टिकते होंगे । अपनी सरकार आई; जैसे-जैसे काम बढ़ते जाते हैं; वैसे वैसे इनकी दौड़ा-दौड़ी भी बढ़ती जाती है । अब गरमी के दिनों में जहां निरंतर आंधी उड़ती है और पीने के पानी की भी तंगी है, ऐसे निर्जल बनासकांठे के-रेलवे गाड़ी से बहुत दूर-निचले प्रदेश में जाने का विचार इनके मनमें उठ रहा है ।

इतनी लंबी उमर में भी ऐसे-ऐसे नये-नये साहस उठाने की और नव-युवकों को भी मात कर देनेवाली कष्ट-सहिष्णुता की वृत्ति पड़ी है । यहां "कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्" वाला जीवनध्येय इनके अन्तस्तर में कितने वेग से काम कर रहा है-इसके हम सबको दर्शन कराती है ।

६७—पाताल कूए

जब महाराज लुणसर में रहते थे एवं इस प्रदेश में भ्रमा करते थे, तभी से इनके मनमें एक बात घर कर चुकी थी कि इस प्रदेश के अनेक दुःखों में से एक महान् दुःख

पानी की कमी का दुःख है । यदि यह दुःख दूर हो जाय तो दूसरी अनेक प्रकार की प्रगति हो सकती है ।

महाराज का घूमना—फिरना तो बहुत रहता ही है, कभी अधिकारियों से मिलते हैं और कभी सेठ-साहूकारों से मिलते रहते हैं । उस समय इनका हृदय ओठों पर आ जाता है । इनमें से कितनों का अन्तर पसीज जाता है । ये सोचने लगते हैं कि ऐसे प्रदेश में महाराज इतना कष्ट उठाकर काम कर रहे हैं तो चलो हम भी यह दुःख दूर करने के लिए कुछ सहायता करें ।

कोई एक—आध कूआ खुदाने की सहायता करता तो महाराज काम आरम्भ कर देते । जितना हो उतना ही अच्छा । पर इनकी अभिलाषा तो इस प्रदेश के पेट में बहती हुई पानी की नदियों को धरती पर बहाने की थी ।

संयोगवश महाराज को सेठ श्रीमफतभाई गगलभाई की ओर से एक-लाख रुपये की सहायता इस काम के लिए मिल गई । इनकी बड़ी मशीन तथा इसके व्यवस्थापक श्रीजयन्तीभाई का भी इन्हें साथ—सहकार मिल गया । इसलिए इन्होंने एक के बाद एक पाताल कूआ खोदना आरम्भ कर दिया ।

जबतक धरती में से उछलता हुआ पानी बाहर न निकले तबतक बोरिंग करते-करते पानी हाथ लगता तो वह महाराज के लिए अकिंचित्कर था । पर ऐसा पाताल कूआ खोदना एक प्रकार का साहस था । कभी-कभी पानी खारा या कडुआ निकलता था ।

कभी-कभी पाइप ही पत्थर में अड़ जाते थे। कभी पानी निकलता तो एक पतली धार के रूप में। ऐसे समय में हजारों रुपयों का पानी हो जाता, समय और शक्ति का व्यय होता तथा लोगों में निराशा छा जाती। पर जैसे महाराज अपने जीवन में अनेक साहस करते आये हैं; वैसे इसमें भी इन्होंने साहस किया।

एक वार तो पाइप नौ सौ फुट गहरा चला गया। पर पानी ने दिखाई नहीं दी। गांव के लोग निराश हो गये। महाराज भी असमंजस में पड़ गये। पर काम तो चालू ही रहा। एका-एक समाचार आया कि पानी का प्रवाह फूट पड़ा है। महाराज दौड़ते हुए बोरिंग के पास आये। इनके आनन्द का पार न रहा। गांव के लोग ढोल-नगाड़े लेकर कुंकुम से पानी का स्वागत करने आये। इतने में कारीगर की असावधानता से पानी का पाइप इसका लोहे की पकड़ में से छूट गया। पानी जोर से आ ही रहा था; इसलिए वह पाइप गहरे उतरने लगा।

सब घबरा उठे कि क्या हाथ में आया, पानी फिर हाथसे निकल जायगा?

झटपट कुदाली से खोदने वालों की टोली खोदने के लिए टूट पड़ी। लगभग पौने घण्टे में पाइप को पकड़कर रोक लिया। एक लम्बी-मोटी खाली खोदकर बहते हुए पानी के प्रवाह को तालाब की ओर मोड़ दिया।

कभी कभी पानी खारा निकलता तो आस-पास के कूए और तालाब का पानी भी बिगड़ जाता।

एक दिन महाराज ने कहा था कि एक जल निष्णात जर्मनी मुझसे कहता था :—"तुम पानी का दुर्व्यय कर रहे हो। यदि हमारे देश में कोई इस प्रकार पानी का प्रवाह बहता हुआ छोड़दे तो उस पर अभियोग चले।" महाराज कहते हैं कि उसके इस कथन में झूठ ही क्या है ? यदि हम लोग धरती के पेट में से पानी बाहर निकाल कर व्यर्थ गुमावें तो धरती माता के प्रति अपराध किया कहा जाएगा।

महाराज ने राधनपुर, हारीज, समी तथा सांतलपुर विभाग में सब मिलाकर ४८ कूए खुदाये। ५१ बोरिंग कराये। इन पर ढाई लाख रुपये खर्च हुए। जिसमें डेढ लाख रुपयों की सहायता इन्होंने सरकार की ओर से प्राप्त की थी।

जहां बोरिंग में से उछलता जल-प्रवाह निकला; वहां इन्होंने नल लगवाये एवं भाई-बहनों के नहाने-धोने के लिए अलग-अलग सुविधा कराई। अनेक लोगों के आशीर्वाद प्राप्त किये। आज भी वहां के लोग इन्हें 'बोरिंग वाला महाराज, के नाम से पहचानते हैं। इनकी इच्छा तो इस प्रदेश को पानी से हरा-भरा कर डालने की थी, पर सामने विनोबाजी का भूदान-यज्ञ आ गया। इन्होंने देखा कि धरती के पेट का पानी तो सरकार भी बहाएगी। किन्तु मानव के सूखे हृदय की अमृत-भावना बहाने का यह काम आया है, इस समय सामान्य पानी के लोभ में नहीं फँसना चाहिए।

६८—चीन यात्रा

सन् १९४२ आन्दोलन के बाद तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद महाराज ने अपना स्थायी अड्डा 'बोचासण' गांव बनाया। पर इनका कार्यक्षेत्र उत्तर—गुजरात का राधनपुर, समी, सांतलपुर आदि निर्जल प्रदेश बन चुका था।

इस कार्य से लोगों को अत्यन्त सहायता मिलती थी और महाराज पर वे लोग आशीर्वाद बरसाते थे। गांधीजी के चले जाने के बाद गांधीजी जिस समाज की रचना करना चाहते थे, उस दिशा में आगे न बढ़ती हुई और कुछ-कुछ उससे उलटी दिशा में अपने राष्ट्र की नाव चल रही है—ऐसा इनके मन में विचार उठा करता था। स्वराज्य मिलने के बाद जिस प्रकार के गांव बनाने की कल्पना थी, वह कल्पना इन्हें स्वप्न—सा प्रतीत होने लगी। ये अपने स्वभाव के कारण सहायता के अनेक कार्य करते जाते थे, पर इन्हें ऐसा लगता था कि अब बहुत जीने जैसा कुछ नहीं रहा।

चीन में से च्यांगकाई शेक की सरकार चली गई और उसके स्थान पर माओत्से तुंग की सरकार आ गई। चीन जैसे अफी-मची और व्यसनी गिने जाने वाले देश में थोड़े ही समय में महान् परिवर्तन हो गया है। ऐसी-ऐसी बातें तो समाचार—पत्रों तथा लोगों के मुखों से सुनने को मिलती थीं, पर इसमें सचाई कितनी है इसका कुछ पता नहीं चलता था। मित्रों के मुखसे

चीनकी प्रशंसा सुनकर यह कहते कि "यह सब अपनी आंखों देखना चाहिए ।"

भाई यशवन्त शुक्ल ने अखिल-हिन्द-शान्ति-समिति की ओर से इनके चीन जाने की व्यवस्था की । यह इन्होंने सरलता से स्वीकार लिया । बहुत से मित्रों को इनका यह स्वीकारना अच्छा नहीं लगा । पर ये कहते थे कि यदि मुझे अपने किसी सिद्धांत के साथ तोड़-फोड़ न करनी पड़ती हो तो मुझे संसारके किसी भी कोने में जाने में बाधा नहीं । चीन में साम्यवाद का वर्चस्व है, यह ये जानते थे, पर अपने देश को जिससे लाभ हो ऐसा कुछ मिले तो ये वहां से ढूँढ लाना चाहते थे । इन्होंने वहां जाने से पहले यह भी निश्चित किया था कि वहाँ जाकर छिद्रान्वेपण नहीं करना और अपने लाभ का जो कुछ हो वह खोज लेना है ।

वहां जाकर शान्ति-परिषद में आये हुए अनेकों के साथ इन्होंने मैत्री बांधी । वहां के भाई—बहनों के दिखाये प्रेम और भावनाके प्रति इन्होंने समताभरा भाव प्रदर्शित किया । उन भाई-बहनों ने सच्चे दिल से इन्हें अपनी संस्थाएँ, गाँव और दूसरी अनेक प्रवृत्तियां दिखाईं । समभाव से देखने के कारण इन्होंने उन कार्यों का सम्मान किया, आनन्द भी व्यक्त किया और यहां शंका उठी वहाँ निर्दोष भाव से प्रश्न भी किये ।

इनके मन पर यह एक गहरी छाप तो पड़ी कि वहाँ की, जनता चाहे अभी कितनी ही दुखी हो, वहाँ का प्रदेश चाहे अभी

कितना ही पिछड़ा हुआ हो; पर वहाँ की जनता में एक प्रकार का आत्मविश्वास पैदा हो गया है कि अब हमारे दुःखों के दूर होने का समय आ गया है और इसके लिए भागीरथ प्रयत्न चल रहा है। वहाँ के कई—एक फेर-फार तो बहुत झटिति हुए हैं। पर इसके लिए अमुक लोगों को कठोरता-पूर्वक दबा भी दिया गया है।

वहाँ के विद्यार्थी—विद्यार्थिनियों और युवक-युवतियों को देखकर इनका हृदय प्रेम-विभोर हो जाता था। उन्होंने अपने देश को बैठा करने के लिए जो पुरुषार्थ किया था; उसे देखकर इनके हृदय में से धन्यवाद के उद्गार निकलते थे।

पर यह सब देखकर भारत लौटते समय ये गहरे विचार में डूब गये थे। इन्होंने वहां क्या क्या देखा, इसके विषय में "मेरी चीनयात्रा" नामक पुस्तक में इन्होंने आनुपूर्वी वर्णन किया है। इसी पुस्तक में ये लिखते हैं :—

"चीन छोड़कर मैं स्टीमर में सिंगापुर, पीनांग गया। स्टीमर में मेरे पास कुछ काम नहीं था; इसलिए मैं समुद्र सामने जा बैठता और चीन देश के स्मरण आते, उनमें से अपने देश में अपनी परिस्थिति के अनुरूप क्या किया जा सकता है—यही विचार करता। स्टीमर की सारी यात्रा में मुझे यही विचार आये।

अपने देश में लांच-रिश्वत खूब है। भोग भोगने की वृत्ति बढ़ती जा रही है। इसलिए सदा असन्तोष दिखाई देता

है। मन और शरीर आलसी बन गये हैं। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? चीन के लोग परिश्रमी हैं। ढाई-तीन मन भार कांवर में रखकर चले जाते हैं। कोई भीख नहीं मांगता। गरीब होने पर भी परिश्रम करके जो कुछ मिल जाता है; उसी में सन्तुष्ट रहते हैं। अपने देश की अपेक्षा वहां अधिक जन-संख्या है, तो भी मन में उकताहट नहीं। सन्तोष और आनन्द से जीते हैं। सारे देशमें सब लोग (स्त्री और पुरुष) एक ही प्रकार की सलवार और कुर्ते पहनते हैं; इसका असन्तोष नहीं। पर अपने देश में दर्जनों कपड़ेवालों का मन संदूक भरने के लिए होना दिखाई देता है।

यह सब विचार आते थे। वहां के कुमार-कुमारियों की-सी हँसती हुई मुखाकृतियां अपने देश में किस प्रकार दिखाई दें? वहां की लड़कियां कितनी निडर और श्रमशील थीं! वैसी ही यहां कैसे हों? ये सब विचार मन पर टकराते थे। वहां पूँजीपति या भूमिपति नहीं रहे। सब समान हो गये हैं और सब परिश्रम करने लगे हैं। यह अपने देश में अहिंसक रीति से कैसे बने? ऐसे विचार करता-करता मैं अपने देश में वापस आया।"

सन् १९५२ के सितम्बर की बीसवीं तारीख को महाराज पान अमेरिकन एरवेज विमान में कलकत्ता से चले थे और पौने तीन महीनों में एक विशाल देश की यात्रा करके वापस आये थे। इन्होंने बहुत देखा था और बहुत जाना था। पर इसमें से जो अच्छा था, वह इस देश में किस प्रकार पैदा करना चाहिए, इसका

इनके मन में बहुत ऊहापोह चलता था। क्योंकि वहां की परिस्थिति भिन्न है और यहां की परिस्थिति भिन्न है। वहां की परम्परा भिन्न है और यहां की परम्परा भिन्न है। वहां के साधन भिन्न हैं और यहां के साधन भिन्न हैं।

बस, महाराज के मन में एक ही धुन थी कि कुछ करना चाहिए।

६९—भूदान-यज्ञ में

महाराज क्रान्तिकारी चीन देश की यात्रा करके आ रहे हैं; इनके पास से बहुत-कुछ जानने को मिलेगा—ऐसी हम आशा बाँधते हुए इनके आने की उत्सुकता-पूर्वक राह देख रहे थे।

ये आये; इन्हें मिलने के लिए खेड़े जिले के मुख्य कार्य-कर्ता बोचासण में इकट्ठे हो गये।

इन्होंने वहां जो कुछ देखा या जाना था; वह घंटों तक हमें रसपूर्वक सुनाया। ये चीन देश के प्रशंसक बन गये थे और साथ-साथ अपने देश की परिस्थिति के सम्बन्ध में इनके मन में अत्यन्त उकताहट दिखाई देती थी।

मैंने इनसे पूछा—महाराज, यह तो सब ठीक, पर अब अपने यहां वैसी उत्साह-वर्धक परिस्थिति पैदा करने के लिए क्या करना चाहिए; ऐसा कुछ आपको वहां से मिला? इसका महाराज के

पास कुछ उत्तर नहीं था। इन्होंने सरलता से उत्तर दिया—कुछ सूझ नहीं रहा।

मैंने नम्रता-पूर्वक कहा कि आप हजारों मील की यात्रा करके सुदूर चीन देश में चलते हुए प्रयत्न और पुरुषार्थ देख आये हैं, लगते हाथ अपने देश में विनोबाजी जो एक महान् प्रयोग कर रहे हैं वह भी देखते आवें तो?

इन्होंने कहा—यह तो हम सब 'सर्वोदय' तथा 'हरिजन' में बांचते ही रहते हैं।

मैंने कहा, महाराज! दूर से बँाचना और बात है एवं इस प्रयोग का आरम्भ करने वाले से साक्षात् मिलना और आंखों देखना अलग बात है। एक बात तो निश्चित है कि हमें भी अपने देश को बैठा करना है बापू के दिखाये सत्य अहिंसा के मार्ग से। जब इस मार्ग में कुछ आगे का दर्शन करा सकने वाले अपने यहां आज यही पुरुष हैं तो उन्हें क्यों नहीं मिलने जाना चाहिए? यदि आप तैयार होते हों तो मैं भी आपके साथ आने को तैयार हूँ।

महाराज मेरे विचार के साथ सम्मत हुए और एक सप्ताह में महाराज और मैं विनोबाजी से मिलने चांडिल पहुँच गये।

विनोबाजी को आंत का दर्द था। प्रवास में इन्हें बहुत तेज ज्वर लागू पड़ गया। जिससे इनका पड़ाव चांडिल (बिहार) में स्थिर हो गया था।

मार्ग में जाते-जाते हमें विदित हुआ कि विनोबाजी की तबीयत बहुत अशक्त और गंभीर हो गई है। इससे हमें चिंता तो हुई; पर हमने वहां जाने और मिलने का अपना निश्चय दृढ़ रखा। जब चांडिल पहुँचे तो इनकी स्थिति ऐसी अशक्त थी कि इनके मन्त्री श्री दामोदरदासजी मूंदड़ा ने कहा—'बाबा की तबीयत बातें करने जैसी तो नहीं, पर आप आये हैं यह जान कर इन्हें आनन्द होगा। आप नहा धोकर निवृत्त हों फिर मैं बुलाता हूँ।

जब हम इनसे मिलने गये तो इनका अत्यन्त कृश बना शरीर खाट पर पड़ा हुआ कठिनता से दिखाई देता था। परन्तु इनकी आंखों का भाव देखकर हमारे हृदय तृप्त हो गये। हमें देखकर ये गद्‌गद हो उठे। महाराज से मिलकर इन्होंने पूछा—कितने वर्षों के बाद मिल रहे हैं? आपका विष्णु याद आता है। महाराज का छोटा पुत्र विष्णुभाई विनोबाजी का अंतेवासी बना था, इस बात का इन्होंने स्मरण कराया। इन्हें श्रम पड़ेगा—ऐसा मानकर हमने इनके पाससे कोई बात सुनने की अपेक्षा नहीं रखी थी; पर महाराज की चीन की बातें सुनने के लिए ये बहुत उत्सुक थे। एक-आध घंटे तक महाराज ने अपने चीन प्रवास की बातें विनोबाजी को सुनाईं और ये लेटे लेटे ही सब सुनें—ऐसा प्रेमपूर्वक आग्रह रखा।

हम वहां से उठना ही चाहते थे कि इन्होंने हमें बहुत पास बुलाकर अपनी धीमी-धीमी आवाज से अपने भाव प्रगट करने आरम्भ किये :—

"ठीक है, अब हमें भी अपने यहां नया सर्जन करना है। सन् १७५७ में प्लासी का युद्ध हुआ था और एक राजक्रान्ति हुई थी। सन् १८५७ में दूसरी क्रान्ति हुई थी और अब १९५७ में तीसरी सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति होनी चाहिए—ऐसी मेरी अभिलाषा है। कहा जाता है कि हमारा राज्य अहिंसा के मार्ग पर चल रहा है; पर इसके फल स्वरूप जनता के दुःख, अन्याय घटे नहीं; कई अंशों में बढे हुए दिखाई देते हैं। इसका कारण है कि अहिंसा के साथ सत्य होना चाहिए; वह गुम हो गया है। गुजरात अहिंसा के पालन में सबसे आगे है। जैन लोगों के पास भी अहिंसा थी, पर उसका स्थूल रूप से पालन होता था, इसलिए इसकी क्रांति की शक्ति खोई गई। गुजरात एक ऐसा प्रान्त है कि जहां ऐसी बाह्य अहिंसा की भावना से मांसाहार बन्द हुआ। यह भी कोई छोटी-मोटी सिद्धि नहीं। बापू का जन्म गुजरात में हुआ और उन्होंने अहिंसा स्थापित करने का काम किया; वह भी कुछ निरर्थक नहीं गया।

गुजरात के व्यापारियों में तो अहिंसा का एक दर्शन होता है। किसानों में भी यह चीज पड़ी हुई है; इसलिए अहिंसक रीति से सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाने में गुजरात सब का मार्ग-दर्शन करेगा—ऐसी मेरी आंतरिक श्रद्धा है, गुजरात में बापूका जन्म हुआ है।

बापू के नाम का उल्लेख करते ही इनका गला रुँध गया और आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। दो-तीन

366

मिनट के बाद इन्होंने फिर चालू किया–१९५७ में बापू को गये दस वर्ष हो जायँगे। इन दस वर्षों में यदि हम ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति कर सकें तो जैसा बापू कहते थे; ऐसा हमने कुछ किया है यह समाधान हो। नहीं तो जैसे बुद्ध की अहिंसा का उपदेश चलता है, वैसे चलता तो रहेगा ही। पर बापू की तेजस्वी अहिंसा तो ऐसा कुछ बने तभी कुछ सम्पन्न हुई कही जा सकती है और हमने उनके पग चिन्हों पर चलने का प्रयत्न किया कहा जा सकता है। अभी अपने पास यह काम करने के लिए पाँच वर्ष पड़े हैं। यह कोई कम समय नहीं। गुजरात से मैं बहुत आशा रखता हूँ।"

ये सब बातें चल रही थीं; जिससे इनकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी; पर ये जिस भाव से बातें कर रहे थे–यह देखकर इन्हें रोकने का साहस नहीं किया जा सकता था। इतनी बातें कहकर ये शांत रहे; पर इतनी बातों ने ही महाराज को दीक्षा दे दी।

इसके बाद हम दो दिन वहां और रहे। दिन-पर-दिन इनकी तबीयत अधिक क्षीण और गंभीर बनती जा रही थी; इसलिए बहुत बातें करने का अवसर नहीं था। हमारे निकलने से पहले इन्होंने सबके आग्रह और प्रेम के वश होकर दवा लेना स्वीकार लिया और सब की चिंता का भाव दूर होता हुआ देखा।

इनसे विदा होने से पहले २१–५–५२ के दिन महाराज ने विनोबाजी के हाथ पर एक चिट्ठी रखी, यह बाँच कर

विनोबाजी को अत्यन्त संतोष हुआ। इस समय महाराज के मन में कैसे भाव जागे थे; यह जानने के लिए चिट्ठी ही पर्याप्त है:—

"पूज्य विनोबाजी,

यहां आने के बाद पहले ही दिन अर्थात् १८-५-५२ को हम आपसे पहले-पहले मिले। उस समय आपकी बीमार अवस्था होने पर भी थोड़े मिनटों में आपने अपना दिल जिस प्रकार हमारे सामने खोलकर रखा और चार दिनों में जो आपके मुक्तक उद्‌गार सुने, इस पर से आपके दिल में क्या चल रहा है, इसकी मुझे बराबर समझ पड़ गई है। आपकी बातें सुनने और आपके साथ बातें करने में सदा आनन्द आता रहा; पर आज इसके लिए योग्य प्रसंग (रोग के कारण) नहीं।

मैं आपसे इतना कहना चाहता हूँ कि भूदान-यज्ञ के विषय में आप गुजरात की ओर से निश्चिन्त रहें। हम अपनी शक्ति के अनुसार इस आन्दोलन को सफल बनाने में पूरा-पूरा यत्न करेंगे। मैं इसके पीछे ही अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा। क्योंकि भूमि का योग्य बँटवारा किये बिना अब कोई चारा नहीं—यह एक निश्चित बात है। आपने भूमि और सम्पत्ति के बँटवारे के लिए भूदान-यज्ञ का जो मार्ग बताया है, वही अपने देश के लिए योग्य और सच्चा है। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी ओर से प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता रहे। आपका स्वास्थ्य शीघ्र सुधर जाय—इसके लिए यत्न किये जाने की विनति करता हूँ।

७०—पैदल-यात्रा

विनोबाजी से मिल आने के बाद मानो नया यौवन आ गया हो, इस प्रकार इन्होंने गुजरात के इस छोर से परले छोर तक भूदान-यज्ञ का सन्देश पहुँचाने के लिए दौड़ा-दौड़ी आरम्भ कर दी।

उत्तर गुजरात के बोरिंग का दायित्व इन पर था, उसे भी धीरे धीरे छोड़ते गये। अब तो इनका मुख्य कार्य भूदान-यज्ञ ही बन चुका है। गाड़ी में हों या मोटर में हों, गामड़े में हों या नगर में हों, घर में हों या संस्था में हों, बस इनके मुख से अब भूदान-यज्ञ का ही सन्देश नये-नये स्वरूप धारण करके निकलता है।

इन्होंने एक स्थल पर कहा था "अब जीने में रस आया, यदि मृत्यु बुलाने आए तो उससे कहूँ कि सन् १९५८ तक रुक जाइए"। भूदान-यज्ञ की इन्हें कैसी लगन लग गई है—यह समझने के लिए यह एक वाक्य ही पर्याप्त है।

विनोबाजी ने गुजरात-भूदान समिति की रचना की, इसमें महाराज का नाम बहुत विचार-पूर्वक सर्व प्रथम रखा था। महाराज ने उसे सार्थक करके दिखा दिया।

चरोतर में ओछी जमीन वाले बोरीआवी गांव की श्री डाहीबेन ने अपनी कीमती जमीन भूदान यज्ञ में देने की इच्छा व्यक्त करता पत्र लिखा और पूछा—"आप कब बोरीआवी आएँगे?" इससे इनका भूमि माँगने का संकोच दूर हो गया।

इन्होंने सोचा कि मैं भूमि माँगने में व्यर्थ संकोच कर रहा हूँ। जो लोग भूमि देते हैं वह मेरे कहने से नहीं देते, पर काल भगवान् इन्हें भूमि देने की प्रेरणा कर रहे हैं। मुझे तो केवल कालबल के मांग स्वरूप सन्त विनोबा का सन्देश ही सर्वत्र सुनाना है ।

गुजरात के जिले-जिले से माँग आने लगी कि महाराज हमारे यहां आइए। इन्होंने शरीर या समय की परवाह किये बिना ही जहां जहां से मांग आई थी वहां वहां जाना आरम्भ किया ।

गुजरात सौराष्ट्र के लिए सवा लाख एकड़ का लक्ष्य बाँधने में भी पू० सन्तबाल जी के समक्ष इन्होंने प्रोत्साहन दिया। आज तो महाराज और भूदान यज्ञ दोनों एक हो गये हैं।

ये जिले जिले में घूम रहे थे। इसी समय सूरत जिले के पारड़ी ताल्लुके में भूमि-पतियों और किसानों में संघर्ष छिड़ गया। महाराज वहां पहुँचे। इन्होंने श्री जुगतराम भाई के साथ इस प्रदेश में घूमकर एवं सब लोगों से मिलकर इस प्रश्न का अभ्यास किया। वहां के भूमिपतियों और भूमिहीनों में भी भूदान यज्ञ का पवित्र संदेश पहुँचता किया। इस विषय में अधिक जानना हो तो इनकी पारड़ी ताल्लुका सम्बन्धी तैयार कराई हुई रिपोर्ट का अभ्यास करना चाहिए।

ये कहते हैं कि लोग मुझे भूमि दें या न दें; इसकी मुझे

परवाह नहीं। पर मैंने इतना निश्चय कर रखा है कि सन् १९५७ तक गुजरात के गाँव गाँव में मुझे यह संदेश पहुँचा देना है।

विनोबाजी कहते हैं कि बिहार, उड़ीसा में भूमि देनेवाले तैयार हैं; पर भूमि उगाहने वाले नहीं। फसल तैयार है उसे काट कर लाने वालों की आवश्यकता है; यह सुनकर बहुतों को होता है कि चलो हम भी विनोबाजी के महायज्ञ में भाग दे आवें। विनोबा जी ने देश भर में भूदान—यज्ञ का वातावरण पैदा कर दिया है, इसमें संदेह नहीं। पर गुजरात में ऐसा अनुभव हुआ है कि भूमि माँगने आनेवाले या भूदान का संदेश सुनाने वाले का जीवन और लोकसेवा देखकर ही लोग बरसते हैं। महाराज का जीवन और लोकसेवा इस विषय में प्रथम श्रेणी की है। इसलिए इनके मुख से सुने हुए सन्देश का उत्तर भी उतना ही योग्य मिलने लगता है।

गत संमेलन में श्री जयप्रकाश नारायण ने जीवनदान का एक नया आह्वान किया। इस आह्वान प्रसंग पर जैसे स्वयं विनोबाजी ने भूदान—यज्ञमूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रांति के लिए अपना जीवन दान अर्पित किया, वैसे ही अपने पूज्य महाराज ने भी जीवन दान अर्पित किया है।

जगन्नाथ पुरी के सर्वोदय—संमेलन में पू० महाराज को इसका अध्यक्ष बनाया गया। इस समय महाराजने अपनी भावना-शील शैली में कहा कि "मैं अपठित हूँ क्या मेरी यही योग्यता

प्रमुख पद के लिए पर्याप्त समझ ली गई है ?" । संमेलन के अध्यक्ष के रूप में इनका गुजराती में दिया हुआ संक्षिप्त प्रवचन--इन्होंने भूदान--यज्ञ को कैसा आत्मसात् किया है और इनके कोठे में कैसी विद्या भरी हुई है--इसका दर्शन वहां एकत्र हुए सब लोगों को हुआ ।

जगन्नाथ पुरी सम्मेलन में दूसरा संकल्प किया-"१९५७ तक भूदान--यज्ञ का संदेश पैदल चलकर गुजरात के गाँव--गाँव पहुँचाऊँगा ।"

इनके पैदल प्रवास का आरंभ वीरमगाँव से हुआ । १९५५ के तेरह अप्रैल का दिन था । दो महीनों में इन्होंने सौराष्ट्र में ५६० मील की यात्रा की । वहां के कार्यकर्ताओं, प्रजाजनों, बहनों, विद्यार्थियों, व्यापारियों और किसानों के समक्ष अपनी अनूठी एवं प्रेरक वाणी से विनोबा के संदेश को मुक्त हाथ से बांटा । लोगों ने भी ४३९४ बीघा भूमिका, ११५४४ साधनदान का एवं अन्न आदि दूसरे प्रेम भरे छोटे-मोटे अनेक दानों का प्रवाह बहाया ।

सौराष्ट्र के छोटे-मोटे कार्यकर्ताओं ने इनका पवित्र संदेश अंगीकार किया तथा वहाँ की रचनात्मक समिति ने भूदान--कार्य में पड़ना चाहने वाले सेवकों को रोटी की चिंता में से मुक्त रहने का उदार प्रस्ताव किया । इसके बाद वहाँ से विदा लेते हुए इन्होंने कहा कि:--

"आज अपने सिर पर महान् दायित्व आ पड़ा है। भारत में लोग भूमि देंगे, पर जब तक देश का वातावरण नहीं सुधरता तब तक सुख नहीं मिल सकता। यह वातावरण सुधारने के लिए बहुत से निस्स्वार्थ मनुष्यों को निकलना पड़ेगा। ऐसा एक वर्ग निकल पड़े तो देश का कल्याण हो जाय।"

कुछ लोग शंका करते हैं कि जैसा आप मानते हैं वैसा देश हो जायगा? समाज के आगे पवित्र वस्तु रखनी चाहिए और वह 'फलेगा या नहीं' ऐसी शंका उठाना नास्तिकता है। नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में गांधीजी ने एक वर्ष के लिए सब कुछ छोड़कर निकल पड़ने की घोषणा की थी। वैसी ही घोषणा आज विनोबाजी ने की है। इनकी माँग है कि "५७ के अंत तक निकल पड़ो" प्रवास में मुझे तो अनुभव हुआ है कि भूमि देने वाले तो हैं; पर उगाहने वाले कार्यकर्ता नहीं। प्रजा सन्देश ग्रहण करने के लिए तैयार है। कमी प्रजा की नहीं, पर कार्यकर्ताओं की है।

भूमि तो सौ टका सार्वजनिक होनेवाली है। किन्तु प्रजा के पास से जो हम कराना चाहते हैं; वह पहले हमें स्वयं करना होगा। अर्थात् कुछ-न-कुछ छोड़कर निकलना पड़ेगा। यदि ऐसा न करके प्रचार के लिए हम निकल पड़ेंगे तो लोग हमें देखकर हँसेंगे। गाँव के लोग चाहे अपठित हों; पर इनमें ग्रहण शक्ति विचित्र होती है। जब हम इनसे त्याग की बातें कहते हैं तब ये

हमारा बराबर निरीक्षण करते हैं। ये अपने वाक्यों को इस प्रकार पकड़ते हैं कि अचरज होता है। ये लोग देखते हैं कि "जैसा ये कहते हैं वैसा करते होंगे ?" इसलिए हमें त्यागभावना बढ़ानी पड़ेगी।

अधिक क्या कहूँ ? हम एक भव्य युग में जी रहे हैं। अतः आप सबसे प्रार्थना है कि जिसे सूझे वह इस युग के त्याग का सन्देश ग्रहण करने से न चूके।

सौराष्ट्र में से आने के बाद महाराज अपने नियमानुसार चौमासे के दो महीने योग्य शरीर स्वास्थ्य तथा अभ्यास-चिन्तन के लिए अहमदाबाद में रुके। अहमदाबाद में रहते-रहते इन्होंने अहमदाबाद की गली गली में भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान का सन्देश सुनाया।

लोगों ने हार्दिक उमङ्ग से गली गली में इनका स्वागत किया। इनके मुख से विनोबाजी का सन्देश सुनकर दो लाख रुपये साधनदान के लिए दिये। थोड़ी-बहुत जमीन भी दी तथा दूसरे अनेक लोग—हमें इस दिशा में क्या करना चाहिए—इसका विचार करने लग पड़े।

मैं यह लिख रहा हूँ। इस समय महाराज साबरमती हरिजन-आश्रम में दादा धर्माधिकारी के साथ गुजरात के भूदान-कार्यकर्ताओं की विचार-शिविर में अपने आचार एवं विचार से प्रेरणा दे रहे हैं।

७१ प्रश्नोत्तरी

प्रश्न—आपको ऐसा त्यागमय जीवन बनाना पहले-पहले कैसे सूझा ?

उत्तर—जब मैं छोटा था तब मेरी संन्यासी होने की बहुत इच्छा थी; इच्छा के साथ-साथ देश के लिए मर मिटने की एक लहर भी काम कर रही थी । अब संन्यासी होने की या निवृत्ति लेने की इच्छा लुप्त हो गई है । मेरे आज के कामकाज में मुझे एक प्रकार का सन्तोष है ।

प्रश्न—आपके जीवन में आपको सन्तोष देनेवाला कौन-सा तत्त्व है ।

उत्तर—मेरे जीवन-निर्माण में आर्यसमाज का भी हाथ है । इसके कारण मेरी ग्रामीणता कम हुई और मुझे देश तथा धर्म विषयक काफी परिचिति भी मिली । किन्तु मेरे जीवन में सन्तोष प्रेरित करनेवाले व्यक्ति तो गांधीजी ही हैं ।

प्रश्न—आप पर किसी दूसरे का भी प्रभाव पड़ा है ?

उत्तर—जब मैं बहुत छोटा था तब माता-पिता की ओर से मुझे शुभ संस्कार मिले थे । उनमें आर्यसमाज ने नये संस्कारों और तर्क की वृद्धि कर दी । गांधीजी ने जीवन की दृष्टि दी । पहले-पहले आरम्भ में मुझे आर्यसमाज की पुस्तकों ने बहुत आकृष्ट किया था । पर स्वामी रामतीर्थ तथा स्वामी विवेकानन्द के लेखों ने मुझे गम्भीरता से विचारना सिखा दिया । गांधीजी ने मुझे स्पष्ट दर्शन कराया । मेरे जीवन में अधिक-से-अधिक आनन्द देनेवाले व्यक्ति

गांधीजी हैं। यदि ये पुरुष न होते तो न जाने मैं कहां होता? इनके साथ बैठकर मैंने बहुत-सी बातें नहीं कीं, चर्चाएँ नहीं कीं और प्रश्न भी नहीं किये; फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि मेरी सभी गुत्थियां इस पुरुष ने ही सुलझाई हैं। इनके समय में मेरा जन्म हुआ है, एतदर्थ मैं अपने-आपको धन्य मानता हूँ।

प्रश्न—आर्य-समाज के विषय में आपके कैसे विचार हैं?

उत्तर—आर्यसमाज ने मुझमें एक प्रकार का आवेश भर दिया। मूर्तिपूजा–विषयक मेरी श्रद्धा दूर कर दी। जब मैं कुछ विचार करता हूँ तब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं बाह्य आचार के साथ-साथ अपना भक्त-हृदय भी खो बैठा था। पर इस प्रकार मेरे भक्ति-भाव की गांधीजी ने फिर से प्राप्ति करा दी।

प्रश्न—आपको कभी ऐसा लगता है कि यदि आपको अनुकूल संयोग मिल जाते तो आप आजकी अपेक्षा भी अधिक सेवा कर सकते?

उत्तर—मुझे ऐसा लगा करता है कि मैं जिन संयोगों में पुष्ट हुआ हूँ; उनके अनुसार मेरा विकास ठीक प्रकार से हुआ है। इसमें जो कुछ फेर-फार हो जाते हैं, वे भी मुझे ठीक क्रम से होते हुए दिखाई देते हैं। बचपन में जैसे मुझे कोई मोड़ता वैसे ही मैं मुड़ जानेवाला था। उस समय मुझे समयानुरूप योग्य मार्ग-दर्शक भी मिलते रहे हैं। अपने में जो वात्सल्य और कारुण्य भाव पैदा होते हैं, वे बचपन में मां-बाप, भाई-बहन और कुटुम्बी जनों में रहने से ही खिलते हैं। दांपत्य-जीवन में विशेष रूप से विकसित होते

हैं। मुझे ऐसा कभी नहीं लगा कि यदि मैं विवाहित न होता तो मुझे विशेष लाभ होता। मेरे लिए इन संयोगों में ऐसा होना ही आवश्यक था। यदि मुझे इससे भिन्न प्रकार से रहना मिलता तो मैं उसी ढंग से गढ़ा जाता।

प्रश्न—आप तो कहते हैं कि मैं बहुत कम पढ़ा हूँ; फिर आपमें अगाध ज्ञान और बहुश्रुतता कहां से आई?

उत्तर—सच्ची बात है। मैं पाठशाला में केवल गुजराती की सातवीं श्रेणी तक पढ़ा हूँ। पर मेरी वास्तविक पढ़ाई तो बाहर के संसार में ही हुई है। काम करते-करते मेरा ज्ञान बढ़ा है। मेरा वांचन भी आवश्यकतानुसार खड़ा हो गया। संवत् १९६७-६८ में मैंने दस उपनिषदें वांची थीं। पर उस समय मेरी समझ बहुत कच्ची थी। इसलिए उनमें से मैं बहुत थोड़ा समझ सका था। पर उनके संस्कार तो शेष रह ही गये होंगे। सरसवणी में छोटालाल कवि के संसर्ग में आने के बाद सात-एक वर्ष तक मेरा वाँचन अच्छा चला। इस भण्डार में से ही मेरा भाषण या चिंतन चलता था। पर गांधीजी के दर्शनों के बाद मुझे एक नई सूझ मिली। फिर तो मुझे अन्दर से ही नये-नये विचार फुरने लगे। ये विचार मैं वाणी से लोगों के सामने रख सकता हूँ और इनका लोगों पर प्रभाव भी पड़ता है। यदि यही बात कोई मुझसे लिख देने के लिए कहे तो मुझसे लिखा न जा सके। वाल्मीकि तथा तुलसीदास की रामायण, व्यास तथा वल्लभ का महाभारत मैं बहुत ही रसपूर्वक एवं विचारपूर्वक वांच गया हूँ। इसलिए इनमें से मुझे बहुत से समाधान मिलते रहते हैं।

प्रश्न—आप तो देश-विदेश के इतिहासों की तथा बहुत-सी अन्य प्रकार की बातें कहते हैं—ये सब कहां से सीखे ?

उत्तर—जेलों में मुझे बांचने का ठीक-ठीक अवसर मिला। अकोला की जेल में मैंने तिलक महाराज का 'गीता-रहस्य' बांचा। सन् १९३२ की साबरमती की जेल में सातवलेकर की संस्कृत की १८ पुस्तिकाएँ बांच गया। मराठी और उर्दू की चौथी श्रेणी तक की पुस्तकें सीख गया। इंगलैंड, फ्रांस, इटली, ऐसीरिया, जर्मन, ग्रीस, तुर्की, ईरान आदि देशों का इतिहास मराठी भाषा में देख गया। मराठी-रियास्तें, मुगल रियास्तें तथा शिवाजी-महाराज विषयक नाथमाधव की लिखी ७—८ पुस्तकें बांच गया। नासिक जेल में प्रतिदिन भगवद्गीता के दो श्लोक कण्ठस्थ करता था। इस प्रकार ग्यारह अध्यायों तक गीता कण्ठस्थ हो गई थी। एक बार 'गीता-मन्थन फिर से 'ईशावास्योपनिषद्' वाँच गया। १९४२ की जेल में 'पुरुषार्थ-बोधिनी' 'विश्व इतिहास की झलक' 'सर्वोदयनी जीवन कला' सर राधाकृष्ण का 'गाँधी अभिनन्दन ग्रन्थ' 'संस्कृतिनुँ भावि' सातवलेकर का महाभारत और ऐसी-ऐसी बहुत-सी दूसरी पुस्तकें देख गया।

प्रश्न—आप तो कहते हैं कि मैं बहुत थोड़ा पढ़ा हूँ; पर वाँचा तो खूब है।

उत्तर—मैंने जो जो वाँचा है वह सभी तो कहाँ गिनाया है ? गाँधीजी की प्रायः सभी गुजराती पुस्तकें मैंने वाँची हैं। काका

साहब और क़िशोरलाल भाई की पुस्तकें भी बाँची हैं । 'नवजीवन' तथा 'हरिजनबन्धु' का तो मैं नियमित बाँचनेवाला हूँ। अन्य बहुत-सी पुस्तकें आती हैं; उनमें से भी मैं थोड़ा-बहुत बाँचता हूँ। पर बड़े-बड़े प्रोफेसरों और विद्वानों की तुलना में इस बाँचने को क्या गिनती है ?

सामान्यतः सबको ऐसा विचार होता है कि महाराज बहुत कम पढे हैं और इन्होंने कुछ बाँचा नहीं, केवल अन्दर से इन्हें ज्ञान की स्फूर्ति हुई है, ऐसी ईश्वरी देन तो किसी किसीको ही मिलती है; पर सच्ची बात तो यह है कि इन्हें ईश्वरी देन तो मिली ही होगी। किन्तु प्रमाण में इन्होंने बाँचा भी बहुत है। एक विद्यार्थी के रूप में अभ्यास की दृष्टि से बाँचा है, उस पर गहरे विचार-पूर्वक मनन किया है यथा-शक्य उसे आचरण में उतारा है। इसलिए इनका बाँचन सजीव बन गया है। आज भी प्रातः घण्टा-डेढघण्टा बाँचने का अवसर मिल जाय तो ये नहीं छोड़ते ।

प्रश्न---आपने पाटणवाडिया जाति को किस प्रकार वश में किया ?

उत्तर---मुझे इस जाति में काम करने का अवसर मिला, यह मैं भगवान् की प्रेरणा मानता हूँ। इनकी हाजरी निकलवाने का काम तो इस जाति में प्रवेश करने का मेरे लिए एक निमित्त-मात्र है। इनमें प्रविष्ट होने के बाद इन कुटुम्बों की ओर से जो मुझे प्रेम मिला—यही मेरी महत्त्व की कमाई है। मैं इनसे मुखसे कहकर

जो कराता था उसकी अपेक्षा मेरा प्रेम इनसे अधिक काम करा डालता था, सुणसर में मैं सुधारक के रूप में गया था । इसीलिए वहां प्रेम का उद्‌गम नहीं हुआ ।

प्रश्न—आप इतने बड़े-बड़े काम कर डालते हैं, उनकी पहले से किसी प्रकार की योजना गढ़ते हैं ?

उत्तर—आपका कहना ठीक है । कई-एक महान् पुरुष अपने कर्तव्य कार्य की पहले से ही योजना गढ़ लेते हैं और क्रमशः योजनानुसार अपना निश्चित ध्येय सिद्ध करते हैं । पर मुझ में ऐसी योजना गढ़ने की शक्ति नहीं । मुझे योजना पुरः-सर काम करने की टेव भी नहीं । मैं अपनी आंखों आगे कोई काम पड़ा देखता हूँ तो उसे अत्यंत प्रामाणिकता से तथा अपनी सारी शक्ति लगाकर सिद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ । अपना मन, बुद्धि और शरीर तीनो उसमें लगा देता हूँ । मेरी सफलता की यदि कोई चाबी है तो यही है और कोई योजना नहीं । कार्य के प्रत्युपकार की अपेक्षा मैं कार्य की आवश्यकता तथा उस कार्य विषयक प्रेम से प्रेरित होकर कार्योन्मुख होता हूँ । पाटणवाडियों के साथ जो मैं तन्मय हो सका । उनके काम के लिए कड़कती धूप में चक्कर मार सका । उन्हें अपेक्षा नहीं थी फिर भी मैं उनके काम में जुटा रहता था । इसके मूल में उन विषयक मेरा प्रेम, उनकी दुःखित स्थिति के प्रति अनुकंपा और विपत्ति में पड़ों का सहायक रूप होने की वृत्ति ही काम कर रही थी । मेरे पास किसी दिन कार्यक्रम

नहीं होता। पर आज तक के अपने अनुभव पर से तथा देश–काल देखकर स्वाभाविकता से मुझे जो कार्य सूझता है वह मैं करता हूँ।

प्रश्न—इतनी लंबी उमर में आप इतना–इतना काम करते हैं; फिर भी आप पैदल चल कर जाने का आग्रह क्यों रखते हैं?

उत्तर—यह मेरी इच्छा रहती है कि मेरा खर्च समाज पर कम–से–कम पड़े। देश को मैं अपना घर मानता हूँ और लोग मुझे खिलाते हैं। इस देश के लिए बचत करके मैं इसकी आय में वृद्धि किस प्रकार करूं—इस विचार से ही मेरा मोटर या रेल गाड़ी छोड़कर पैदल चलने को मन होता है। जब मैं सार्वजनिक काम में पड़ा था तब स्वामी नित्यानन्दजी ने कहा था कि अब तुम छोटे घर में से विशाल घर में प्रविष्ट हो रहे हो। यह वाक्य मुझे सदा याद आता रहता है।

प्रश्न—जप और ध्यान के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—ध्यान और जप के विषय में मेरा बहुत गहरा आकर्षण है। परंतु मेरे मनमें अभी इस विषय में इतनी गहरी श्रद्धा नहीं हुई। मेरे मनमें सदा यही प्रश्न उठता रहता है कि जो मैं काम करता हूँ, यह भगवान् के विराट् स्वरूप का ही काम है तो फिर जप की क्या आवश्यकता? ऐसा प्रश्न उठने पर भी संस्कारों के कारण कहिए या किसी दूसरे कारण से कहिए, पर मन की गहराई में आध्यात्मिक भूख पड़ी है। ऐसा लगता है कि अभी और भी मुझे भगवान् के समीप जाना

चाहिए । भगवान् की कृपा से एवं पूज्य गाँधीजी की प्रेरणा से मैं भगवान् के अधिक–से–अधिक समीप होता जाता हूँ । दूर तो बिलकुल भी नहीं जा रहा, ऐसा मनमें समाधान होता रहता है । जब मेरी मृत्यु आवे तो मैं बिना किसी घबराहटके भगवान् का चिंतन करता-करता, संसार से क्षमा माँगता–माँगता और किसी की दवा–दारू किये बिना हँसता–हँसता मरूँ तो मुझे बहुत आनंद हो । मृत्यु का भय आज तो दिखाई नहीं देता । आज तक जो कुछ किया है उसका मुझे संतोष है । जो नहीं हो सका उसके लिए संसार से क्षमा माँगने की इच्छा होती है । अंतिम घड़ी में मेरी कोई योजना या कोई विशेष कार्य शेष रह जायगा–ऐसा मुझे नहीं लगता । जो आज करता हूँ यही करता रहूँगा, इसके स्थान पर कोई दूसरा सूझ जायगा तो वह करूँगा । मेरा एक काम पूरा होते ही मुझे दूसरा काम अपने–आप सूझ जाता है । प्रत्येक परिस्थिति के लिए मैं सदा तैयार रहता हूँ । मेरी आकुलता का समाधान मैं किसी के पास से नहीं कराता ।

पर मुझे संतोष हो जाय ऐसा मेरे योग्य समाधान मैं अंदर से ही ढूँढता हूँ । इसलिए मुझे व्याकुल करने वाले प्रश्न बहुत कम होते हैं । उलझन या विपत्ति के समय मैं तो प्रत्येक को अपनी आत्मा से ही पूछने के लिए कहता हूँ । इससे हमें अनुभव–सिद्ध और हमारे योग्य उत्तर मिलते रहते हैं । ज्ञान भी बहुत बाँचने से बढ़ जाता है–ऐसा मै नहीं मानता । जो

बाँचा या विचारा होता है, वह अंदर पच जाने के बाद समय आने पर बहुत सुन्दर ढङ्ग से बाहर आता है।

प्रश्न--आपका प्रिय विषय कौन है ?

उत्तर--दीन-दुखियों के लिए झूझना या विपन्नों को सहायता पहुँचाना, यह मेरा प्रिय विषय कहिए या स्वभाव-सिद्ध गुण कहिए। जब मैं यह करता हूँ तभी मुझे शांति मिलती है--आनंद आता है। मुझे तैरना आ गया--एतदर्थ मैंने भगवान् का बहुत बार अनुग्रह माना है। पानी में डूबते हुओं को अंतिम क्षण में बचाने का मुझे कई-बार अवसर मिला है। प्राणों को संकट में भी डालकर दूसरों को बचाने की वृत्ति मुझमें काम करती रहती है। इसलिए कई-बार विचार शून्य साहस भी मुझसे हो गये हैं; पर भगवान् की इच्छा से कोई अनिष्ट बनाव नहीं बन पाया। इसमें मुझे भगवान् का ही हाथ दिखाई दिया।

बाढ़ के समय मैं स्व० अब्बास साहब से मिलने के लिए बड़ौदे की ओर चल पड़ा। मार्ग वर्षासे धुल गये थे। इसलिए पाओं में कंकरी चुभने लगी। उससे बचने के लिए मैं नाले में के पानी में होकर चलने लगा। पानी तो बढ़ता ही चला जाता था। अब 'क्या करना चाहिए' इसी विचार-विचार में ही मेरे पाओं आगे बढ़ते चले जा रहे थे। इतने में एक समीप के खेत में जोगण गाँव की एक स्त्री चारे के भार पास खड़ी दिखाई थी। चारे का भार उठाने वाले किसी की बाट देख रही थी। पासमें जाकर मैंने उसे चारे

का भार उठवाया और बढ़ते हुए पानी में मेरे पाओं आगे न जाकर वहीं से वापस हो गये । यह सारी क्रिया स्वाभाविक ही होती जा रही थी । मुझे इस पर से विचार आया कि मार्ग छोड़कर मेरा नाले में चलना उस स्त्री को भार उठवाने के लिए ही था । मैं कहां तक जा निकला और कहां से वापस आया । भगवान् ही मुझे उस स्त्री के पास ले गये और उस स्त्री का काम बन गया—इसलिए मुझे भगवान् ने वापस भेज दिया । इस एवं दूसरे प्रसंगों पर से मेरे मन में एक श्रद्धा का भाव दृढ़ हो गया है कि हम जो करते हैं; वह सब भगवान् की प्रेरणा से ही करते हैं । उसकी योजना के अनुसार ही सब होता है; तो फिर अपने जीवन को उसके हाथ में सौंपकर जीने जैसी दूसरी कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? मनुष्य को वही चलाता है, तारता है या मारता है । इसलिए सबको उसकी शरण में जाना चाहिए ।

७२—उपसंहृति–वक्तव्य

जब हम पूज्य महाराज के जीवन का अवलोकन करते हैं तो हमें विदित होता है कि बचपन से ही इनमें साहस, निर्भयता सहिष्णुता एवं निस्सहायों की सहायता करने की वृत्ति ओत-प्रोत हो चुकी है । मातापिता की ओर से इन्हें कोर-कसर, स्वच्छता, व्यावहारिकता तथा धार्मिक वृत्ति का वंशागत अधिकार मिला है । श्रीछोटालाल कवि और आर्यसमाज ने इनमें क्रांति के बीज बोये, सुधार की उमंग जगाई तथा तीक्ष्ण बौद्धिक वाक्पटुता विकसाई ।

इनकी जो दृष्टि घर और गांव तक सीमित थी; उसे समाज की ओर मोड़ने का श्रेय भी महर्षि दयानन्द के आर्यसमाज के भागमें जाता है। स्व० पंड्याजी ने इनमें राष्ट्रीयता का प्राण-संचार किया। स्वामी नित्यानन्दजी ने इन्हें समाज को निजी कुटुम्ब बनाना सिखाया। पूज्य गांधीजी के पास से जीवन-दृष्टि प्राप्त करने के बाद तो वंश-प्राप्त तथा स्वपुरुषार्जित इनके गुण अनेक गुना बढ़ गये। इनके कार्यों में नया उत्साह और नया वेग आया। इनकी कार्यक्षमता तथा कार्यकुशलता में नई वृद्धि हुई। अपने देश की दीन जनता में ही इन्हें (दीनदयालु) जनार्दन के दर्शन हुए।

इनके इस भाव को पुष्ट करने के लिए इन्हें गांधी-युग जैसा युग मिल गया। एक के बाद एक नये-नये कार्यक्रम मिलते गये। ये इन्हें अपनाते गये। इन कार्यों द्वारा ही इनका शिक्षण हुआ; इन कार्यों द्वारा ही इनका निर्माण हुआ और इन कार्यों द्वारा ही इनका विकास हुआ। आज जो हम इन्हें गुजरात के अनन्य सेवक के रूप में देख रहे हैं—यह सारा प्रताप इनके सेवा-कार्यों का ही है।

इस पुस्तक में इनके सेवा-कार्यों की थोड़ी-बहुत रूप-रेखा खींची गई है। मैं मानता हूँ कि मैं इनके बड़े-बड़े कार्य ही दिखा सका हूँ। इनके जो अगोचर कार्य हैं और उनके जो अगोचर परिणाम आये हैं, उनमें से कितनों को मैं देखभर सका हूँ और कितनों का अनुभव मात्र कर सका हूँ; पर उन सबका

वर्णन तो मैं नहीं कर सका। कहीं-कहीं इनके भाव और इनके मंथन मैंने अपने शब्दों में प्रस्तुत किये हैं। उनमें जो कुछ ऊनता रह गई हो, वह मेरी ही समझनी चाहिए। इस पुस्तक से महाराज का पूर्णतया दर्शन हो जायगा—ऐसा कोई न समझ बैठे। स्व० मेघाणीजीने अपने एक पत्र में लिखा है कि "महाराजनुं जीवन एटलुं बधुं समृद्धिभरपूर छे के एना पर एक करतां बधु कलमो, एक करतां बधु दृष्टिकोण थी निहाली ने जूजवां कला-विधान करी शके छे, एक बीजाने झंखवानो एमां कोई डर नथी" अर्थात्——"महाराज का जीवन इतना अधिक समृद्धिपूर्ण है कि इस पर अनेक लेखनियां अनेक दृष्टिकोणों से अनोखा कला-विधान कर सकती हैं; पर इसमें एक दूसरे को कुंठित होने का कुछ भय नहीं।" यहां तो इनके जीवन की एक पतलीसी रूप-रेखा खींचने का प्रयत्न मात्र हुआ है। इनके जीवन प्रसंग तो इतने अधिक हैं और इतने अधिक रंगों से रंगे हुए हैं कि उन सब का संग्रह करना भी कठिन है। संग्रह कर भी लें तो यहां उसे प्रस्तुत करना इससे भी अधिक कठिन काम है।

इनका सारा जीवन अखंड पुरुषार्थ तथा ग्राम-जनता के दुःख से द्रवीभूत हृदय की धड़कन से भरा पड़ा है। स्व-प्रयत्न एवं स्व-जागृति के ताने-बाने से बुने हुए जीवन का यह एक विशेष आदर्श है। इनमें एक तपस्वी के तप, परिव्राजक की वीतरागता एवं गृहस्थाश्रम की कार्यकुशलता-करुणता का सुमेल हुआ है।

यदि कोई पूछे कि इन्होंने इतना पुरुषार्थ और दौड़-धूप करके क्या सिद्ध किया ? इन्होंने किसी परतंत्र जनताकी परतंत्रता दूर की ? किसी निर्धन और अकर्मण्य जाति को उद्योग-धंधों पर लगाया ? देशोद्धारक कोई महान् संस्था स्थापित की ? राष्ट्रीय या सामाजिक कार्यकर्ताओं का कोई दल उद्यत किया ? इन सब प्रश्नों का सीधा उत्तर हां और ना दोनों में हो सकता है। पर जब हम कुछ गहरा उतर कर इनके जीवन की सुगन्ध लेते हैं तो विदित होता है कि इनके जीवन से अनेक जीवन और अनेक क्षेत्र उज्जवल (सुवासित) हो गये हैं। संसार की दृष्टि पर चढ़ सके ऐसी कोई संस्था इन्होंने स्थापित नहीं की। व्यवस्थित यूथ के रूप में दिखाई दे सके ऐसा कार्यकर्ताओं का इन्होंने कोई दल नहीं खड़ा किया या किसी समस्त जाति को इन्होंने परतंत्रता में से मुक्त नहीं किया। फिर भी आज यदि ये न हों तो अकेले खेड़े जिले में ही नहीं, सारे गुजरात-महागुजरात में एक महती क्षति हो जाय। यदि ये न हों तो पाटणवाडिया, बारैया या ऐसी दूसरी दलित जातियां अपना सच्चा वकील खो बैठें, स्वराज्य वाले स्वराज्य का एक सच्चा सेवक खो बैठें; कार्यकर्ता अपनी व्यावहारिक जीवित सिद्धान्त वाली आदर्श-रूप प्रेरणामूर्ति खो बैठें तथा संस्था वाले अपना स्नेह-सिंचन खो बैठें। यदि ये न हों तो किसी भी विपत्ति के समय आगे आकर सहायता कार्य की सूझ निकालने वाले का अभाव हो जाय।

इन्होंने खादी का कोई केन्द्र नहीं खोला; पर अनेक

लोगों को कातने लगा दिया है, अनेकों को कातने का मौलिक रहस्य समझाया है तथा अनेकों को खादी-कार्य के लिए व्रत लेने की प्रेरणा दी है । इन्होंने कोई व्यायाम मन्दिर या पुस्तकालय नहीं चलाया, पर अनेक विद्यार्थियों में इन्होंने व्यायाम और पुस्तकों के प्रति प्रेम जागृत किया है । व्यायाम और वाँचन का मूल उद्देश्य समझाया है । कितने व्यायामवीरों एवं अभ्यासियों के प्रेरणा-रूप बने हैं । इन्होंने शिक्षक बनकर कोई विद्यालय नहीं चलाया, पर अनेक शिक्षकों और विद्यार्थियों को इन्होंने 'जीवन और शिक्षण' का संबंध बताया है । सच्चा शिक्षण कौन-सा है ? इसका ज्ञान अपने जीवन और अनुभव से प्रत्यक्ष करके दिखाया है । ये किसी धर्म-संस्था के उपाध्याय या आचार्य नहीं बने, पर अनेक व्यक्तियों के जीवन में ये मार्ग दर्शक बने हैं । गृहस्थाश्रमी अपने गृहकार्य की गुत्थियां सुलझाने महाराज के पास जाते हैं । विद्यार्थी अपने जीवन-पथ का पाथेय प्राप्त करने महाराज के पास जाते हैं । सेवा भाव से रंगे हुए सज्जन अपने सेवा-क्षेत्र-विषयक अनुभूत ज्ञान लेने के लिए महाराज के पास जाते हैं ।

इन्होंने किसी कवि या लेखक की भांति काव्य या पुस्तकें नहीं लिखीं, पर इनके मुख में से बहती हुई सरस्वती से अनेक कवियों लेखकों या व्याख्याताओं ने प्रेरणा प्राप्त की है । और इनके जीवन द्वारा दूसरे अनेकों ने काव्यों, लेखों या व्याख्यानों के विषय पूर्ण किये हैं ।

ये किसी सभा-समिति के प्रमुख या मंत्री नहीं, किसी लोकल बोर्ड या म्युनिसिपालिटी के सभासद नहीं या किसी राजसत्ता-संचालक तंत्र के पदाधिकारी नहीं, तो भी समितियां, संस्थाएँ या तंत्रों वाले कितनी बार इनसे सम्मति लेते हैं। गांव के किसान या पीड़ित अपने दुःख या परीवाद, बिना संकोच इनके पास कहते हैं। इनके पास से वे योग्य सहानुभूति तथा सामयिक सहायता प्राप्त कर सकते हैं। कई-एक सहायता-कार्यों में इनकी सहायता बहुत ही उपयुक्त समय पर पहुँची होती है। दूसरों को सहायता-कार्य उठाने से पहले बड़ी-बड़ी योजनाएँ और बहुत-बहुत गिनतियां करनी पड़ती हैं, लंबे-चौड़े बजट (व्याकल्प-लेखे) प्रस्तुत करने पड़ते हैं। कभी-कभी तो इस करने-धरने में ही सहायता पहुँचाने का योग्य समय ही निकल जाता है। जब कि महाराज की सहायता सदा तात्कालिक प्रत्यक्ष और सच्चे स्थान पर पहुँची हुई होती है। क्योंकि इनका सर्व-साधरण जनता के साथ सीधा और निकट का संबंध है।

इन्होंने बारैया या पाटणवाडिया जाति के हजारों लोगों की हाजरी (उपस्थिति) निकलवा डाली। कोई पूछ सकता है कि हाजरी निकलवाने से क्या सिद्ध हुआ ? यह हाजरी निकलवा डालने से इस जाति को कुछ प्रत्यक्ष लाभ हुआ ? तो हम उससे कहेंगे कि हाजरी का शल्य कैसा है ? उसे कढाना कितना कठिन काम है ? यह तो उन्हीं से पूछिए जिन्हें हाजरी भरानी पड़ती थी या जिन्होंने यह कढ़ाने के

प्रयत्न किये हैं। किसी परतंत्र से स्वतंत्र बनाने के बाद, पूछा जाय कि परतंत्रता गई तो इससे क्या सिद्ध हुआ ? ऐसा ही यह प्रश्न है। हाजरी निकल जाने से वे जातियां आर्थिक एव सामाजिक रीति से बहुत आगे बढ़ गई हैं। सरकारी पुलिस के, अन्य दूसरों के त्रास तथा पदलित दशा में से निकल गई हैं। पर सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु जो उन्होंने प्राप्त की है वह है स्वमान–भावना की वृद्धि और उनकी मानवता का प्रत्यावर्तन। दूसरों के दुःख से दुखी होने वाले एवं दूसरों के दुःख दूर करने का दिन–रात चिंतन करने वाले निस्स्वार्थ सेवक भी इस संसार में पड़े हैं; इस प्रकार का उज्ज्वल उदाहरण उनके सामने आया। ऐसे उज्ज्वल चारित्र्य एवं संस्कारों का शुभ प्रभाव इस सारी जनता पर बिना पड़े कैसे रह सकता है ?

महाराजने चाहे कोई संस्था नहीं निकाली, पर ये स्वयं संस्था रूप बन गये हैं। संस्था बन कर ये स्थान–स्थान पर घूमते हैं। जहां–जहां ये जाते हैं; वहीं–वहीं अपना स्वतंत्र वातावरण लेकर जाते हैं। ये भारत–संघ की सीमा में जायँ या देशी–राज्यों की सीमा में जायँ, विद्वानों में जायँ या निरक्षरों में जायँ, धनियों में जायँ या निर्धनों में जायँ, अधिकारियों में जायँ या जनता में जायँ, सर्वत्र इन्हें स्थान मिलता है। कारा में अनेक नरम–गरम लोगों में भी ये अपना स्वतंत्र वातावरण खड़ा कर लेते हैं। इस वातावरण के प्रभाव

से अनेक फूल खिल उठते हैं। कोई इनके स्थान से ईर्ष्या या मत्सरता नहीं करता। कोई इनके साथ वैर-भाव नहीं रखता और कोई इनसे दूर भाग कर नहीं जाता।

अपने निर्धन देश में सच्चे सेवकों की बहुत कमी है। इस कमी को दूर करने के लिए जितने भी मिल सकें उतने विविध शक्ति वाले सेवकों की बहुत आवश्यकता है। महाराज अपने गुजरात विभाग में जनता–पक्ष के सिविलियन (सर्व–कार्य–दक्ष) के समान हैं। अनेक कार्यों में ये पड़ सकते है। कटा–कटी के समय इनकी सूझ–शक्ति दुगुनी खिल उठती है। इन्हें सत्ता का लोभ नहीं। इनमें स्वार्थ या लालच की गंध भी नहीं। अपने ज्ञान या शक्ति का इन्हें अभिमान नहीं। प्रतिक्षण इनके हृदय में दीनों के लिए तड़फ है। जहां जाते हैं वहीं ये दूध–खांड़ (नीर–क्षीर) की भांति मिल जाते हैं। किसी परिस्थिति में, किसी समाज में, किसी कुटुंब में जाकर ये अपना मार्ग निकाल लेते हैं और अपना अनोखा स्थान प्राप्त कर लेते हैं। जहां दूसरों को कुछ भी न सूझ रहा हो, वहां ये मार्ग बता देते हैं।

ये छोटी–मोटी किसी संस्था के संचालक नहीं; पर इनकी प्रेरणा और आशीर्वाद से गुजरात में अनेक संस्थाएँ खड़ी होती हैं और चलती हैं। एक भी कार्यकर्ता को शिक्षण देने नहीं बैठते; पर अनेक कार्य–कर्ता उन्हें विदित भी नहीं होता इस प्रकार इनके पास से शिक्षण प्राप्त करके योग्य होते हैं। ये

किसी विद्यालय या महाविद्यालय के आचार्य, या कुलपति नहीं; पर कितने विद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षक इनका वचन अपनाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इन्होंने ग्राम-सेवक की पदवी नहीं ली, पर अनेकों को ये ग्राम-सेवा की दीक्षा देते हैं। इतना ही नहीं, इन्होंने ग्राम-सेवा का आदर्श पूरा करके दिखाया है। इनका जीवन साक्षात् यज्ञ-मय बन चुका है। इसमें से अनवरत सुगंध और प्रकाश फैलता ही रहता है। आदर्श और व्यवहार का मेल कैसे सिद्ध हो सकता है? इसका इनके जीवन से एक शास्त्र-निर्माण हो रहा है। इनमें प्रेमरूपी एक ऐसा झरना बहता है, जहां—जहां ये जाते हैं वहीं-वहीं उसमें से सीकर झरते रहते हैं।

महाराज का जीवन बहता हुआ झरना है, जो नित्य और नियमित बहता ही रहता है। ऐसे काच—से स्वच्छ एवं बहते झरने में जीव-जंतु तो कहां से पड़ें? इस कलकल बहते हुए और कार्य में निरत रहते हुए जीवन से इन्हें स्वयं तो संतोष और आनंद है ही, पर दूसरे अनेकों को ये अपने जीवन—झरने में से निर्मल एवं शीतल जल पिलाते हैं। कोई इससे प्यास बुझाता है, कोई इससे भोजन बनाता है तो कोई इससे नहा-धोकर स्वच्छ बनता है। इस प्रकार अनेक रूपों में इसका उपयोग होता है। सामान्य झरना तो अपने दो किनारों के बीच में ही बहता है, पर महाराज तो सारे गुजरात में, किसी-वर्ग में, किसी गांव में या जहां चाहें वहीं पहुँच जाते हैं। अपने जीवन-झरने में से मांगने वाले प्रत्येक को

अपनी शक्ति का लाभ पहुँचाकर समृद्ध कर देते हैं। जितना इनके जीवन-प्रवाह को किसी मर्यादा में बाँधना कठिन है; उतना ही शब्दों में उतारना भी कठिन है। इस प्रवाह का सच्चा स्वरूप तो इसके प्रत्यक्ष आस्वाद में से ही मिल सकता है। भगवान् अपने इस जीवन-झरने को चिरकाल तक बहता रखें और हमें इससे योग्य लाभ उठाना सिखाएँ। (ॐ तत्सत्)।

शुद्धि-पत्र.

इधर पुस्तक छप रही थी और उधर मैं दूर हरिद्वार में बैठा था। मैं मानता हूँ कि अहिन्दीभाषी प्रांत में हिन्दी की छपाई में अशुद्धियां रह जाना संभव है। पर हमारे प्रूफ संशोधक महोदय तो मेरे बार बार मना करने पर भी 'सीखचों' को 'शिकंजों' 'पैसे' को 'पेशे' 'एक-एक' को 'रुक-रुक' और 'भारवाही' को 'मारवाड़ी' बनाते रहे। उनके मनमें क्या था? यह तो वही जानें। अस्तु। कृपया निम्न लिखित संशोधन लगा कर के ही पुस्तक बाँचने का कष्ट कीजिएगा।

—निवास

ता. १०-१०-५६

अशुद्ध,	शुद्ध,	पृष्ठ,	पंक्ति,
राएँ-	धाराएँ,	२२,	१४
विपत्ति-	विप्रतिपत्ति,	२३,	१४

आँखों में—	आँखों में से,	३२,	१७
इन्हें—	हमें,	३४,	१४
करने—	करने के,	४०,	१६
काऊलर—	फाउलर,	५१,	१५
अर—	आकर,	५८,	१८
शरीमेंसे—	शरीर में से,	६२,	२
में—	मैं,	६२,	५
मथरावटी—	छाप—साख,	६६,	१७
उकट्ठे—	इकट्ठे,	७९,	१५
प्रण—	पण,	८१,	५
प्रयान—	प्रयत्न,	,,	९
जब्बी का—	जती का,	८२,	१९
कंडक शोथको—	कंडक शोथका,	८४,	१५
मद्यनिषेद—	मद्यनिषेध,	९२,	६
निश्चत—	निश्चित,	,,	१६
रूपांकित—	रूपान्तर,	,,	२२
कलेमे—	कणमे,	९३	१२
घोरघुवा—	घोरघुप्प,	९४,	१६
अ—	और,	९५,	१
लुवणा—	लुवाणा,	९६,	५
खीजकर—	खीझकर,	९७,	४
भी—	की,	,,	५

वड़े—	पड़े,	९८,	३
पेशे—	पैसे,	,,	१३
गाड़ावाला—	गाड़ेवाला,	९९,	१०
जय—	जायगा,	१०७,	२१
दे रहे—	देते,	१०८,	८
तुझे—	मुझे,	,,	१३
इकट्ठे—	इकट्ठे हुए,	,,	२३
पोले—	पीछे,	१११,	१९
पहुँचता—	पहुँचेगा,	११२,	१३
भाईने—	एक भाईने,	११३,	१
मुनकर—	सुनकरे,	११५,	१
कमिशनर—	कमिशनरने,	,,	८
वहार—	वाहर,	११६,	१
लगासे—	लगाते,	,,	१५
सेंघ—	सेंध,	१२१,	१४
लिये—	लिए,	१२३,	१५
डालते—	डालने,	,,	१९
फौजदार—	फौजदारने,	१२४,	१२
कड़कही—	कड़कती,	१२५,	१९
पहचाताने—	पहचानते,	१२८,	५
गाड़ीया—	गाठिया,	१२९,	११
काढ़नी—	कढ़ानी,	१३४,	९

वच्चों का-सा—	वच्चों पर का-सा,	१४१,	१०
वड़ा—	पड़ा,	१४७,	१
मारवाड़ी—	भारवाही,	,,	१०
इसमें—	इसमें से,	१५०,	१
कलियां—	फलियां,	,,	१२
साहव की—	साहब का,	,,	१८
सारकर—	मार कर,	१५१,	३
व्यक्ति को—	व्यक्तियों को,	१५८,	११
उसको—	उसके,	१६०,	५
यहीं—	नहीं,	१६१,	२२
आश्रयका—	आशय का,	१६२,	६
पूर्वोक्ति—	पूर्वोक्त,	,,	११
वह—	वह,	१६३,	६
समी—	सभी,	,,	२०-२१
मुसलमानों से—	मुसलमानों में,	१६९,	२१
भी—	(नहीं चाहिए)	१७३,	१०
सहकार—	सरकार,	१७६,	२०
खड़—	घर,	१७८,	७
न बैठना—	बैठना,	१८२,	९
कसे कम—	कम से कम,	,,	७
महारा—	महाराज,	१८६,	३
दिस—	दिन,	,,	१७
पहसे—	पहले,	,,	२२

प्रस्मुत—	प्रस्तुत,	१९०,	१४
देद्ड़े—	देदरड़ें,	१९४,	५
वहां—	वहां से,	,,	१९
पैसाका—	पैसों का,	२०८,	१२
खुली—	खुली सभा,	२०९,	१
कमिशनरमें—	कमिशनर,	२१७,	४
अब्वी—	अब,	२२३,	१८
निश्चय—	निश्चित,	२४१,	३
कार—	कारा,	,,	१७
साद—	साथ,	२४२,	२
थाती—	दाती,	२४४,	१९
महाजन—	महाराज,	२५०,	१३
इसमे	इससे,	२५६,	१७
निषि	निषिद्ध,	२५७,	२२
मार्गदर्शन—	मार्गदर्शनका,	२६०,	१८
झूझा—	सूझा,	२६२,	१
पर—	पर से,	२६५,	४
दूकान पर—	दूकान से,	,,	८
किसी पर—	किसी व्यक्ति पर,	२६७	२१
प्रस्तान—	प्रस्थान,	२७०,	२०
घंघा—	धंघा,	,,	२२
लड़ाईआ—	लड़ाई का,	३०७,	६